मूल्य

पुट्ठे की जिल्द – दस रुपये

कागज की जिल्द – नौ रुपये

ग्रन्थ प्रकाशन समिति

श्री गोकुल भाई दौ० भट्ट

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

श्री रामनारायण चौधरी

श्री जवाहिरलाल जैन

श्री शोभालाल गुप्त

श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय

श्री केसरपुरी गोस्वामी (संयोजक)

मुद्रक

अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स

ज य पु र

राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली-4.
RASHTRAPATI BHAVAN,
NEW DELHI-4.

December 30, 1967.

Mahatma Gandhi was the embodiment of truth and non-violence and worked unceasingly all his life to bring about unity among all our people of whatever sect or creed. Not only was he the greatest leader of our time but one whose genius and strength of purpose welded the nation as one in its march towards freedom. His birth centenary celebrations in 1969 will afford us a unique opportunity to rededicate ourselves to his teachings and lofty ideals so that India may continue to prosper and grow great.

I wish success to all efforts that are undertaken to add to our knowledge of Gandhiji's life and his mission.

राज्य भवन,
जयपुर
फरवरी ११, १६६६

सन्देश

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि के तत्वावधान में गांधी शताब्दी कार्यक्रम के अन्तर्गत 'गांधीजी और राजस्थान' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

राजस्थान सदव से वीरों की भूमि रहा है और राजस्थान वासियों ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश के स्वतन्त्रता संग्राम में यथाशक्ति योग दिया है। यह उचित ही है कि उन देशभक्तों के बलिदानों की झांकी नई पीढ़ी को मिले जिससे कि उनको राष्ट्र-प्रेम की प्रेरणा मिल सके।

मेरी शुभ कामना है कि इस ग्रन्थ का अधिक से अधिक प्रचार हो।

हुकम सिंह
राज्यपाल, राजस्थान

मुख्य मंत्री, राजस्थान,
जयपुर
अप्रेल ८, १९६९

सन्देश

यह हर्ष का विषय है कि राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि द्वारा गांधी शताब्दी के कार्यक्रम के अन्तर्गत 'गांधीजी और राजस्थान' ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

पूज्य बापू वह ज्योतिर्पुन्ज थे जो भारत के सभी भागों को प्रकाशमान कर मार्ग-दर्शन करते रहे। स्वतन्त्रता-संघर्ष में वह देश के विभिन्न भागों के करोड़ों लोगों तथा स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानियों के लिय शक्ति एवं प्रेरणा के अटूट स्रोत थे। देश की विदेशी शासन से मक्ति के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक पुनर्निर्माण उनका लक्ष्य था, जिसके लिये वह जीवन-पर्यन्त प्रयत्नशील रहे तथा देश के नव-निर्माण को निश्चित्त दिशा दी। महात्मा गांधी द्वारा दर्शाये गये आदंश ही हमारी प्रगति के आधार हैं।

स्वातन्त्र्य-संघर्ष में राजस्थान का अपना योग रहा है। देश के अन्य प्रान्तों से विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों में यहां की जनता ने जो स्वातन्त्र्य-संघर्ष में अपना भाग अदा किया, उसके पीछे भी पूज्य बापू ही की प्रेरणा थी। राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि द्वारा 'गांधीजी और राजस्थान' ग्रन्थ का प्रकाशन अत्यन्त उत्तम एवं स्वागत योग्य योजना है। गांधीजी के जीवन-दर्शन के पहलुओं का राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुतीकरण निश्चय ही एक अनुभूत आवश्यकता को पूरी करेगा।

मैं पू० बापू के प्रति श्रद्धावनत होते हुये ग्रन्थ की सफलता के लिये अपनी शुभ कामनायें भेजता हूं।

मोहनलाल सुखाड़िया

बापू का प्रिय भजन

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे,
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।

सकल लोकमां सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे।

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन जब झाले हाथ रे।

मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे,
राम नाम शूं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।

वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैंयो तेनुं दरसन करतां, कुल एकोत्तर तार्या रे।

आमुख

पाशविक शक्ति का सामना जिस पुरुष ने द्वेष-रहित प्रक्रिया से किया, मुर्दा दिलों में जिसने आग फूंकी, मानव-हित की ज्योति जगाई, अनेक क्षेत्रों में नवीनता लाया, जिसकी विचारधारा और कर्त्तव्य नित्य ओजस की झलक देता, जो सतत् गतिशील रहता, निर्मल गंगा की तरह, और एक महासागर था, सब का आदर करता हुआ अनिष्ट को दूर रखने वाला, मौक्तिक का आगर था, उस परम पुरुषार्थी के विषय में क्या लिखूं ? मेरी कलम उस कर्मवीर की किन्चित्-मात्र कथा भी क्या लिख सकती है ? फिर भी यहां दो शब्द आमुख के रूप में लिखना मेरा कर्त्तव्य-कर्म है।

बम्बई में उच्च-माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ता था तब से नाम सुन रखा था। एक नया नक्षत्र व्योम में दर्शन दे रहा था। धुंधला-सा दर्शन मानव चक्षु को हो रहा था। स्वराज्य-ऋषि, लोकमान्य, राज्य-केसरी तिलक महाराज अपने शरीर को छोड़ कर अपना तेज एक नये तपस्वी अनासक्त कर्मयोगी के शरीर में डाल रहे थे। उस दिन का संस्मरण कल की घटना जैसा ताजा है। मेरे निवास से बहुत दूर नहीं, और मेरे महाविद्यालय सेन्ट जेवियर्स कालेज के समीप, धोबी तालाब मोहल्ले में, सरदार गृह बड़े लोगों का एक सुविधाजनक अतिथि-गृह था। लोकमान्य का बम्बई का वह निवास स्थान था, उसी में उन्होंने अपने प्राण छोड़े। १ अगस्त १९२० का वह सुदिन था, क्योंकि एक महारथी दूसरे योग्य अनुयायी को सन्तप्त पराधीनों की सेवा का भार सौंप रहा था।

तिलक महाराज के अन्तिम दर्शन तथा कर्मवीर महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी के प्रथम दर्शन उसी रोज मैं कर पाया था। वैसे तो लोकमान्य के भाषणों का लाभ मैंने थोड़ा बहुत लिया था। उनकी सिंह-गर्जनायें मैंने पढ़ी सुनी थीं। वह ६ साल की कारावास की यातना भोगने जा रहे थे तब पुलिस की बन्द गाड़ी में उनके दर्शन बम्बई में भूलेश्वर तालाब की तली पर बैठ कर बहुत छोटी उम्र में किये थे। 'लाल, बाल और पाल' (लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल) की जय घोषणा होती थी तथा शोक संतप्त हृदय रो रहे थे, क्योंकि उनका लाड़ला बाल गंगाधर तिलक सुदूर ब्रह्म देश को भेजा जा रहा था।

जिस क्रान्तिवीर युग पुरुष की प्रेरणा-कथा की राजस्थान सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातें इस पुस्तक में हैं, उस महात्मा का न सिर्फ मैंने दर्शन किया पर उनके समागम में आया। उनका अन्तरंग तो मैं नहीं बना, पर उनके बताये हुए मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया है, और करता रहता हूं।

कार्यकर्त्ताओं की कमजोरियों को गांधीजी पहचानते थे, पर उनके सत्व को बढ़ाते थे और जीवन-शोधन की दिशा में अग्रसर करते थे। इसलिये मेरे जैसा एक अदना आदमी आखिर दम तक उनके दिल में स्थान पाता रहा।

गांधीजी हमसे बहुत आशायें रखते थे। अहिंसा और सत्य की कसौटी पर हम खरे नहीं उतरे, फिर भी कमजोरों को उन्होंने सुधारने की कोशिश की। हमारे में से कई उनको देव-आत्मा मानते हैं, पर वह अपने को एक सामान्य मानव समझते थे, अपनी साधना में लगे रहते थे, तपश्चर्या करते रहते थे। वह स्थिति-स्थापक नहीं थे, एक सतत प्रवाहित धारा की तरह प्रगति-शील थे। परिस्थितियों को बदलने का बल अपने में पैदा करते थे, तथा उन्हें बदल डालने के लिये वह नित्य प्रयत्नशील थे। गांधीजी ने अपनी जीवनी को 'सत्य का पयोग' कहा है। सत्य-शोधक होने के नाते वह सत्याग्रही थे और सत्याग्रही कभी निराश नहीं होता है।

अंग्रेजी हुकूमत भारत से खतम हुई, पर देश में जो वायु-मण्डल भारत के विभाजन से बना, वह उनके लिये अत्यन्त क्लेशकारी था। वह दुःखी थे और कभी कभी ऐसे उद्गार भी उनके मुंह से निकलते थे, जिनमें निराशा की झलक थी।

इस युग-पुरुष ने अनेक विषयों में हमारा मार्ग-दर्शन किया है। सिद्धान्त और व्यवहार में वर्चस्व सिद्धान्त का ही रहना चाहिये। उसके आचरण में कमी न आने देने का ध्यान वह हमेशा रखते थे। सिद्धान्त को एक ओर रख कर वह लाभ के मोह में फंसते नहीं थे। पर वह समन्वय को सत्याग्रह का एक अनिवार्य अंग मानते थे। इसलिये कई ऐतिहासिक प्रसंगों पर उनकी समन्वय नीति स्पष्ट दिखाई दी है, विशेष रूप में नमक सत्याग्रह के समय, इरविन गांधी समझौते में।

कब क्या करना होगा, समय कब परिपक्व है, जन-आन्दोलन कब आरम्भ करना या कराना चाहिये, और कब वह आप ही आप हो जायगा, इन सबका दर्शन उन्हें था। इसलिये देशी रियासतों की मोर्चा-बन्दियों में उन्होंने राष्ट्रीय-ध्वज को अ-नम रखने के लिए जनता के प्रजा मण्डल स्थापन करने के अधिकारों का न सिर्फ समर्थन किया बल्कि अपने खास-खास प्रति-

निधियों को जगह-जगह भेज कर आन्दोलनों को बल पहुँचाया तथा उन्हें सही दिशा में रखने में उनका मार्ग-दर्शन किया। ये सारी बातें इस पुस्तक में है। गांधीजी का राजस्थान के साथ सम्बन्ध मेवाड़ के बिजोलियां सत्याग्रह से आता है। हमारे लिये यह गौरव लेने का मौका है। उस सत्याग्रह के नेता वीर विजयसिंह पथिक हमारे बीच में आज नहीं हैं। उसी प्रकार बिजोलियां के सेनानी, निर्भीक, संकट-शमशेर, राजस्थान के एक निर्माता, दलितों के उद्धारक, भाई माणिक्यलाल वर्मा अभी हमें छोड़ गये हैं, जिसका शोक राजस्थान पर छाया हुआ है। लेकिन हमें तो कार्य करते रहना है। हमारा मार्ग वही रहेगा जो गांधीजी ने बताया था, और साधन हमारे शुद्ध रहेंगे, भले ही कार्य-साधन देर से हो। ऐसा हमारा संकल्प हो, उसे पूरा करने का बल मिले। हमारा सच्चा कार्य ही उनकी और माता कस्तूरबा की शताब्दी के अवसर पर हमारी श्रद्धाञ्जलि बने।

—गोकुलभाई दौ० भट्ट

दो शब्द

मार्च, १९६२ ई० में केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के मंत्री श्री श्रीकांत भाई ने 'गांधी और बिहार' ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर हमें यह सुझाव दिया था कि इस प्रकार का ग्रन्थ यदि राज्य शाखायें प्रकाशित करें तो भावी पीढ़ी के लिए बड़ा उपयोगी होगा। इतना ही नहीं, निधि के अध्यक्ष श्री रं. रा. दिवाकर ने इसके लिये कुछ सुझाव भी दिये जिनके आधार पर ग्रन्थ का संपादन किया जाय।

केन्द्रीय निधि के इस सुझाव के अनुसार राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि ने अपनी २३, मार्च, १९६४ ई० की बैठक में 'गांधीजी और राजस्थान' पुस्तक प्रकाशित करने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए एक समिति भी नियुक्त की। इस समिति ने ग्रन्थ के संपादन का मुख्य भार श्री शोभालाल गुप्त को सौंपने का निश्चय किया। शोभालालजी उन दिनों 'दैनिक हिन्दुस्तान,' दिल्ली, के सह-संपादक के पद से मुक्त ही हुए थे। वह राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम पंक्ति के एक सत्याग्रही रहे हैं और बिजोलियां सत्याग्रह से लेकर आधुनिक राजस्थान के निर्माण तक राजनीतिक एवं सामाजिक सभी गतिविधियों के जानकार रहे हैं। राजस्थान सेवा संघ, राजस्थान हरिजन सेवक संघ के सदस्य व मंत्री होने के नाते, तथा कुछ काल तक गांधीजी के आश्रमवासी होने के नाते, वे गांधीजी का राजस्थान से जहां जहां और जब-जब सम्बन्ध आया, उसकी प्रत्यक्ष जानकारी में से गुजरे हैं। अतः समिति ने इस कार्य के लिये उन्हें उपयुक्त समझा। उन्होंने समिति की प्रार्थना पर तथा मुझ पर विशेष स्नेह होने से यह भार उठाना स्वीकार किया। इससे मैं चिन्ता मुक्त हुआ।

शोभालालजी ने १८ दिसम्बर, १९६४ ई० को अपना कार्य प्रारम्भ किया और प्रान्त के प्रमुख ७५ लोगों की एक सूची बनाकर उनसे जानकारी भेजने की प्रार्थना की। उन्होंने सन् १९६५–६६ में राजस्थान के मुख्य-मुख्य स्थानों का दौरा भी किया और सामग्री एकत्रित की। सन् १९६७ में कार्य तो चलता रहा, परन्तु लम्बी बीमारी व आंत के बड़े ऑपरेशन के कारण मैं उनका सहायक नहीं बन सका और काम कुछ रुक गया। आखिर सन् १९६८ के मध्य में स्वस्थ होने पर मैं तैयार सामग्री को देख पाया और समिति के सदस्यों के समक्ष रख सका। सबके सुझाव-संशोधन के अनुसार आवश्यक

परिवर्तन कर लेने के बाद जब सामग्री तैयार हुई, तब मैंने दिसम्बर में ग्रन्थ को टाइप करवा कर प्रेस में दिया। प्रेस में छपाई की देख-भाल करने तथा प्रूफ देखने के लिये मैंने समिति के सदस्य श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय से प्रार्थना की। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की और यह प्रसन्नता की बात है कि गांधी जन्म शताब्दी के इस वर्ष में हम पाठकों की सेवा में अपना यह नम्र प्रयास प्रस्तुत करने जा रहे हैं।

ग्रंथ के दो खण्ड है। प्रथम खण्ड में उस समय के राजपूताना की राजनीतिक एवं रचनात्मक क्रान्ति के साथ राष्ट्रपिता गांधीजी व राष्ट्रमाता कस्तूरबा का जो सम्बन्ध आया और उसमें जो मार्ग-दर्शन व प्रयत्न बा और बापू ने किया, उसका वर्णन है। दूसरे खण्ड में आधुनिक क्रांति के प्रमुख नेताओं के संस्मरण हैं। हमने बहुत प्रयत्न किया कि हमको उस समय के बहुत से फोटो तथा गांधीजी के पत्र आदि उपलब्ध हों, परन्तु हमें दुःख है कि बावजूद पूरे प्रयत्न के हम कुछ थोड़े से ही फोटो प्राप्त कर सके हैं। इन्हें ग्रन्थ में प्रसंगों के साथ दिया गया है। इस प्रकार से यह ग्रन्थ, राजस्थान के जन-जीवन को गांधीजी ने किस प्रकार जाग्रत किया, आन्दोलित किया, आगे बढ़ाया और परतन्त्र भारत के मुक्ति-संग्राम में साथ लिया, उसका संक्षिप्त इतिहास ही है।

अजमेर-मेरवाड़ा को छोड़कर उस समय का सारा राजपूताना देशी राजाओं के अधीन था और गांधीजी का यह मानना था कि राजा लोग तो अंग्रेजी हुकूमत के सहारे टिके हुए हैं, अतः अंग्रेजों की गुलामी से भारत को मुक्त करने में ही सारी ताकत लगाई जाय। अतः वह देशी राज्यों में आये ही नहीं। वह कुल तीन बार अजमेर आये। पहली बार सन् १९२१ में आये जब मौलाना मोहम्मद अली भी साथ थे। गांधीजी के प्रयत्न से ख्वाजा साहब की दरगाह में खिलाफत वालों से समझौता हुआ। दरगाह में मौलाना मोहम्मद अली और गांधीजी के महत्वपूर्ण भाषण हुए और उस समय अजमेर में हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद का ऐसा वातावरण बना कि देखते ही बनता था। गांधीजी उस समय श्री गौरीशंकर भार्गव के यहां ठहरे थे। इस समय के संस्मरण प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न किया गया लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली। हकीम निजामुद्दीन साहब से कुछ सामग्री मिलने की आशा थी, परन्तु वृद्धावस्था में उनकी लम्बी बीमारी व बाद में स्वर्गवास से वह भी संभव नहीं हो सका। इस विषय में मखमूर साहब से, जो उस समय की जानकारी रखते थे, संपर्क करने का प्रयत्न किया, परन्तु उनका पता न लग सका।

मौलाना मोहम्मदअली के सुपुत्र जाहिद अली साहब से भी पत्र-व्यवहार हुआ, परन्तु उनकी सारी सामग्री जामिया मिल्लिया (दिल्ली) को भेज देने से तथा वहां से उपलब्ध नहीं होने से कोई परिणाम नहीं निकला।

पुस्तक में कई प्रकार की कमियां रह सकती हैं। छपाई में भी बाव-जूद पर्याप्त सावधानी के कुछ त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक है। पाठक उसके लिए हमें इस बार क्षमा करेंगे तथा अगले संस्करण में उन्हें दूर करने के लिये अपने सुझाव भेजने की कृपा करेंगे।

यह स्वाभाविक था कि इस प्रयास में प्रदेश के वयोवृद्ध नेता, गांधी-युग के समकालीन क्रान्तिकाल में उनके साथी तथा भक्त, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री रामनारायण चौधरी तथा श्री गोकुलभाई भट्ट का प्रारम्भ से अन्त तक मार्ग-दर्शन मिलता रहा जिसके बिना ग्रन्थ का इस रूप में प्रकट होना कठिन ही होता। राज्य गांधी स्मारक निधि इनके प्रति अत्यन्त आभारी है। साथ ही श्री शोभालाल गुप्त ने इसके संपादन में जो कष्ट उठाया और पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ प्रकाशन के अन्तिम समय तक जो प्रयत्न किया, उसके लिए उनके प्रति आभार प्रकट करना राज्य निधि अपना कर्त्तव्य समझती है। और भी जिन-जिन नेताओं, कार्यकर्ताओं एवं माता-बहिनों ने इसके लिये लेख एवं सामग्री प्रदान करने की कृपा की, तथा श्री मार्तण्ड उपाध्याय (सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली), श्री बालकृष्ण गर्ग (अजमेर), श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी (नव ज्योति, अजमेर) व श्री मोहनराज भंडारी (अजमेर) ने ग्रंथ के लिए फोटो प्रदान किये, उन सबको राज्य निधि हार्दिक धन्यवाद अर्पित करती है। अजमेरा प्रिन्टिंग वर्क्स, जयपुर ने अल्प समय में पुस्तक को छाप कर जो सहयोग दिया है उसके लिये हम कृतज्ञ हैं।

गांधी शताब्दी के अवसर पर राजस्थान की जनता के हाथों में यह ग्रन्थ समर्पित करते हुए हमें अतिशय आनन्द का अनुभव हो रहा है।

आशा है राज्य में इस प्रकाशन का हार्दिक स्वागत होगा और राज्य की आने वाली पीढ़ियां इससे प्रेरणा पाकर राजस्थान को अधिक सुदृढ़, स्वा-वलम्बी, सुखी एवं सम्पन्न बनाने में गांधीजी के विचारों के अनुसार सदा आगे बढ़ती रहेंगी।

केसरपुरी गोस्वामी
मंत्री,
राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि

भीलवाड़ा.
१३ अप्रेल, १९६९ ई.
1969

निवेदन

राजस्थान गांधी स्मारक निधि के मन्त्री श्री केसर पुरी गोस्वामी से काफी पुरानी जान पहचान है जो आत्मीयता में बदल गई है। उन्होंने काफी समय पहले यह सुझाव दिया कि गांधी संवत्सरी निकट आ रही है और इस प्रसंग में गांधीजी की राजस्थान सम्बन्धी स्मृतियों को सुरक्षित रखने के लिए **'गांधीजी और राजस्थान'** नामक पुस्तक तैयार की जाय, और यह काम मुझे करना चाहिए। मैंने उनके इस सुझाव का स्वागत किया और इस भार को उठाने के लिए राजी हो गया। कुछ तो राजस्थान के सार्वजनिक जीवन के साथ लम्बा सम्पर्क रहा और कुछ घिसते-घिसते कलम चलाने का अभ्यास हो गया है। किन्तु सब से बड़ी बात यह थी कि काफी समय से गांधीजी मेरे मन और मस्तिष्क पर छाये हुए हैं और मै यह मानने लगा हूं कि सार्वजनिक जीवन का संचालन गांधी विचारधारा के अनुसार होगा तो ही देश का और दुनियां का कल्याण हो सकेगा। मेरे पास ईश्वर कृपा से अवकाश भी था। इसलिए मैंने श्री केसर पुरी का अनुरोध स्वीकार कर लिया।

किन्तु जैसा सोचा था, काम उतना आसान नहीं निकला। उसके लिए राजस्थान की यात्राएं करनी पड़ीं, लोगों से मिलना जुलना पड़ा और पुरानी फाईलों और अनेक पुस्तकों में गोता लगाना पड़ा। कुछ पुरानी याद-दाश्त ने काम दिया। मित्रों से जो सहयोग अपेक्षित था, वह नहीं मिला। ऐसे भी क्षण आये, जब लगा कि मैं इस काम को पूरा भी कर पाऊंगा अथवा नहीं। गाड़ी रुक सी गई थी। किन्तु ईश्वर के अनुग्रह से पुस्तक का ढांचा तैयार हुआ और उसको पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। मेरा ख्याल है कि इसमें पाठकों को उस राजस्थान की एक झलक मिलेगी, जब सामन्तवाद अपने निकृष्ट रूप में पंजे फैलाये हुए था और अंग्रेजी राज ने उसे अपना संरक्षण प्रदान किया हुआ था। लोग शोषण और उत्पीड़न के शिकार थे और दम-घोटू वातावरण में जी रहे थे। नागरिक स्वतंत्रताओं का एकदम अभाव था। राजस्थान छोटी-बड़ी रियासतों में बंटा था और हर रियासत के लोगों को मानवोचित जीवन की अपनी लड़ाई अलग से लड़नी पड़ रही थी। ऐसे समय में गांधीजी एक चमत्कारी पुरुष के रूप में भारत के राज-नीतिक और सामाजिक रंग-मंच पर अवतरित हुए और देश का कोई कोना

उनके संजीवनकारी प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। उन्होंने राजस्थान के जन आन्दोलन को भी प्रभावित किया। लोग और कार्यकर्ता हर कठिन प्रसंग पर उनसे मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए उनके पास पहुंचते थे और वे अपने जादुई स्पर्श से लोगों की मुश्किलों को आसान बनाते थे। कार्य-कर्ताओं के लिए वह अखण्ड प्रेरणा के स्रोत थे।

इस पुस्तक में पाठक देखेंगे कि गांधीजी ने किस प्रकार राजस्थान के लोक पक्ष को प्रबुद्ध और संगठित होने में सहायता पहुंचाई, रचनात्मक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया, और उसे अपनी मंजिल की ओर आगे बढ़ाया। उनके नेतृत्व में जब देश अंग्रेजी जुए से मुक्त हुआ, तो राजस्थान का सामन्त-वाद भी लड़खड़ा कर गिर गया और राजस्थान के इतिहास ने नया मोड़ लिया। अब रियासतों और शेष भारत का भेद मिट गया है, और राजस्थान अन्य राज्यों के साथ कदम मिला कर चलने का प्रयत्न कर रहा है। किन्तु वह आदर्श समाज, रामराज, जिसकी गांधीजी ने कल्पना की थी, आज भी हमारी दृष्टि से ओझल हो रहा है। अगर यह पुस्तक इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए कुछ भी प्रेरणा दे सके तो इसके लिए जो श्रम किया गया, वह सार्थक हो सकेगा।

— शोभालाल गुप्त

लेख सूची

प्रथम खंड

गांधीजी का मार्ग-दर्शन

लेख संख्या	लेख	पृष्ठ संख्या

द्वितीय खंड

संस्मरणात्मक लेख

बा और बापू

प्रथम खंड

गांधीजी का मार्ग-दर्शन

ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं से सम्बन्धित स्थान

१

धरती पावन हुई

कहते हैं जिस धरती पर सन्तों के चरण पड़ते हैं, वह धरती पावन हो जाती है। महात्मा गांधी हमारे जमाने के सबसे बड़े सन्त थे। उन्होंने अपने विभिन्न आन्दोलनों और रचनात्मक कामों के सिलसिले में अखिल भारतीय दौरे किये। लाखों करोड़ों को अपनी वाणी से प्रभावित किया। यह कोई आश्चर्य नहीं कि जिन नगरों और गांवों में गांधीजी का पदार्पण हुआ वे आज अपने को धन्य समझें और उनके प्रवास की स्मृतियों को संजो कर रखना चाहें।

राजस्थान सामन्तवाद का गढ़ था। उसका अधिकांश भाग रियासतों के अधीन था। गांधीजी की लड़ाई सीधी अंग्रेजों से थी। वह सबसे पहले अंग्रेजी राज को देश से हटाना चाहते थे। वह समझते थे कि राजा महाराजा तो अपने हैं और अंग्रेजी राज के हट जाने के बाद उनके सीधी राह पर आने में विलम्ब न लगेगा। फिर भी राजस्थान की रियासतों में राजा-महाराजाओं के कुशासन के विरुद्ध जन आन्दोलन हुए, उनको गांधीजी का नैतिक समर्थन और व्यक्तिगत मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ। गांधीजी ने रियासतों में रचनात्मक काम करने की सलाह दी और उनकी प्रेरणा पर राजस्थान की रियासतों में खादी और हरिजन सेवा जैसे कार्य संगठित रूप से हुए। इन कामों के प्रति राजा-महाराजाओं और उनके अधिकारियों की सहानुभूति प्राप्त की गई।

राजस्थान का अजमेर जिला अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत था। अजमेर नगर जिले का सदर मुकाम था। रियासतों की अपेक्षा अजमेर जिले में नागरिक स्वतंत्रता अधिक थी और इसलिए अजमेर तथा ब्यावर नगर शुरू से ही राजनीतिक हलचलों के मुख्य केन्द्र बन गये। देश में जो भी सत्याग्रह आन्दोलन चले, उनमें अजमेर जिले ने आगे बढ़ कर भाग लिया। गांधीजी ने जब देश में असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश किया तो अजमेर उसमें आगे था। प्रिंस आफ वेल्स के आगमन पर अजमेर में जबर्दस्त हड़ताल हुई। हिन्दू-मुस्लिम एकता का गांधीजी का स्वप्न अजमेर ने चरितार्थ करके दिखाया। अजमेर के हिन्दू और मुसलमान दूध और शक्कर की भांति एक दूसरे के साथ घुल मिल गये और दोनों ने असहयोग का झण्डा ऊंचा किया। श्री चांदकरण शारदा और मौलाना मुईनुद्दीन असहयोग के नेताओं के रूप में सामने आये और जनता उनके इशारों पर नाचने लगी। सरकार को किसी को गिरफ्तार करना होता तो उसके अधिकारियों को कांग्रेस और खिलाफत के नेताओं की सहायता लेनी पड़ती थी।

गांधीजी का अजमेर में एक से अधिक बार पधारना हुआ। असहयोग आन्दोलन के जमाने में वे दो बार आये और जब भी आये, श्री गौरीशंकर भार्गव के निवास स्थान 'फूल निवास' में कचहरी रोड पर ठहरे थे। ऐसा याद पड़ता है कि पहली बार वह अहमदाबाद कांग्रेस के पहले, अक्टूबर १९२१ में आये थे। उस समय अजमेर में फर्रुखाबाद के श्री शेरसिंह कांग्रेस का काम करते थे। उन्होंने गांधीजी को बुलाया था।

दूसरी बार ८ मार्च १९२२ को साबरमती से उनका अजमेर आना हुआ। १० मार्च को वह साबरमती वापस लौट गये। उसी रात उनको सरकार ने गिरफ्तार किया और मुकदमा चला कर छः वर्ष कैद की सजा दे दी। सरकार तो उन्हें अजमेर में ही गिरफ्तार करना चाहती थी, किन्तु स्थानीय अधिकारियों ने इस अरुचिकर घटना को अपने यहां नहीं होने दिया। उन्हें अशांति फैल जाने की आशंका थी। इस बार गांधीजी स्वामी कुमारानन्द के निमन्त्रण पर आये थे। अजमेर में जमीयतुल उलेमा कान्फ्रेन्स हो रही थी। अजमेर के मौलाना मईनुद्दीन उसके स्वागताध्यक्ष थे। इस कान्फ्रेन्स में अन्य उलेमाओं के अलावा मौलाना हसरत मोहानी भी आये थे। गांधीजी देश में अहिंसा के पक्ष में वातावरण बना रहे थे, किन्तु उलेमा कान्फ्रेन्स में इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया कि इस्लाम की रूह से मजहब और

इन्साफ की हिफाजत के लिए तलवार उठाना भी जायज होगा। गांधीजी जब अजमेर स्टेशन पर पहुँचे तो स्वामी कुमारानन्द ने उनका स्वागत किया। वह चुपचाप निजी तौर पर आये थे। श्री गौरीशंकर भार्गव के यहां ठहरे और दरगाह में उलेमाओं की बैठक में शामिल हुए। उन्होंने समझा बुझाकर उलेमा कान्फ्रेन्स के प्रस्ताव को बदलवाया। इसमें मौलाना मुईनुद्दीन ने गांधीजी का समर्थन किया था। वापसी में मौलाना हसरत मोहानी गांधीजी के साथ ही अहमदाबाद गये थे। उन्होंने गांधीजी को वचन दिया था कि वह अहिंसा का पालन करते हुए कांग्रेस कार्यक्रम का समर्थन करेंगे।

तीसरी बार गांधीजी सन् १९३४ में अपनी देश की नौ महीने की हरिजन यात्रा के सिलसिले में अजमेर आये। वह ३ जौलाई को भावनगर (काठियावाड़) से विशेष रेलगाड़ी से अजमेर के लिए रवाना हुए। ४ जुलाई की रात को गांधीजी अजमेर पहुँचे। उन्हें कचहरी रोड स्थित कोठी पर ठहराया गया। वह राजपूताना हरिजन सेवक संघ के निमंत्रण पर आये थे। गांधीजी की इस यात्रा का प्रबन्ध करने के लिए एक स्वागत समिति गठित की गई थी। दीवान बहादुर हरविलास शारदा इसके अध्यक्ष, श्री रामनारायण चौधरी और श्री कृष्णगोपाल गर्ग मंत्री नियुक्त किये गये थे।

दूसरे दिन ५ जौलाई को सवेरे गांधीजी महिलाओं की सभा में गये। इस सभा में स्त्रियों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा:—

"मैं आप लोगों के सामने कोई खास दलील नहीं रखना चाहता। इससे कौन इन्कार कर सकता है कि हम सभी इस संसार में प्रेम-बन्धन से बंधे हुए हैं। प्रेम का कानून हमारे ऊपर शासन कर रहा है। गोसाई तुलसीदास जी ने कहा है कि 'दया धर्म का मूल है' यानि दया ही धर्म की जड़ है। चूंकि यह अस्पृश्यता प्रेम और दया की भावना के विपरीत है, इसलिए इस पाप का अन्त अवश्य होना ही चाहिए। एक ओर तो हम प्रेम भाव का दावा करें और दूसरी ओर अपने ही लाखों करोड़ों भाईयों को गन्दी से गन्दी जगह में रखें, उन्हें कुओं से पानी न भरने दें, पशुओं के गन्दले हौजों से उन्हें पानी पीने के लिए मजबूर करें और अगर सार्वजनिक कुओं पर वे बेचारे अपना हक समझ कर पानी भरने जाएं तो उन पर आक्रमण कर बैठें। यह दोनों बातें भला एक साथ कैसे हो सकती हैं? इसी प्रकार जब सवर्णों के गन्दे बच्चे खासी अच्छी तादाद में स्कूल-मदरसों में जा सकते हैं, तब हरिजन बच्चों को, उनके सफाई से रहते हुए भी सार्वजनिक स्कूलों में

अलग रखना कहां तक उचित है, कहां तक न्याय संगत है ? दूसरों को अपने से नीच समझना एक प्रकार का अभिमान है जिसे तुलसीदास जी ने सब पापों का मूल कहा है (पाप मूल अभिमान) और अभिमान तो नाशकारी ही है।"

गांधीजी राजपूताना के हरिजन नेताओं से मिले। उन्होंने बेगार प्रथा की शिकायत की। राजपूताना की रियासतों में उस समय हरिजनों में रेगिस्तान के कारण यों ही पानी का अभाव था और फिर जहां दो चार सार्वजनिक कुए थे उनसे भी हरिजनों को पानी नहीं भरने दिया जाता था। हरिजनों ने यह शिकायत की कि बड़े आदमियों के सामने न तो वे घोड़े या साइकिल पर चढ़ सकते हैं न खाट पर बैठ सकते हैं। सोने चांदी के जेवर या अच्छे कपड़े भी नहीं पहन सकते हैं। उनका छाता लगाना भी गुस्ताखी समझा जाता है।

इसके बाद गांधीजी राजस्थान चरखा संघ के कार्यकर्ताओं से मिले। उन्होंने खादी प्रचार के साथ-साथ हरिजन सेवा का जो कार्य किया था उसकी रिपोर्ट गांधीजी के सामने प्रस्तुत की। अमरसर (जयपुर) के खादी केन्द्र में सन् १९२९ में एक हरिजन पाठशाला स्थापित की गई। वह इतनी अच्छी तरह से चली कि उसमें सवर्णों के बच्चे भी दाखिल हुए। सवर्ण और हरिजन उसमें बिना किसी भेदभाव के पढ़ने लगे। बाद में खादी सेवकों ने एक हरिजन सहायक मण्डल स्थापित किया, जिसने तीन पाठशालाओं का संचालन किया, हरिजनों से शराब और मुर्दार मांस छुड़ाया, दवा-दारू दी और हरिजनों की जातीय पंचायतें संगठित कीं।

गांधीजी ने हरिजन सेवकों को भी उस दिन सम्बोधित किया। उन्होंने कहा, "मैं चाहता हूं कि पूरी सच्चाई और ईमानदारी से हमारे सेवक हरिजनों की सेवा करें। सेवा का फल मेवा ही है। स्वार्थ या किसी राजनीतिक उद्देश्य का तो इसमें लेश भी नहीं होना चाहिए। हमारा मुख्य लक्ष्य तो हिन्दू धर्म की शुद्धि है। इसलिए उन लोगों के लिए इस हरिजन प्रवृति में कोई स्थान नहीं हो सकता जो इसमें राजनीतिक दृष्टि से पड़ना चाहते हैं। ऐसों को तो तुरन्त इस आंदोलन से अलग हो जाना चाहिए, क्योंकि उनका इसमें बना रहना हरिजन कार्य को भारी हानि पहुंचा सकता है। अगर इस प्रवृति के पीछे हमारा कुछ राजनीतिक उद्देश्य हुआ, तब हम सवर्ण हिन्दुओं का हृदय कभी नहीं पलट सकते। इस आंदोलन में तो केवल उन्हीं को भाग लेना

चाहिये जो सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त स्वीकार कर चुके हों, और जिनका यह विश्वास हो कि हरिजन हिन्दू धर्म का अविच्छेद अंग हैं।"

गांधीजी ने अजमेर की हरिजन बस्तियां भी देखीं। पहले वह दिल्ली दरवाजे की हरिजन बस्ती देखने गए। उसके बाद उन्होंने तारागढ़ के ढाल में बसी मलूसर की हरिजन बस्ती को देखा। यहां मेहतरों की सड़ी गली झोंपड़ियां बनी हुई थीं। इस बस्ती के निवासियों को पानी का बड़ा कष्ट था। ४०० परिवारों के लिए पानी का एक नल था। गांधीजी रेगरों के मुहल्ले में भी गए। म्युनिसिपल कमेटी ने एक बड़ा तालाब उनके लिए खोल दिया था।

आनासागर की पाल पर सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में राजपूताना हरिजन सेवक संघ की ओर से गांधीजी को एक मानपत्र भेंट किया गया जिसमें राजपूताना के हरिजनों की तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थिति का वर्णन किया गया था। उसके महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे :—

'राजपूताना की जन संख्या १,१२,२५,७१२ है। इसमें हरिजनों की संख्या १५,६५,४०७ है। इस हिसाब से हरिजन कुल आबादी के १४ प्रतिशत हैं और हिन्दू आबादी के १५.५ प्रतिशत। यदि इनमें २,२६,०९२ भील, जिसकी सामाजिक स्थिति हरिजनों से कुछ अच्छी है परन्तु आर्थिक एवम् अन्य हालत हरिजनों से भी खराब है, शामिल कर लिये जायें तो हरिजनों का अनुपात और भी बढ़ जाता है। इनमें मुख्य जातियां साधारणतः खेती, मजदूरी, धुनाई, बुनाई, सफाई, बांस एवम् चमड़े का काम करती हैं। इस प्रांत में आमतौर पर मन्दिर-प्रवेश का अधिकार नहीं है। किन्तु यह बात साश्चर्य प्रसन्नता की है कि त्यौहार और पर्व के अवसरों पर अनेक हरिजन मन्दिरों में सवर्ण भक्त भी भेदभाव छोड़कर जाते हैं और 'अछूत' पुजारी के हाथ का प्रसाद निस्संकोच भाव से खाते हैं।

'विद्यालयों में एक दो राज्यों के सिवाय हरिजनों का प्रवेश नहीं है। जहां है, वहां भी कई स्थानों पर हरिजन छात्रों को अलग बैठाया जाता है। मेहतरों का तो प्रायः सर्वत्र बहिष्कार है। हरिजनों में पुरुष ६००० अर्थात् ४ प्रतिशत और स्त्रियां २७२ अर्थात् '०२ प्रतिशत साक्षर हैं।

'हरिजनों के मुख्य कष्ट बेगार, पानी और औषधि की सन्तोषजनक व्यवस्था का अभाव तथा सवारियों, आभूषणों, व्यंजन और वस्त्र इत्यादि जीवन की सुविधाओं सम्बन्धी सामाजिक प्रतिबन्ध हैं।

'बेगार के राजनीतिक और सामाजिक प्रश्न ने एक युग से सभ्य संसार का ध्यान आकर्षित कर रखा है। फलस्वरूप बेगार की कठोरता कुछ कम हुई है और कुछ मजदूरी भी बढ़ी है, परन्तु समस्या अभी हल नहीं हुई है। हजारों हरिजनों के सुख स्वातन्त्र्य में अब भी यह बड़ी बाधक है। यह कुप्रथा सारे प्रांत में विद्यमान है।

'पानी का प्रश्न इस प्रांत में बड़ा विकट है। हां, दक्षिणी और पूर्वी राजपूताना में उतना विकट नहीं है। वहां नदियां और सरोवर भी हैं। परन्तु पश्चिमी राजपूताना तो मरूभूमि है। कुए ही वहां के मुख्य जलाशय हैं। वहां हरिजनों की हालत बड़ी खराब है। आमतौर पर वे सवर्णों के कुओं पर नहीं चढ़ सकते। मेहतरों की स्थिति अत्यन्त दयाजनक है। उन्हें या तो कोई सवर्ण ऊपर से पानी डाल देता है या पीने और दूसरे कामों के लिए खेल के पानी से काम चलाना पड़ता है। खेल प्रत्येक बड़े कुए से लगे हुए लंबे हौज को कहते हैं। इसमें पशु पानी पीते हैं, रजस्वला स्त्रियां कपड़े धोती हैं और ग्रामीण लोग आबदस्त लेते हैं। यह अमानुषिकता है भी ऐसे स्थानों में जहां लक्ष्मी का बाहुल्य है, धर्म की दुन्दुभी बजती है, और सुधारों के दावेदार भी कम नहीं है। इसे भाग्य चक्र कहें या धनी सुधारकों और सनातनियों की सचाई पर कलंक।

'औषधि चिकित्सा के सम्बन्ध में भी हरिजनों के कष्ट विशेष गम्भीर हैं। कोसों तक दवाखाना ही नहीं है। सैकड़ों मनुष्य दवा-दारू के अभाव में हर साल कराल काल के शिकार हो जाते हैं।

'कई स्थानों पर हरिजनों को सोने-चांदी के जेवर नहीं पहनने दिए जाते, मिठाइयां नहीं बनाने दी जातीं, और कोई ऐसी बातें नहीं करने दी जातीं, जिनसे सवर्णों के साथ समानता प्रकट होती है। उच्च जाति वाले अपने सामने हरिजनों को न सवारी पर बैठने देंगे और न नै लगाकर हुक्का पीने देंगे।

''राजपूताना के हरिजनों की आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं है। हरिजन किसानों और मेहतरों पर कर्ज का भार लदा रहता है। उनकी आय

बहुत थोड़ी है। शराब और अकाल उन्हें साहूकार के चंगुल में फंसा देते हैं। इसमें से वे पीढ़ियों तक नहीं निकल पाते। चमारों और रेगरों की हालत जरा अच्छी है। परन्तु ये मदिरा पान में और विवाह तथा मृत्यु के अवसरों पर अपव्यय करके गांठ का पैसा भी खो देते हैं और कर्जदार भी हो जाते हैं।

'हरिजनों में शराब पीने और मुर्दा मांस खाने का रिवाज तो प्रायः सभी जगह है। हां, कई स्थानों पर सुधार की वृत्ति भी पैदा हो गई है और बहुत से हरिजनों ने ये दोनों बुराइयां छोड़ भी दी हैं।

'हरिजनों की इस गम्भीर स्थिति के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम तो राजपूताना सामाजिक और राजनीतिक कट्टरता का गढ़ है। यहां वर्तमान स्थिति में परिवर्तन करने वाले सभी कार्य संदेह की दृष्टि से देखे जाते हैं। दूसरी ओर चिर गरीबी, अज्ञान और रोग से पीड़ित होने के कारण जन साधारण में से आत्म प्रेरणा की भावना नष्ट प्रायः हो गई है। परन्तु हरिजन सेवक संघ ने देशी राज्यों में काम करने की जो मर्यादायें अपने पर लगा रखी हैं उनसे काफी लाभ हुआ और कुछ छोटे राज्यों में इस कार्य के प्रति सद्-भावना प्रकट हुई। देशी राज्यों में से अधिकांश ने तटस्थ वृति रखी। कुछ राज्यों में कार्य में बाधा भी पड़ी। परन्तु आशा है ये घटनायें व्यक्तियों के स्वभाव का ही परिणाम थीं, राज्यों की नीति की परिचायक नहीं।'

'कुछ स्थानों को छोड़कर दूसरी जगहों पर सनातनी भाइयों ने भी विशेष विरोध नहीं किया।'

सभा-स्थल पर एक खेदजनक घटना हो गई जिससे रंग में भंग पड़ गया। बाबा लालनाथ अपने एक जत्थे के साथ गांधीजी के हरिजन आंदोलन के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के लिए अजमेर पहुंचे हुए थे। पूना में एक मोटर पर बम फैंका जा चुका था, यह समझकर कि उसमें गांधीजी बैठे हैं। गांधीजी उसमें नहीं थे और इसलिए बाल-बाल बच गए। अजमेर में भी उपद्रव की कुछ आशंका थी। यह अफवाह फैली हुई थी कि गांधीजी पर पत्थर फैंकने के लिए दो बदमाशों को तैनात किया गया है। गांधीजी के कान तक जब यह बात पहुंची तो उन्होंने कहा, "बाबा लालनाथ ऐसा काम नहीं कर सकते। मैं इस अफवाह पर विश्वास नहीं कर सकता। मैं उनसे कई बार मिला हूं।" तीसरे पहर बाबा लालनाथ गांधीजी से मिलने आये थे और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि जिस प्रकार कटक आदि की सार्वजनिक

सभाओं में वह बोले थे उसी प्रकार अजमेर की सभा में भी वह बोलना चाहेंगे। गांधीजी ने तुरन्त उनका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, किन्तु उनसे कहा कि उन्हें सभा में गांधीजी के पहुंचने के बाद आना चाहिए। दुर्भाग्यवश बाबा लालनाथ अपने स्वयं सेवक दल के साथ, जो काले झण्डे लिए हुए था, गांधीजी के पहले ही सभास्थल पर पहुंच गए। जनता के कुछ लोगों की उनसे मुठभेड़ हुई। किसी व्यक्ति ने, जिसका बाद में भी पता नहीं चला, उनके सिर पर लाठी का प्रहार किया, जिससे खून बहने लगा। जब गांधीजी को इस घटना का पता चला तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने बाबा लालनाथ को बुलाकर मंच पर अपने पास बिठाया और उनकी चोट पर पट्टी बांधी गई। गांधीजी ने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहाः—

"काली झण्डी वालों को साथ लेकर पं० लालनाथ को सभा में आने और हमारे आन्दोलन के विरुद्ध प्रदर्शन करने का पूरा अधिकार था। जिस किसी ने उन पर यह हमला किया है, उसने बहुत बड़ी अशिष्टता की है। काली झण्डियां सुधारकों का क्या बिगाड़ सकती थीं, किन्तु पं० लालनाथ पर जो यह वार हुआ है उससे निश्चय ही हरिजन कार्य को क्षति पहुँची है। जिस किसी ने लालनाथजी पर यह वार किया है उसने ईश्वर तथा मनुष्य दोनों की दृष्टि में एक भारी गुनाह किया है। यह अपराध यों ही क्षमा नहीं किया जा सकता, जबकि मैं लालनाथजी की रक्षा का सारा भार अपने पर ले चुका था। हिंसापूर्ण तरीकों से अस्पृश्यता का यह काला दाग कदापि नहीं मिट सकता। अवश्य ही इस पाप-कृत्य का मुझे कुछ न कुछ प्रायश्चित करना पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि हिंसा, असत्यता, क्रोध से न तो धर्म की सेवा ही हो सकती है और न धर्म की रक्षा ही। धर्म रक्षा या धर्म की सेवा तो आत्मत्याग और आत्मसंयम के द्वारा ही हो सकती है। मैं तो राजनीतिक वातावरण में भी हिंसा को बर्दाश्त नहीं कर सकता, फिर यह तो धर्म क्षेत्र है।"

गांधीजी ने इसके बाद लालनाथजी से बोलने के लिए कहा। वह दो ही मिनट बोले थे कि लोग "शेम शेम" की आवाज पुकारने लगे और उनका बोलना मुश्किल हो गया। इस पर गांधीजी ने लोगों को डांटते हुए कहाः—

"यह तो आप लोगों की बहुत बड़ी अशिष्टता है। एक तो पहले ही उन पर वार करके अविनय का काम किया गया और अब उनकी बात सुनने से इन्कार करके आप यह दूसरी अशिष्टता कर रहे हैं। अगर आप पं० लालनाथ की बात सुनने को तैयार नहीं, तो इसका यह मतलब हुआ कि आप मेरी

१९३४ ई० की 'हरिजन यात्रा' के दौरान गांधीजी अजमेर में
सार्वजनिक सभा के लिए रवाना होते समय ।
साथ में श्री कृष्णगोपाल गर्ग ।

भी बात सुनना नहीं चाहते। मुझ से कभी कोई भूल नहीं हुई, यह दावा मैंने कभी नहीं किया। मैंने तो अपने जीवन में हुई भारी-भारी भूलों को स्वीकार कर लिया है। अगर मैं मुक्त कण्ठ से यह कह सकता हूँ कि अस्पृश्यता एक पाप है तो लालनाथजी को भी यह कहने का उतना ही अधिकार है कि उनकी राय में अस्पृश्यता निवारण का यह आन्दोलन एक अधार्मिक आन्दोलन है। आप जो यह 'शेम शेम' की आवाजें लगा रहे हैं सो यह धिक्कार लालनाथ जी के लिए नहीं, बल्कि आपके लिए है। असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है। जो मनुष्य अपने विरोधियों की बात नहीं सुनना चाहता, वह कदापि धर्माचरण का पात्र नहीं कहा जा सकता। हरिजन सेवा एक धार्मिक प्रवृति है। इसमें असहिष्णुता या हिंसा के लिए स्थान नहीं है। मान लीजिए कि कोई मुझ पर ही घातक हमला कर बैठे, तो क्या आप आपे से बाहर हो जायेंगे और पागल की तरह हिंसा पर उतारू हो जायेंगे ? ऐसा है तो मैंने व्यर्थ ही आपके आगे अपना जीवन बिताया। ऐसा करके तो आप विशाल आन्दोलन को ही खत्म कर देंगे। पर यदि आपने संयम से काम लिया तो मेरे शरीर के अन्त के साथ साथ इस अस्पृश्यता का अन्त भी निश्चित है।"

इस पर लोग चुप हो गये और उन्होंने लालनाथ जी का भाषण शान्ति पूर्वक सुना।

मानपत्र के साथ गांधीजी को सभा में एक थैली भी भेंट की गई। कुछ और थैलियां अलग अलग स्थानों की ओर से भेंट की गई। इस प्रकार सारे दिन में हरिजन कोष के लिए कुल ४६४२) रु० और कुछ आने गांधीजी को अजमेर में प्राप्त हुए।

इस प्रवास में गांधीजी अजमेर के पुराने कांग्रेसी नेता अर्जुनलाल जी सेठी के निवास स्थान पर भी गये। सेठीजी मदारगेट के बाहर एक मकान में रहते थे। गांधीजी के प्रति उनकी नाराजगी थी। किंतु गांधीजी जब अपनी पार्टी के साथ उनके घर पर पहुँचे तो वे गद्‌गद् हो गये और उन्होंने तथा उनकी धर्मपत्नी ने गांधीजी की आरती उतारी। एक थैली भेंट की और बच्चों के लिए आशीर्वाद मांगा।

अजमेर के पुराने कांग्रेसी नेता श्री गौरीशंकर भार्गव ने भी गांधीजी को अपने यहां बुलाया। वे गांधीजी के पुराने मेजबान थे। कुछ लोगों का ख्याल था कि गांधीजी को भार्गवजी के यहां नहीं जाना चाहिए किन्तु उनकी

बात सुनने के बाद गांधीजी ने यही निश्चय किया कि वे भार्गवजी के यहां जायेंगे। वह गये और भार्गव जी का समाधान किया।

अजमेर से गांधीजी ६ जुलाई को बड़े सवेरे मोटर से ब्यावर गये। उन्हें चम्पालाल रामेश्वर क्लब की इमारत में ठहराया गया था। यहां अब चम्पा नगर बस गया है, किन्तु क्लब का एक भाग अब भी पुराने रूप में मौजूद है।

ब्यावर पहुँचने पर पं० चन्द्रशेखर ने अपने कुछ साथियों के साथ गांधीजी को काले झण्डे दिखाये। यही पं० चन्द्रशेखर अब जगन्नाथपुरी में शंकराचार्य के पद पर आसीन हैं। वह ब्यावर में गांधीजी से मिले और उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे। गांधीजी ने विनोद में कहा—तुम घोषणा कर दो कि बिना शास्त्रार्थ के ही गांधी हार गया।

ब्यावर में ब्राह्मण समाज में पहला विधवा विवाह हुआ था। इसमें भिवानी के कांग्रेसी नेता नेकीराम जी शर्मा भी शामिल हुए थे। ब्यावर के श्री गोविन्द प्रसाद कौशिक की पुत्री शारदा विधवा हो गई थी। उसका विवाह दिल्ली के श्री गोपालचन्द्र शर्मा के साथ हुआ था। पं० नेकीराम नवदम्पत्ति को लेकर गांधीजी का आर्शीवाद प्राप्त करने गये। गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए और अपना आशीर्वाद दिया। किन्तु वधु को जेवर पहने देख कर बोले—यह बोझ क्यों लादे हो ?

ब्यावर के मिशन ग्राउन्ड में सार्वजनिक सभा हुई और उसमें गांधीजी का भाषण हुआ। स्थानकवासी जैन साधु चुन्नीलालजी गांधीजी से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने साधुओं की जैन परम्परा का त्याग कर सार्वजनिक सभा में हरिजन कोष के लिए धन संग्रह किया। उनके साथी जैन साधु लक्ष्मी ऋषि जी ने तो साधु वेश का ही परित्याग कर दिया और दोनों रचनात्मक कार्यों में लग गये।

ब्यावर की सभा में कुछ जैन साधुओं ने गांधीजी को मानपत्र दिया। उनके मानपत्र में यह कहा गया था कि जैन धर्म में अस्पृश्यता के लिए स्थान नहीं है, और वे हमेशा हरिजन सेवा करने को तैयार रहेंगे। जैन गुरुकुल के विद्यार्थियों ने अपने मानपत्र में उत्तराध्ययन जैन सूत्र का यह श्लोक उद्धृत किया था :

कम्मणा वम्हणों होई, कम्मणा होई खत्तिग्रो ।
कम्मणा वसियो होई, कम्मणा हवइ सुद्दग्रो ।

ग्रर्थात् कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है ग्रौर कर्म से ही शूद्र होता है । जैन धर्म में वर्ण व्यवस्था कर्म से मानी गई है न कि जन्मना ।

जनता ग्रौर हरिजनों ने भी गांधीजी को मानपत्र भेंट किया । ब्यावर में हरिजन कोष के लिए ११७२) रु० ग्रौर कुछ ग्राने गांधीजी को प्राप्त हुए ।

गांधीजी ब्यावर की हरिजन वस्तियां भी देखने गये । वहां एक हरिजन मन्दिर बना है उसे भी देखा ।

ब्यावर से रेल द्वारा मारवाड़ जंक्शन होते हुए गांधीजी ने करांची के लिए प्रस्थान किया । रास्ते में मारवाड़ जंक्शन, लूणी, गडरा रोड, ग्रादि स्थानों से हरिजन कोष के लिए ६६३) रु० कुछ ग्राने प्राप्त हुए ।

ग्रागे चलकर हरिजन सेवक संघ के माध्यम से राजस्थान में हरिजन कार्य का काफी विस्तार हुग्रा । यह गांधीजी का ही पुण्य प्रताप समझना चाहिए कि राजस्थान जैसे कट्टरता के गढ़ में समानता ग्रौर भाईचारा का संदेश फैला ग्रौर ग्रस्पृश्यता की मजबूत दीवारें लड़खड़ा कर गिर पड़ीं ।

२
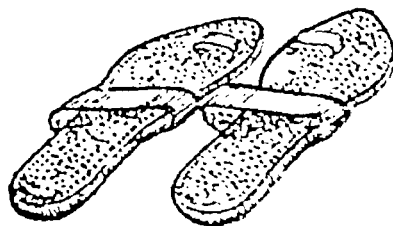
सात दिन का उपवास

अजमेर की सार्वजनिक सभा में ५ जौलाई १९३४ को सनातनी नेता बाबा लालदास के साथ हुई मारपीट के सिलसिले में बोलते हुए गांधीजी ने यह संकेत किया था कि इस पाप-कृत्य को क्षमा नहीं किया जा सकता और उसके लिए उन्हें प्रायश्चित करना होगा। तदनुसार उन्होंने घोषणा की कि हरिजन प्रवास समाप्त करके वर्धा पहुँचने के बाद वह ७ दिन का अनशन करेंगे। यह अनशन ७ अगस्त से १४ अगस्त तक हुआ। गांधीजी ने कहा कि काफी हृदय मंथन के बाद वह इस निश्चय पर पहुंचे हैं और उनका यह व्रत उन सब लोगों को, जो इस आन्दोलन में हैं या आगे शामिल होंगे, यह चेतावनी है कि उन्हें मनसा, वाचा, कर्मणा, असत्य तथा हिंसा से अलग रह कर ही शुद्ध हृदय से उसमें भाग लेना चाहिए। गांधीजी ने उपवास शुरू करने के एक दिन पहले शाम को पांच बजे उसके सम्बन्ध में अपने हाथ से यह वक्तव्य लिखा था:—

"कल सवेरे मंगलवार से मेरा उपवास प्रारम्भ हो जायेगा। मैं उपवास आरम्भ करते समय अधिक आत्मशुद्धि और अधिक एकाग्रता से कार्य करने की आवश्यकता पर हरिजन सेवा करने वालों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। कार्यकर्त्ताओं के सतत और अनवरत प्रयत्न के बिना, और अपनी कार्य-विषयक श्रद्धा तथा आत्मशुद्धि एवम् सत्यनिष्ठा की प्रयत्नमयी श्रद्धा के

विना, अस्पृश्यता राक्षसी का नाश होना असम्भव है। यह भी लोग समझ लें कि उपवास सब के लिए और सब प्रसंगों के लिए साधन नहीं है। श्रद्धा-शून्य उपवास हमें महान विपत्ति के गर्त में डाल सकता है। अनधिकारी मनुष्यों के हाथ में इस आध्यात्मिक शस्त्र का पड़ना जोखम से खाली नहीं।"

"कांग्रेसवादियों और कांग्रेस कार्यकर्ताओं को भी मैं इस प्रसंग में सचेत कर देना चाहता हूं। गत मास मुझे बार बार इनका ध्यान आया है, पर इस उपवास के सप्ताह में तो निरन्तर यह बात मेरे ध्यान में रहेगी। कई जगह कांग्रेस के चुनावों में जो जहरीली कटुता और गन्दगी सुनने में आई है और जो निन्दनीय साधन और प्रपंच काम में लाये गये हैं—जैसे वोट देने भर के लिए खादी शरीर पर धारण कर ली और फिर उतार कर रख ली—इन सबसे मैं तो दहल गया हूं और मुझे आघात पहुंचा है। कांग्रेस के विधान में यह स्पष्ट नियम है कि सत्य और अहिंसा के साधन ही काम में लाये जाएं। पर इधर कई प्रान्तों में सत्य और अहिंसा का उल्लघंन किया गया है। मैं इस गन्दगी के सम्बन्ध में यद्यपि यह उपवास नहीं कर रहा हूं, तो भी मेरे इन शब्दों के अन्तर में जो वेदना भरी हुई है उसे अगर कांग्रेस के कार्यकर्ता देख सकें तो क्या अच्छा हो। इतना अगर करेंगे, तो इस आत्मशुद्धि के सप्ताह में वे आत्म-निरीक्षण करते रहेंगे और कांग्रेस के ध्येय के अनुरूप ही उसे शुद्ध बना देंगे, ताकि किसी को हमारी इस महती संस्था के विषय में किसी तरह का संदेह नहीं रहे और संसार को वह सत्य और अहिंसा की जीवित मूर्ति के रूप में दिखाई दें। मेरी तो ईश्वर के प्रति कांग्रेस की शुद्धि के लिए सतत प्रार्थना रहेगी ही। अस्पृश्यता निवारण की प्रतिज्ञा तो कांग्रेस कर ही चुकी है, इस-लिए यदि कांग्रेस शुद्ध हो जाए तो अस्पृश्यता निवारण के काम को अनायास ही उत्तेजना मिलेगी। देश और विदेश के सभी मित्रों से मेरी यह विनय है कि वे इस छोटे से उपवास के निर्विघ्न समाप्त होने की भगवान से प्रार्थना करें।"

गांधीजी वर्धा आश्रम, कन्या विद्यालय की शुद्धि के लिए भी कम चिन्तित नहीं थे। उनका कहना था कि आश्रम में असत्य और विकार, इन दो भयंकर पापों से हमें सदा बचना चाहिए। अगर मन में मलिनता हो तो सारा जीवन दंभी और मिथ्याचारी हो जायेगा। यद्यपि इस उपवास का सीधा सम्बन्ध अजमेर की घटना से था किन्तु गांधीजी ने इसका उपयोग कांग्रेस, आश्रम और व्यक्तियों की शुद्धि के लिए भी किया। दूसरों के अपराधों का बोझ अपने सिर पर ओढ़कर और अपने को कष्ट सहन की आग में तपाकर

गांधीजी देश में शुद्ध वातावरण का निर्माण करने के लिए उत्सुक थे। यही उनकी सबसे बड़ी महानता थी। गांधीजी का शरीर लम्बे प्रवास के कारण थक गया था। स्वास्थ्य कुछ अच्छा नहीं था। किन्तु एक बड़े ध्येय के लिए उन्होंने अपने जीर्ण शीर्ण शरीर को अग्नि परीक्षा में झोंक दिया। अपनी आत्मिक और आध्यात्मिक शक्ति के बल पर वह इस संकट को पार कर सके। उपवास शांतिपूर्वक चला। केवल आखिरी दिन गांधीजी ने शारीरिक पीड़ा अनुभव की। तुलसीकृत रामायण का पाठ गांधीजी ने शान्तिपूर्वक सुना। १४ अगस्त को भक्ति और आध्यात्मिक वातावरण में उपवास पूरा हुआ।

उपवास की समाप्ति के बाद गांधीजी ने अपने हृदय के उद्‌गार 'हरिजन सेवक' में यों प्रकट किये :—

"यह खुशी की बात है कि मेरे इस उपवास के औचित्य के बारे में किसी ने शंका नहीं उठाई। यही नहीं, बल्कि जिन्होंने इस उपवास के विषय में लिखा है, उन्होंने यह कबूल किया है कि उपवास करना आवश्यक था। उपवास का आध्यात्मिक मूल्य मेरी दृष्टि में इतना अधिक रहा है कि मैं उसे आंक नहीं सकता। मैं नहीं जानता कि क्यों, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि जब मनुष्य पर संकट आता है तो वह उसी तरह से सर्वतोभावेन ईश्वर से चिपट जाता है, जिस तरह कि कष्ट में अबोध बच्चा मां से चिपट जाता है। मेरा चित्त तो प्रसन्न रहा, किन्तु यह बात नहीं कि और उपवासों की तरह इस उपवास में शारीरिक कष्ट न हुआ हो।

"सैकड़ों सार्वजनिक सभाओं में मैंने चीख चीख कर जो यह कहा है कि जब तक हरिजन सेवकों का चरित्र कुन्दन-सा शुद्ध नहीं हो जाता, तब तक अस्पृश्यता दूर होने की नहीं, उसमें अन्तर्निहित भावों को इन सात दिनों में और भी अधिक स्पष्टता से समझ सका। इसलिए मैं आशा करता हूं कि इस उपवास ने मेरी आत्मशुद्धि का मतलब तो पूरा कर दिया। उपवास काल में जिस आदर्श की झांकी मैंने देखी है, बहुत संभव है उस तक पहुँचने में मुझे सफलता नहीं मिले। किन्तु मनुष्य से आगे कोई भूल होगी ही नहीं, इसका बीमा तो कोई उपवास नहीं ले सकता। आखिर हम लोग ठोकर खाकर ही तो सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

"इस उपवास का उद्देश्य कहने के लिए तो अजमेर में हरिजन प्रवृति समर्थकों द्वारा स्वामी लालनाथ और उनके साथियों को जो चोट पहुँचाई गई

थी, उसके लिए प्रायश्चित करना था, पर असल में उसका उद्देश्य इस आन्दोलन से सहानुभूति रखने वालों तथा कार्यकर्त्ताओं से यह अनुरोध करना था कि वे अपने विरोधियों के साथ चौकस और शुद्ध व्यवहार करें। विरोधियों के प्रति अधिक से अधिक सौजन्य दिखाना आन्दोलन के हक में सबसे सुन्दर प्रचार कार्य होगा। कार्यकर्त्ताओं को इस सत्य का ज्ञान कराने के लिए यह उपवास किया गया था कि हम अपने विरोधियों को प्रेम के बल ही जीत सकते हैं, घृणा से कभी नहीं। घृणा हिंसा का ही एक सूक्ष्म रूप है। घृणा का भाव मन में रहते हुए हम पूर्ण अहिंसक नहीं बन सकते। यह तो मोटी से मोटी बुद्धि वाला भी समझ सकता है कि हिंसा के द्वारा करोड़ों सवर्ण हिन्दुओं के दिल से अस्पृश्यता की पाप–भावना, जिसे धर्म समझना उन्हें सिखाया गया है, दूर करना अशक्य है।

"अब तक के आये हुए प्रमाणों से तो यही प्रकट होता है कि मेरे इस उपवास ने अनेक कार्यकर्त्ताओं की अन्तरात्मा को सचेत कर दिया है। उपवास का कितना और कैसा प्रभाव पड़ा है, इसे तो सिर्फ समय ही बतला सकेगा। उपवास के असर का हिसाब लगाना मेरा काम नहीं है। मेरे लिए तो नम्रता-पूर्वक अपने स्पष्ट धर्म का आचरण करना ही काफी था। ईश्वर को धन्य है कि उसकी कृपा से मैं यह उपवास सकुशल पूरा कर सका। पाठक भी मेरे साथ यह प्रार्थना करें कि जो काम ईश्वर ने मुझे सौंप रखा है, उसे निभा ले जाने की पवित्रता और शक्ति वह मुझे और भी अधिक दे।"

स्वामी लालनाथ ने गांधीजी से कहा था कि उनके साथ मारपीट करने वालों में स्वयंसेवक भी थे। अजमेर के किसी पत्र में अपराध स्वीकृति सूचक पत्र भी छपा था। अजमेर के हरिजन सेवकों ने इसकी गहराई से छान-बीन की और वह इस निश्चय पर पहुंचे कि इस काण्ड में स्वयंसेवकों का हाथ नहीं था। जिस समाचार पत्र ने अपराध स्वीकृति सूचक पत्र छापा था, वह उस पत्र के लेखक का नाम मालूम नहीं कर सका और उसके सम्पादक ने एक अप्रमाणित पत्र छापने पर खेद प्रकट किया। अजमेर के हरिजन कार्यकर्त्ताओं ने गांधीजी को जांच के कागज-पत्र भेजे और उनसे स्वयंसेवकों को दोषमुक्त घोषित करने का अनुरोध किया। इस पर गांधीजी ने ३१ अगस्त, १९३४ के 'हरिजन सेवक' में लिखा :—

"मेरे बयान में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह आशय निकाला जा सके कि स्वयंसेवकों ने सचमुच स्वामी लालनाथ या उनके दल के किसी व्यक्ति

पर वार किया। स्वामी लालनाथ अपने इस विश्वास में गलती पर थे। उनके बताये स्वयंसेवक का जरा भी पता नहीं चला। चूंकि अजमेर के स्वयंसेवकों की काफी सार्वजनिक टीका हुई है, इसलिए इस विषय में मुझे अपनी सम्मति देना जरूरी था। पर इस बात से कि मेरी सम्मति में किसी स्वयंसेवक द्वारा यह अपराध हुआ नहीं जान पड़ता, यह अर्थ नहीं निकलता कि उपवास किसी प्रकार आवश्यक नहीं था। वार किया गया, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता और न ही इस बात से इन्कार किया जा सकता है कि जो लोग इसमें शामिल थे वे सुधारक दल के थे। फिर यह बात भी रह जाती है कि श्री राम नारायण चौधरी आवश्यक सूचनायें देना और दुर्घटना न हो, इसके लिए समुचित प्रबन्ध करना भूल गये। इसलिए उपवास स्पष्टतः आवश्यक था और मैं प्रभु का आभारी हूं कि उसने मुझे इसे पार करने की शक्ति दी। जो लोग पवित्रता के आन्दोलन चलाते हैं, उनकी जागरूकता की कोई सीमा नहीं हो सकती। कानूनी उक्ति है—कानून अर्थात् ईश्वर जागृत की सहायता करता है, निद्रालू की नहीं।

परन्तु यह सूचना बापू को गलत मिली थी कि चौधरीजी ने स्वामी लालनाथ की रक्षा के लिए आवश्यक हिदायतें नहीं दी थीं। वास्तव में उन्होंने कप्तान दुर्गाप्रसाद को इस काम के लिए खास तौर पर नियत किया था। परन्तु स्वामी लालनाथ बताये हुए सुरक्षित मार्ग से न जाकर दूसरे रास्ते से सभास्थल पर चले आये। उसी मार्ग में दुर्घटना हो गई।

३

सेवा क्षेत्र और चारित्रिक शुद्धता

इन दिनों समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता दिखाई दे रहा है। चारित्रिक शुद्धि को गांधीजी ने अपने जीवन और कार्यों में जो महत्व दिया था, उसे आज विस्मृत-सा कर दिया गया है। आम धारणा यह बनती जा रही है कि सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन अलग-अलग चीजें हैं और एक का दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। व्यक्ति के निजी आचरण को अलग रखकर उसके सार्वजनिक कार्यों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। किन्तु गांधीजी जीवन को इस प्रकार अलग-अलग खण्डों में विभक्त करने के पक्ष में नहीं थे। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के लिए उनकी कसौटी काफी कठोर थी। वह यह अपेक्षा करते कि सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं का चरित्र शुद्ध और निष्कलंक होना चाहिए। हरिजन सेवा को तो वह आत्मशुद्धि का यज्ञ मानते थे और इसलिए हरिजन सेवकों की चारित्रिक शिथिलता उन्हें तनिक भी सहन न थी। दुर्भाग्यवश देश में और राजस्थान में कार्यकर्त्ताओं के चारित्रिक पतन की कुछ घटनायें हुई जिन पर गांधीजी को मर्मान्तिक वेदना हुई और गहरा आघात लगा। उन्होंने इस संदर्भ में उस समय जो कुछ लिखा उसकी उपयोगिता और महत्व आज की परिस्थितियों में और भी बढ़ जाता है। हम उनके लेखों से कुछ आवश्यक उद्धरण यहां

इसलिए दे रहे हैं कि चारित्रिक शुद्धि की महत्ता को अनुभव किया जाय और समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना में सहायता मिले।

गांधीजी ने अपना अभिप्राय प्रगट करते हुए लिखा था :—

"अच्छी तरह हरिजन सेवा करने के लिए ही नहीं वल्कि गरीव,अनाथ, असहायों की सव तरह की सेवा करने के लिए यह जरूरी है कि लोकसेवक का अपना चरित्र शुद्ध और पवित्र हो। चरित्रवल अगर न हो तो ऊंची से ऊंची वौद्धिक और व्यवस्था सम्बन्धी योग्यता की कोई कीमत नहीं। वह तो उल्टे अड़चन भी वन सकती है, जव कि शुद्ध चरित्र के साथ-साथ ऐसी सेवा का प्रेम भी हो तो उससे आवश्यक वौद्धिक और व्यवस्था संवंधी योग्यता भी निश्चय ही वढ़ जायेगी या पैदा हो जायगी। कार्यकर्त्ताओं की शोचनीय चरित्रहीनता के जो अत्यन्त दुखद उदाहरण मेरे सामने आये हैं, उसके आधार पर मैं यह वात कह रहा हूं। उन्हें लोग शुद्ध चरित्र का और संदेह से परे मानते थे किन्तु उन्होंने ऐसा आचरण किया जो उन पदों के लिए अनुपयुक्त है जिन पर वह आसीन थे। इसमें कोई शक नहीं कि वे अपने हृदय के अन्धेरे कोने में जहरीले सांप की तरह छिपी हुई विषय वासना के शिकार हुए हैं। लेकिन हम तो मृत्युलोक के साधारण जीव ठहरे, दूसरों के मन में क्या है, यह हम नहीं जान सकते। हम तो मनुष्यों को सिर्फ उनके कामों से ही जान सकते हैं, और हमें उन्हीं पर से उनके वारे में निर्णय करना चाहिए, जिन्हें हम देख और समझ सकते हैं। उनके लिए संस्था के कार्यकर्त्ता वने रहना असम्भव हो गया है। यह कोई सजा नहीं हैं लेकिन उनके खुद के लिए भी न सही, तो भी संस्था और उसके उद्देश्य की रक्षा के लिए उनका उससे हट जाना जरूरी है। मैं यह वात वड़ी अच्छी तरह कह सकता हूं कि संस्था को उनके खिलाफ कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि वे कार्यकर्त्ता संस्था से, वल्कि मैं आशा करता हूं कि सार्वजनिक प्रवृति से खुद ही हट जायेंगे। यह ठीक है कि सेवा करने की किसी को मनाही नहीं है। जिस आदमी का नैतिक रूप से भयंकर पतन हो गया हो, अगर फिर भी वह सावधान हो जाए तो वह जहां भी चाहे सेवा कर सकता है। खुद उसका सुधर जाना ही कम वात नहीं है, वह भी समाज की एक सेवा ही होगी। लेकिन ऐसी सेवा जो खुद-व-खुद होती है और प्रायः गुप्त रूप से की जाती है उससे विल्कुल भिन्न है जो किसी संस्था में रहकर उसकी सव सुविधाओं का उपयोग करते हुए की जाती है। ऐसे सार्वजनिक जीवन में

प्रवेश पाने के लिए तो यह बहुत जरूरी है कि सर्वसाधारण का पूरा विश्वास फिर से प्राप्त किया जाय।"

"आजकल के सार्वजनिक जीवन में ऐसी प्रवृत्ति है कि जब तक कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अपने जिम्मे के किसी व्यवस्था कार्य को अच्छी तरह पूरा करता है, उसके चरित्र के सम्बन्ध में कोई ध्यान नहीं दिया जाता। कहा यह जाता है कि चरित्र पर ध्यान देना हरेक का अपना निजी काम है, हमें उसमें दखल देने की कोई जरूरत नहीं। हालांकि मैं जानता हूं कि यह बात अक्सर कही जाती है, लेकिन इस विचार को ग्रहण करना तो दूर, मैं इसे ठीक भी कभी नहीं समझ सका हूं। जिन संस्थाओं ने व्यक्तियों के निजी चरित्र को विशेष महत्व नहीं दिया, उनमें उससे कैसे कैसे भयंकर परिणाम सामने आये, इसका मुझे पता है। बावजूद इसके पाठकों को यह जान लेना जरूरी है कि इस समय मैं जो बात कह रहा हूं वह हरिजन सेवक संघ जैसी उन संस्थाओं के बारे में ही कह रहा हूं जो करोड़ों मूक लोगों के हितों की संरक्षक बनना चाहती हैं। मगर मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि ऐसी किसी भी सेवा के लिए शुद्ध और निष्कलंक चरित्र का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। हरिजन सेवा अथवा खादी या ग्रामोद्योग के काम में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं के लिए तो उन बिल्कुल सीधे-सादे, निर्दोष और अज्ञान स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क में आना बहुत जरूरी है, जो बौद्धिक दृष्टि से सम्भवतः बच्चों के समान होंगे। अगर उनमें चरित्र बल नहीं होगा तो अन्त में जाकर जरूर उनका पतन होगा और उसके फलस्वरूप जिस उद्देश्य के लिए वे काम कर रहे हैं उसे उस कार्य क्षेत्र में और भी धक्का लगेगा, जिनमें कि सर्वसाधारण उनसे परिचित हैं। ऐसे मामलों के अनुभव से प्रेरित होकर ही मैं यह बात लिख रहा हूं। यह प्रसन्नता की बात है कि ऐसी सेवा में जितने लोग लगे हुए हैं उनकी संख्या के लिहाज से ऐसे इक्के दुक्के ही हैं। लेकिन बीच-बीच में ऐसे मामले प्रायः होते रहते हैं, इसलिए जो संस्थाओं और ऐसे सेवाकार्यों में लगे हुए हैं, उन्हें सार्वजनिक रूप से सावधान करने और चेतावनी देने की जरूरत है। कार्यकर्त्ता तो इसके लिए जितने भी सावधान और सतर्क रहें, उतना ही कम है।"

गांधीजी अपने चचेरे भाई खुशालचन्द गांधी से मिलने राजकोट गये थे। यद्यपि यह उनकी निजी यात्रा थी, फिर भी काफी लोग उनसे मिलने आये। उनमें हरिजन सेवक भी थे। उनसे गांधीजी ने कहा—"हरिजन सेवकों

की अशुद्धि के कुछ मामले मेरे सामने आये हैं, इसलिए मुझे पक्का विश्वास होगया है कि एक भी हरिजन आश्रम हरिजन सेवक संघ के प्रधान कार्यालय से आर्थिक सहायता की जरा भी आशा न रखे। उनकी इच्छा हो तो संघ का नियंत्रण और अंकुश मानें। इस अशुद्धि से मैं इतना भयभीत हो गया हूं कि संस्थाओं को पैसे की मदद देने के लिए किसी व्यक्ति को कहने की मुझे हिम्मत नहीं पड़ती। जो मनुष्य इन संस्थाओं को चलाते हों, उनका स्पष्ट से स्पष्ट कर्त्तव्य यह है कि वे लोगों से पैसे की सहायता मांगने के लिए जाने से पहले अपनी संस्थाओं की शुद्धता के विषय में लोगों को निश्चिन्त करदें।"

उन्हीं दिनों त्रावणकोर के महाराजा ने अपनी एक ऐतिहासिक घोषणा द्वारा राज्य मन्दिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल दिये। इस घोषणा पर टिप्पणी करते हुए गांधीजी ने कहा कि कार्यकर्त्ताओं के लिए और भी अधिक आत्मशुद्धि की आवश्यकता है। उन्होंने लिखा था:—

"अस्पृश्यता निवारण के लिए आर्थिक साधन चाहिएं, किन्तु वे जरूर और तभी आयेंगे, जब हमारे वर्तमान कार्यकर्त्ता सीजर की पत्नी की तरह संदेह से परे होंगे। क्या हम सब हृदय से शुद्ध हैं? हमारे सामने जो कार्य हैं, उसके प्रति वफादार हैं? अपने कार्य के शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप पर हमें श्रद्धा है? अगर इन प्रश्नों पर उत्तर हां में मिलता है तो सब ठीक है। पर जिन मामलों का मैंने इधर जिक्र किया है और जिनकी मैं अभी तक खोजबीन कर रहा हूं, वे कहते हैं, सावधान! अगर हमारे अन्दर और भी ऐसे बदनाम आदमी हों तो क्या हाल हो? हममें कोई निष्पाप नहीं है। पर अपने सामाजिक व्यवहार में जितने मनुष्यत्व की हमसे अपेक्षा की जा सकती है, उतना भी अगर हममें न हो और अपने अपराध को कम आंकने का बगैर किसी तरह का प्रयत्न किये, उसे हम कबूल भी न करें तो मैं फिर पूछता हूं कि हमारा और इस महान् कार्य का फिर क्या हाल होगा, जिसे हाथ में लेने की हमने धृष्टता की है?"

जिन कार्यकर्त्ताओं के नैतिक पतन की गांधीजी ने चर्चा की, उनमें से एक ने जिस बहन के साथ अनैतिक आचरण किया था, उसके साथ विवाह कर लिया। इस पर गांधीजी ने लिखा कि यह तो विवाह की फजीहत हुई। जिस प्रकार भाई और बहन के बीच पति पत्नी का सम्बन्ध नहीं हो सकता,

उसी प्रकार उन्होंने लिखा कि शिक्षक और शिष्या के बीच भी वैसा सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। गांधीजी ने लिखा था:—

"मनुष्य मात्र का एक ही शत्रु है और वह है आप खुद ही। यह मेरा वचन नहीं, सर्वशास्त्रों का वचन है। जब मनुष्य अपने आपको धोखा देता है तब वह आप अपना शत्रु बन जाता है। जब वह अपने अन्दर रहने वाले परमेश्वर की गोद में अपने को छोड़ देता है, तब वह खुद अपना मित्र बन जाता है। दोष तो हम सभी करते हैं, लेकिन जब हम दोष में से निर्दोषिता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं तब हम और अधिक नीचे गिर जाते हैं।

"एक पुरुष को दो स्त्रियां भाई के समान समझती हैं, तपस्वी के रूप में शुद्ध सेवक के रूप में उसे देखती हैं, शिक्षक या गुरु मानती हैं, उन्हीं के साथ उनका पतन होता है और पीछे उनमें से एक के साथ वह शादी कर लेता है। इसे मैं अपना व्यभिचार छिपाने की एक युक्ति मानता हूं। इस प्रकार के सम्बन्ध को विवाह का नाम देना मानों विवाह की फजीहत करना है। मैं जानता हूं कि आजकल बहुत जगह ऐसा हो रहा है। पाप का गुणाकार होने से उसकी वृद्धि होती है, वह कुछ पुण्य रूप नहीं कहा जा सकता। सारा जगत पाप करता है, इसलिए वह रूढ़ भले ही हो जाय, पर अगर वह पाप होगा तो पाप ही रहेगा। ऐसा नियम पाप समझे जाने वाले सभी कृत्यों को लागू नहीं होगा, यह मैं जानता हूं। मेरी दृष्टि में तो जो वस्तु परम्परा से पाप मानी जा रही है और जिसे आज समाज पाप मानता है, उस प्रकार के ये किस्से हैं।

"शिक्षकों के अपनी शिष्याओं के साथ गुप्त सम्बन्ध हो जाएं और पीछे से उन सम्बन्धों में से किसी एक को विवाह का रूप दे दिया जाय तो इससे ऐसा सम्बन्ध पवित्र नहीं बनता। जिस प्रकार सगे भाई बहन के बीच पति-पत्नी का सम्बन्ध सम्भव नहीं, उसी प्रकार शिक्षक और शिष्या के बीच होना चाहिए, यह मेरा दृढ़ अभिप्राय है। अगर सुवर्ण नियम का पालन न हो, तो परिणाम यह होगा कि शिक्षण संस्था टूट जायेगी, कोई लड़की शिक्षकों से सुरक्षित नहीं रह सकेगी। शिक्षक का पद ऐसा पद है कि लड़कियां और लड़के निरन्तर उसके नीचे रहते हैं, शिक्षक के वचन को वेद का वचन मानते हैं। अतः शिक्षक जो स्वतन्त्रता लेता है, उसके विषय में उन्हें कोई शंका नहीं होती। इसलिए शरीर से भिन्न जहां आत्मा का सम्मान है, वहां इस

प्रकार के सम्बन्ध असह्य समझे जाते हैं और समझे जाने चाहिएं। जब ऐसा कोई सम्बन्ध हरिजन सेवक संघ जैसी संस्था में हो जाये तो उससे होने वाला असर बहुत दूर तक पहुंचता है और उस कार्य को हानि पहुंचाता है।"

गांधीजी ने फिर त्रावणकोर के हरिजनों के लिए मन्दिरों के द्वार खोल देने वाली घोषणा का उल्लेख किया और कहा कि उसके पीछे असंख्य मूक सेवकों का बल था, जो सारे देश में बिखरे पड़े हैं, जिन्हें नाम की इच्छा नहीं, जो आडम्बर को पास नहीं फटकने देते और सेवा करने में ही अपनी सार्थकता मानते हैं। "त्रावणकोर की घोषणा," गांधीजी ने कहा, "सेवकों को विशेष सावधानी, विशेष पवित्रता, विशेष तन्मयता का आमन्त्रण है। सेवकों को यह समझना चाहिए कि अस्पृश्यता के सनातन पाप के धुलने में जो यह ढील हो रही है उसका कारण हाल में प्रकट होने वाला ऐसे सेवकों का पाप ही है। कौन जाने, ऐसे कितने सेवक अपने पाप को छिपा रहे होंगे। सेवक पाप को पुण्य समझ कर अपनी दुर्बलता का पोषण न करें, पाप को छिपाकर खुद नीचे गिरते हुए अपने कार्य को भी साथ में न घसीट ले जायं, पाप को यत्किंचित स्वीकार करके सन्तोष न माने।"

अन्त में गांधीजी ने लिखा : "कुछ लोगों को प्रकट रूप में पाप को स्वीकार करते हुए संकोच होता है, कुछ को स्वीकार करते हुए कपकपी छूटती है। धर्म तो पुकार-पुकारकर कहता है—अपने किये हुए राई के समान दिखने वाले दोषों को पर्वत के समान देखो। यदि हृदय से उन्हें पूर्णतः स्वीकार करोगे तो जैसे मैला कपड़ा मैल दूर हो जाने से ही शुद्ध होता और शुद्ध दीखता है उसी तरह तुम भी शुद्ध हो जाओगे और दिखोगे। और तुम्हारा प्रकट स्वीकार और पश्चाताप भविष्य में पाप से बचने में ढाल रूप सिद्ध होगा।"

गांधीजी ने इस सिलसिले में पुनः लिखा:—"मैंने अपने और अपने प्रियजनों के दोषों को ढकने का कभी प्रयत्न नहीं किया। अपने दोषों को प्रकट करने से उन्हें न करूं यह मैं सीख सका हूं। मनुष्य दोष करे और फिर निर्दोष दिखने का चाहे जितना प्रयत्न करें, वह सफल नहीं हो सकता। ईश्वर जिन दोषों को देखता है उन्हें उसकी दृष्टि में क्यों नहीं देखें? जो अपने दोष से सचमुच शरमाता है, वह तो उसे प्रकट करके सुरक्षित रहेगा और अपने साथियों को रक्षक बनायेगा। इसी का नाम ईश्वर पर

आधार रखना मान सकते हैं, अपनी निर्बलता कबूल करने से ही इन्द्रियजनित विकारों में से छूट सकते हैं। इसी से दोष को प्रकट करना शुद्धि की पहली सीढ़ी है।"

गांधीजी ने अन्त में लिखा कि इन घटनाओं का स्मरण करके लोग जागृत रहें और अपनी कमजोरी कभी न छिपायें। इस प्रकार के अहंकार में न फंसे कि स्थिति आजाने पर भी वे फंसेंगे नहीं। किसी का अभिमान टिका नहीं है। अन्त समय तक जिसका हृदय ठिकाने रहता है वही जीतता है।

जिन कार्यकर्त्ताओं का नैतिक पतन हुआ, उनको गांधीजी ने सलाह दी कि उन्हें सार्वजनिक पदों से अलग हो जाना चाहिए। किसी प्रश्नकर्त्ता ने गांधीजी से पूछा कि क्या उनकी योग्यता का समाज के लिए कोई उपयोग नहीं हो सकता? इस पर गांधीजी ने अपना अभिप्राय यों प्रकट किया:—

"चाहे जितना होशियार आदमी हो, उसकी भी गुप्त अनीति का असर उसके काम पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः कार्यकर्त्ता में नैतिकता आवश्यक है। कुशलता न होते हुए भी जिसका चरित्र पूर्णतया शुद्ध है, उसका काम गौरवान्वित हुआ है। अस्पृश्यता निवारण चरित्रहीन व्यक्तियों के द्वारा असम्भव है, ऐसा मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। सनातनी हिन्दुओं की मान्यता को अच्छे से अच्छे शास्त्रों का प्रवीण वक्ता किस तरह पलट सकता है? उनकी बुद्धि पर होने वाला प्रहार व्यर्थ जाता है। चैतन्य, रामकृष्ण, राम मोहनराय, दयानन्द आदि का प्रभाव आज भी काम कर रहा है इसका आधार और कौनसा बल होगा? उनकी अपेक्षा तीव्र बुद्धि के व्यक्ति शायद काफी देखने में आयेंगे, पर वे मानव हृदय में परिवर्तन नहीं करा सके। हां, चरित्रवान व्यक्तियों में भी उद्यम, आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा, विवेक आदि तो होना ही चाहिए।

"नैतिक दोषों के कारण जो सार्वजनिक संस्थाओं से निकल गये हैं, वे अगर सेवा करने की उमंग रखते हों तो उनसे वे मुक्त नहीं होते, मुक्त नहीं हो सकते। किसी को कोई धर्म मुक्त नहीं कर सकता। धर्म तो उसका है जो उसे पालता है। हरिजन सेवा, खादी सेवा, ग्राम सेवा, गो सेवा आदि का जो पालन करता है उसके लिए वह धर्म है। जिसका पतन हुआ है, वह मूर्च्छा से

जाग गया हो तो चाहे जहां रहकर सेवा कर सकता है। उसे किसी गांव में बसने से कौन रोक सकता है ? मूक रीति से गांव में भंगी का काम करने से उसे कौन रोकेगा ? कातते हुए और दूसरों को कातना सिखाते हुए या हरिजनों की सेवा करते हुए क्या रुकावट आ सकती है ? ऐसा करते करते इस तरह स्वच्छ वन जाय कि समाज के सामने खड़े होने में उसे कोई वाधा न आए अथवा अपने स्थान पर अदृष्ट रहकर भी उसका प्रभाव ऐसा पड़े कि जिसका असर व्यापक हो जाय। पाप का निवारण ही नहीं हो सकता ऐसा न मैंने कभी कहा है, न माना है। पतितों में अग्रस्थान पाने वाले महापुण्यात्मा हो सकते हैं। तुलसीदास के विषय में ऐसा ही किसी इतिहासकार ने कहा है। गीता पुकार-पुकार कर कहती है कि महापापी के के लिए भी भक्ति मार्ग मुक्तिप्रद हो जाता है। इसलिए भगवान का एक विशेषण पतित पावन है।"

"बा"

४

कस्तूरबा का आगमन

गांधीजी को अंग्रेज सरकार ने राजद्रोह का आरोप लगा कर छह वर्ष की लम्बी अवधि के लिए जेल में बन्द कर दिया था। उनकी धर्मपत्नी पूज्या कस्तूरबा ने असहयोग के संदेश को फैलाने का गुरुतर दायित्व अपने कंधों पर उठा लिया था। पूज्या बा ने एक सच्ची हिन्दू गृहिणी का आदर्श संसार के सामने उपस्थित किया। देश की स्वतंत्रता के अहिंसक संग्राम में पूज्या बा का योग किसी तरह कम नहीं रहा।

सन् १६२२ के अक्टूबर महीने के प्रथम सप्ताह में अजमेर में अजमेर जिले की राजनीतिक कान्फ्रेंस का आयोजन किया गया। उसकी अध्यक्षता करने के लिए पूज्या बा अजमेर पधारीं थीं। अजमेर पहुंचने पर उनका जुलूस निकाला गया. उनके दर्शनों के लिए घरों, खिड़कियों, छतों आदि पर स्त्री पुरुषों की खूब भीड़ जमा थी। महात्मा गांधी की जय, कस्तूरबा की जय के नारों से आकाश गूंज उठा था। उस समय अजमेर में हिन्दू मुसलमान स्वतंत्रता संग्राम में साथ साथ हिस्सा ले रहे थे। कान्फ्रेन्स ईदगाह में हुई जो मुसलमानों का धर्म स्थान था। ईदगाह में पहली बार वेद मंत्रों की ध्वनि सुनने को मिली, हिन्दू और मुसलमान नेताओं के एक मंच से भाषण हुए। स्वयंसेवकों में मुसलमान स्वयंसेवकों की तादाद काफी थी। मुलतान में हिन्दू मुस्लिम दंगा हुआ था, उसकी निन्दा का प्रस्ताव एक मुसलमान भाई ने पेश किया। कान्फ्रेन्स का

अधिवेशन तीन दिन तक रात के बारह बारह बजे तक चला। स्वागत समिति के सभापति देशभक्त अर्जुनलाल सेठी थे। उन्होंने खूब जोशीला भाषण दिया और असहयोग के कार्यक्रम को थोड़े हेर फेर के साथ आगे बढ़ाने की अपील की।

पूज्या बा का भाषण संक्षिप्त और सारगर्भित था। उन्होंने अजमेर निवासियों को वह वचन याद दिलाया जो उन्होंने गांधीजी को दिया था। वचन यह था कि हम आपको अजमेर तब बुलायेंगे, जब अजमेर के आधे लोग पूरी तरह खादी पहनने लगेंगे। पूज्या बा ने यह आशा प्रकट की थी कि अगर अजमेर के लोगों ने उन्हें गांधीजी के प्रतिनिधि के रूप में बुलाया है तो उन्होने गांधीजी को दिये अपने वचन को जरूर पूरा कर लिया होगा। बा के भाषण को उनके सुपुत्र रामदास गांधी ने दक्षिण अफ्रीकी उच्चारण में पढ़कर सुनाया। जब पूज्या बा व्याख्यान देने मंच की ओर बढ़ीं तो ऐसा अनुभव किया गया कि भारत माता स्वयं अजमेर निवासियों के मुर्झाये दिलों में नये जीवन का संचार करने के लिए आशीर्वाद की वर्षा करने जा रही हैं, पूज्या बा ने अपने भाषण में कहा था :—

"देश में जब कि राजनीतिक आन्दोलन ने तीव्र स्वरूप धारण किया है, ऐसे समय में आपको किसी राजनीति में प्रवीण पुरुष को अपने अधिपति का स्थान देने की जरूरत थी। मैं न तो राजनीतिक आन्दोलन करने वाली हूं और न इस प्रान्त से परिचित। मैं तो इतना समझती हूं कि कि गांधीजी के ऊपर और उनके बताये हुए साधनों पर अपना विश्वास और दृढ़ता प्रकट करने के लिए ही आपने मुझे यह स्थान दिया है। मैं अपना धर्म समझ कर गांधीजी का अनुकरण करती हूं और विचार तथा अनुभव से आज तक प्रतीत हुआ है कि उनका बताया रास्ता हमेशा फायदेमन्द और शान्ति देने वाला है। मैं आज आपको श्रद्धा और विश्वास के सिवा दूसरा क्या सन्देश दे सकती हूं। गांधीजी का सन्देश धर्म का सनातन सन्देश है।

"सरकार के साथ आप लोगों ने असहयोग जाहिर किया है पर वह तभी कामयाब हो सकता है जब आपका आपस में पूरा पूरा सहयोग हो। मैं मानती हूं कि आपस में लोगों का सहयोग ही स्वराज्य है। जब हमारा आपस का सहयोग बिगड़ जाता है तभी दूसरे लोगों के शासन के आगे हमें सिर झुकाना पड़ता है।

"मैंने सुना है कि आपके प्रान्त में तथा आसपास हाथ का बना हुआ सूत बुनने वाले लोग हैं। उनको मदद करके आप शुद्ध खादी तैयार कर सकते हैं। आपको अब तो समझना ही चाहिए कि परदेशी कपड़े का व्यापार करना देश के साथ दुश्मनी करने के बराबर है। परदेशी कपड़ा पहनना स्वराज्य का द्रोह करने के बराबर है। यदि गरीब आदमी की कुछ भी दया आपके मन में हो तो आप खादी ही पहनेंगे। मेरी बहनों से मैं यही प्रार्थना करूंगी कि आप शुद्ध खादी ही पहनें। देश के गरीब लोगों को उससे रोजी मिलेगी। गरीब बहनों को अपने सतीत्व की रक्षा करने में मदद होगी और धर्म की रक्षा होगी।

"आप ऐसा मत समझिये कि परदेशी कपड़ा शराब से कुछ कम खराब है। शराब को हटाने के लिए आपने ऐसा प्रयत्न किया उससे बढ़कर काम परदेशी कपड़े को हटाने के लिए करना चाहिए और वह परदेशी कपड़े पहनने वाले अपने रिश्तेदारों और मित्रों के घर-घर जाकर।

"मैं अभी यरोड़ा के जेलखाने में गांधीजी से मिल कर आई हूं। वहां पर वे खादी का ही काम कर रहे हैं। खुद रुई धुनकते हैं और सूत कातते हैं। अगर आप गांधीजी को सन्तोष देना चाहते हों, स्वराज्य के शीघ्र दर्शन करना चाहते हों तो आपको भी खादी तैयार करने, उसी का व्यवहार करने और घर-घर में उसका प्रचार करने के लिए कमर कस लेना चाहिए। खादी में हिन्दुओं की गो-रक्षा है और मुसलमानों की खिलाफत की रक्षा है और खादी में ही हिन्दुस्थान की तमाम जातियों का स्वराज्य है।

"आपका नगर एक ऐसे महान मुसलमान साधु का स्थान है, जिन्होंने सबसे पहले हिन्दुस्थान में पांव रखा और जिन्हें तमाम हिन्दू और मुसलमान बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। उनकी छाया के नीचे यहां हिन्दू और मुसलमानों की एकता को मैं बहुत महफूज मानती हूं। यह स्थान तो ऐसा है कि यहां की हिन्दू-मुस्लिम एकता सारे भारत के लिए नमूना होनी चाहिए।

"पंजाब में अभी वीर अकालियों ने पुलिस के अत्याचारों के मुकाबले में जो दृढ़ शान्ति और धर्म प्रेम का उदाहरण पेश किया है वह आपके सामने है। इस हालत में शान्ति की कितनी जरूरत हमारी लड़ाई के अन्दर है और उसका रखना कितना आसान है, यह अलग बताने की जरूरत नहीं। स्वराज्य का अर्थ अगर तीस करोड़ हिन्दुस्तानियों की सुख-शान्ति है तो यह

शान्ति द्वारा ही मिल सकता है। अशान्ति के उपायों से शान्ति कभी नहीं मिल सकती।

"और एक प्रार्थना आपसे है और वह खास करके हिन्दू भाई बहनों से। अपने अछूत भाईयों को अपनाना हमारा धार्मिक फर्ज है। यह बात तो अब सब समझ चुके हैं लेकिन उसके लिए अभी पूरा प्रयत्न नहीं हुआ है। तीन महीने के बाद अगर मैं गांधीजी से कह सकूं कि अजमेर प्रान्त में छूआछूत के मैल को दूर कर दिया तो गांधीजी को स्वराज्य प्राप्ति के बराबर ही आनन्द होगा।

"अपना भाषण समाप्त करने के पहले मैं आपको एक बात याद दिलाना चाहती हूं। गांधीजी से आपने वादा किया था कि आधा अजमेर, कम से कम १५ हजार अजमेर निवासी जब सिर से पैर तक खादी पहनेंगे तब आप गांधीजी को यहां बुलायेंगे। अगर मुझे आप गांधीजी का प्रतिनिधि समझ कर बुला रहे हैं तो मैं ऐसा मान लेती हूं कि आपने अपना वादा पूरा कर दिया है।

"ईश्वर आपको स्वराज्य के लिए सब तरह के कष्ट सहन करने की और एक दूसरे के अपराधों को क्षमा करने की शक्ति दे, यह प्रार्थना करके मैं अपना छोटा-सा भाषण समाप्त करती हूं।"

पूज्य बा अपने अजमेर प्रवास के समय राजस्थान सेवा संघ में भी गई थीं। राजस्थान सेवा संघ अपने समय में देशी रियासतों की पीड़ित और शोषित जनता के लिए काम करने वाली एक कर्मठ संस्था थी और श्री विजयसिंह पथिक और उनके साथी अनेक रियायतों में सामूहिक आन्दोलनों का संचालन करते थे। पूज्य बा ने संस्था के केन्द्र में आकर कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहन और आशीर्वाद दिया।

श्रीमती गुलाबदेवी (चाची जी) ने अजमेर में एक महिलाओं की सभा भी आयोजित की थी। पूज्य बा ने इस सभा में महिलाओं से स्वदेशी धर्म का पालन करने और खादी को अपनाने की अपील की। श्रीमती गुलाबदेवी ने अजमेर में एक कन्या पाठशाला की स्थापना की थी और अपना जीवन महिला सेवा में लगा रखा था। कुछ मारवाड़ी मित्रों ने भी पूज्य बा को अपने यहां निमंत्रित किया था। वह वहां भी गई, उन्होंने बहनों से खादी को अपनाने का आग्रह किया।

पूज्य बा अजमेर से कुछ समय के लिए पुष्कर भी गई जो हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। पुष्कर में कई तीर्थगुरुओं ने खादी के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया। उनमें से कुछ शुद्ध खादी पहने हुए थे। पूज्य बा ने अपने छोटे से भाषण में तीर्थगुरुओं और बहनों से खादी धारण करने की अपील की। एक भाई ने शुद्ध-खादी पहनने की प्रतिज्ञा की। ब्रह्माजी के मन्दिर के महन्त ने ब्रह्माजी के लिए बनी खादी की पोशाक पूज्य बा को बतायी। पुष्कर में स्नान करते समय एक उल्लेख योग्य बात यह हुई कि तीर्थगुरु ने संकल्प बोलते समय 'वैवस्वत मन्वन्तरे' के स्थान पर 'गांधी मन्वन्तरे' और 'श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थ' के स्थान पर 'स्वराज्य प्राप्तत्यर्थ पदों का प्रयोग किया। पूज्य बा जैसी सती-साध्वी के आगमन से तीर्थराज पुष्कर ने अपने को धन्य अनुभव किया और कौन कह सकता है कि उसकी पवित्रता में वृद्धि नहीं हुई।

अजमेर के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में कुछ मतभेद थे। किन्तु पूज्या बा के कार्यक्रमों को सफल बनाने का सभी ने मिलकर कार्य किया।

कस्तूर बा का अजमेर में दुबारा आगमन सन् १९३१ के नवम्बर महिने में हुआ। वे हटूण्डी के गांधी आश्रम में ठहरीं थीं। उस समय कांग्रेस अंग्रेज सरकार से सत्याग्रह की एक बड़ी लड़ाई लड़ चुकी थी। अजमेर-मेरवाड़ा और राजपूताना तथा मध्य भारत ने इस लड़ाई में उत्साह पूर्ण योग दिया। अजमेर-मेरवाड़ा ब्रिटिश इलाका होने के कारण इस लड़ाई का मुख्य केन्द्र रहा और करीब ५०० सत्याग्रही जेल गये। गांधी समझौते के फलस्वरूप उस समय सरकार और कांग्रेस के बीच युद्ध विराम की स्थिति चल रही थी। और कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि बनकर गांधीजी गोलमेज कान्फ्रेन्स में भाग लेने के लिए लन्दन गये हुए थे। इसी समय प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने पुष्कर में २३–२४ नवम्बर को राजपूताना मध्य भारत प्रान्तीय राज-नीतिक परिषद का आयोजन किया और पूज्य कस्तूरबा इस परिषद की अध्यक्षता करने के लिए काका साहब कालेलकर के साथ अजमेर आई थीं। २२ नवम्बर को अजमेर स्टेशन पहुंचने पर अजमेर के नागरिकों ने कस्तूर बा का जोरदार स्वागत किया और उनका नगर में शानदार जुलूस निकाला गया। उनके दर्शनों के लिए नर नारी उमड़ पड़े थे। कस्तूर बा ने राष्ट्रीय झण्डा भी फहराया। तीसरे पहर कस्तूर बा पुष्कर गई। वहां भी अजमेर की भांति उन्हें जुलूस में ले जाया गया। परिषद के साथ पुष्कर में खादी

प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। जिसका उद्घाटन काका कालेलकर ने किया।

२३ नवम्बर को तीसरे पहर एक सुसज्जित पण्डाल में परिषद का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। कस्तूरबा ने हर्षोल्लास के मध्य अध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया। श्री चन्द्र शंकर शुक्ल ने बा का लिखित भाषण पढ़कर सुनाया। बा ने अपने भाषण में कहा था:—

"आपने मुझे यहां इसलिए नहीं बुलाया कि मैं राजनीतिक विषयों में कुछ विशेष समझती हूं। आपको तो गांधीजी पर अपना पूरा पूरा विश्वास प्रकट करना था। गांधीजी के हाथ में आपके हित सुरक्षित हैं, अपना यह विश्वास जाहिर करना था, इसलिए आपने यह स्थान मुझे दिया है।

"यहां आपके आस पास सब तरफ देशी राज्य फैले हुए हैं। इसलिए आपको ब्रिटिश इलाके और देशी राज्य दोनों की समस्याओं पर साथ साथ विचार करना है। यदि सचमुच देखा जाए तो हमारा देश एक है। हम एक हीं प्रजा हैं। ब्रिटिश इलाके और देशी राज्यों का भेद राजाओं के लिए भले ही हो, हम प्रजाजनों के लिए नहीं है। जिस प्रकार हम एक प्रजा हैं उसी प्रकार हमारे करने के काम भी एक ही हैं। हमें भूखों मरते लोगों के लिए रोटी प्राप्त करना है। पददलित प्रजा को अपना सिर ऊंचा करना सिखाना है और अपनी सामाजिक गन्दगी को दूर करके आत्मशुद्धि करनी है। लोगों में सच्ची और पूरी शक्ति आ जाने पर हमारी बहुत सी उलझनें अपने आप दूर हो जायेंगी। यदि हम मजबूत होंगे तो हमारे आसपास के लोग अपने आप भले हो जायेंगे।

"राजाओं की ओर से होने वाली परेशानी के बारे में कई बार सुनती रहती हूं। उसे सुनकर अत्यन्त दुख होता है। मन में सोचती हूं, हमारे राजा ऐसा क्यों करते होंगे? अंग्रेजों की तरह वे कुछ विदेश से यहां नहीं आते। हमारे देशी नरेश अपने ही हैं। वे यहीं पैदा हुए हैं। उनके विवाह यहीं होते हैं। उनके सगे सम्बन्धी यहीं के हैं। प्रत्येक की अस्थियां यहीं पड़ने वाली हैं। तब वे प्रजा को सुखी क्यों नहीं करते? प्रजा में यदि शक्ति पैदा होगी तो इससे राजाओं का भी भला ही है। मैंने सुना है कि कुछ लोग राजाओं से अकुला उठे हैं। यह सही है कि विलायत में गोलमेज परिषद में कुछ

नरेश अच्छे नहीं बोले। लेकिन वे बेचारे करें क्या? वे अपने हृदय की बात कहां कह सकते हैं। सरकार को राजी रखे बिना ये एक दिन नहीं टिक सकते। पर गांधीजी राजाओं के सम्बन्ध में निराश नहीं हुए हैं। राजाओं के हृदय से जब भय निकल जायगा तब वे प्रजा के लिए बहुत कुछ कर सकेंगे।

"किन्तु हमें राजाओं पर निर्भर रहकर बैठे नहीं रहना है। हमारे कर सकने योग्य काम ही बहुत से हमारे सामने पड़े हैं। खादी के काम को ही लीजिये। खादी प्रायः नष्ट होती जा रही थी। चरखा संघ ने काम शुरू किया तो खादी पुनर्जीवित हुई। यदि आप धार लें तो अकेला राजस्थान सारे भारत को खादी से ढक सकता है। किन्तु मैंने सुना है कि जिस परिमाण में आप खादी तैयार करते हैं उस परिमाण में पहनते नहीं। यह अच्छा नहीं कहा जा सकता। घर में खादी जैसी कामधेनु होने पर फिर आपको बाहर का कपड़ा किसलिए लेना चाहिए? खादी के कारण गरीब घर की बहनों को काम मिलता है, इसलिए भी सब बहनों को खादी पहननी चाहिए। राजा की रानी से लेकर स्कूल की लड़की तक को खादी पहननी चाहिए। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि बिजोलिया और रींगस में वस्त्र स्वावलम्बन का काम चल रहा है। बिजोलिया के अधिकांश किसान अपनी आवश्यकता के वस्त्र अपने आप तैयार कर लेते हैं और रींगस में भी यह प्रयोग उन्नति कर रहा है। क्या ही अच्छा हो, यदि सारा राजस्थान इस प्रकार के प्रयोगों में सारे देश के सामने वस्त्र स्वावलम्बन का उदाहरण पेश करे।

"विदेशी कपड़े का बहिष्कार का काम हमें ढीला नहीं पड़ने देना चाहिए। इस पाप को देश से पूरा पूरा निकाल देने में ही हमारा छुटकारा है। हमने सरकार के विरूद्ध लड़ाई बन्द की है, किन्तु विदेशी कपड़े के विरूद्ध तो संग्राम जारी ही है और इसी तरह शराब के विरूद्ध भी। शराब बन्द करने का काम तो हम स्त्रियाँ ही अच्छी तरह कर सकेंगी। अब राजस्थान में हमारी बहनों को बाहर जाना चाहिए और ऐसे कामों को अपने हाथों में ले लेना चाहिए।

"पर आपके यहां अभी तक परदे का भी अन्त नहीं हुआ है। वृद्ध पुरुष पुत्री तुल्य बालिकाओं के साथ विवाह करते हैं। गुड्डे गुड्डियों की तरह छोटे छोटे बालक बालिकाओं को भी ब्याह दिया जाता है। ये पाप कुछ कम नहीं है। आप इन कुरीतियों को कब तक बर्दाश्त करते रहेंगे? जब तक आप इन

कुरीतियों का अन्त नहीं कर देंगे तब तक हमारी आत्म शुद्धि होना असंभव है। हिन्दुस्थान में बहनें हर जगह अब जागृत हो गई हैं। ऐसी हालत में राजस्थान अकेला ही पिछड़ा हुआ रहे तो कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है?

"मैंने एक ऐसी बात भी सुनी है जिसके स्मरण मात्र से मुझे कंपकपी छूटती है। कहा जाता है कि यहां राजस्थान में दास दासियाँ रखने का रिवाज है। विवाह के समय यहां दास दासियां भी दहेज़ में दी जाती हैं। मैं चाहती हूं कि यह बात सच न हो। पिछले साल सरकार के साथ तो आप बहादुरी से लड़े, क्या इन सामाजिक बुराइयों से आप उसी तरह नहीं लड़ेंगे?

"आजकल आपका ध्यान विलायत की तरफ होगा। कुछ लोग डरते हैं कि ब्रिटिश भारत को स्वराज्य मिल जायेगा। पर देशी रियासतों की प्रजा यों ही रह जायेगी। पर ऐसा भय मन में न रखिये। यदि हम अपने दोष दूर करके दिन रात प्रजा की सेवा करते रहेंगे तो स्वराज्य अपने आप मिल जायेगा। सूर्योदय होने पर प्रकाश तो सभी को मिलेगा। इस विषय में अश्रद्धा नहीं रखनी चाहिए। हमको सामाजिक बुराइयां दूर करके और प्रजा की सेवा करके उसे शक्तिशाली बनाना चाहिए। यहां मैं देशी नरेशों से भी दो शब्द कहे बिना नहीं रह सकती। उन्हें चाहिए कि वे जमाने की रफ्तार को देख-कर प्रजा के सुख और स्वतन्त्रता सम्बन्धी आकांक्षाओं की पूर्ति शीघ्र कर दें। कहीं ऐसा न हो कि सदियों से प्रजा के हृदय में जो राजनिष्ठा अब तक चली आ रही है, उसका पूरा पूरा नाश हो जाए और प्रजा निराश हो, राजा को अपना शत्रु मान बैठे। यह राजाओं के हाथ में है कि वे अपनी प्रजा के हृदय को अपना सिंहासन बनायें। प्रजा को दबा कर अपना सिंहासन मजबूत करने के दिन सदा के लिए चले गये हैं। हरिजनों (अछूतों) की समस्या ऐसी है कि उसका आप तुरन्त हल करें। तभी भगवान के आशीर्वाद आपको मिलेंगे। यह ठीक है कि शहरों में छूआछूत का अब उतना जोर नहीं है, किन्तु गांवों में यह समस्या उग्र बनी हुई है।

"स्वराज्य का संदेश गांव-गांव में पहुँच गया है। जत्थेबन्द ग्रामवासी जेलों में जा चुके हैं। अभी भी कांग्रेस के सेवक पर्याप्त संख्या में गावों में नहीं पहुंचे हैं। यदि हम गावों में पर्याप्त काम करेंगे तो स्वराज्य प्राप्ति का काम बहुत ही सरल हो जायेगा।

"यह देश के युवकों का काम है। भारत के युवकों और युवतियों की देशभक्ति देखकर किसका हृदय हर्षित न होगा। झण्डे के सम्मान की रक्षा

के लिए नवयुवकों ने अपने सिर फुड़वाये हैं, बहनों ने लाठी के प्रहार भी झेले हैं। अब आपको गांव गांव पहुंच जाना चाहिए और वहां जाकर ठोस काम करना चाहिए। गांवों का काम रूखा है, लेकिन एक बार गांवों की भोली भाली प्रजा के हृदय तक पहुंच जायेंगे तो फिर आपका जी गांवों को छोड़ने का नहीं होगा। स्वराज्य की कुंजी हमारे गांवों में ही है। मैंने आशा निराशा के दिन बहुत देखे हैं। परन्तु जब यह निश्चय है कि स्वराज्य का सूर्योदय अवश्य होगा मेरी बूढ़ी आंखें स्वराज्य देखने के लिए उत्सुक हैं। अतः मैं युवकों से कहती हूँ कि आप अपनी शक्ति को व्यर्थ न खो कर काम में लगायें, कांग्रेस की शक्ति में अपनी शक्ति मिला दें। अन्त में स्व-राज्य का संचालन आपको ही करना होगा।'

"इन वर्षों में देश ने अद्भुत प्रगति की है। राजस्थान के दोषों की बातें तो हमने बहुत कीं, किन्तु इसके यह माने नहीं कि हम इस बात को भूल गये कि राजस्थान वीर भूमि है, बलिदान की भूमि है। जान-माल को कुर्बान कर देना, यही सबसे बड़ा उत्सव आपके पूर्वज मनाते आये हैं। जान और माल से बढ़कर चारित्र्य का आर्यत्व है, यह आपके पूर्वजों ने धारा-तीर्थ पर अपने खून से लिखा है, इतिहास इसका साक्षी है। स्वराज्य प्राप्त करने की जिम्मेदारी आप प्राचीन काल से सहन करते आये हैं। उसी ज्योति को विशेष उज्जवल बनाइए और सर्वोच्च आदर्श को सिद्ध करने के लिए एक निष्ठा से कटिबद्ध होइए। मेरा आपको आशीर्वाद है।"

परिषद ने तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक स्थिति पर दो दर्जन प्रस्ताव स्वीकार किये। ब्यावर के कांग्रेसजनों में कुछ समय से फूट पड़ी हुई थी। इस अवसर पर उनमें एकता स्थापित हुई और बा ने एकता प्रयासों को अपना आशीर्वाद दिया। परिषद के अधिवेशन की समाप्ति पर कस्तूरबा ने स्वयंसेवकों को धन्यवाद दिया। उनके कर्त्तव्य पालन की सराहना की।

राजनीतिक परिषद के साथ श्री जयनारायण व्यास और उनके साथियों ने मारवाड़ प्रजा परिषद का भी पुष्कर में आयोजन किया था। कुछ लोगों ने, जो रियासती अधिकारियों की प्रेरणा से परिषद के अधिवेशन में आये थे, परिषद को भंग करने का प्रयत्न किया। सभा मंच पर लटकते हुए रोशनी के हण्डे को लाठी मार कर चकनाचूर कर दिया। उस समय पूज्य कस्तूरबा भी मंच पर बैठीं थीं। टूटे हुए हण्डे के कांच उनके पास तक

विखर गये, किन्तु गनीमत हुई कि उन्हें कोई चोट नहीं आई। इस अवसर पर श्री जयनारायण व्यास पर भी आक्रमण किया गया था। इस गड़वड़ी के वाद पूज्य वा ने सभा में भाषण दिया और लोगों से हर हालत में शान्त रहने की अपील की और परिषद को अपना आशीर्वाद दिया।

पूज्य कस्तूरवा की उपस्थिति का लाभ उठाकर पुष्कर में महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। वा ने उसमें भी वहनों को उपदेश दिया और सम्मेलन में समाज सुधार सम्वन्धी प्रस्ताव स्वीकार किये गये और वहनों का आजादी की लड़ाई में भाग लेने के लिए आव्हान किया गया।

खरवा के राव गोपालसिंह उन दिनों पुष्कर में रहते थे। उन्हें अंग्रेजों ने कई वार नजरवन्द रखा था और उनकी जागीर उनसे छीन ली थी। वह पूज्य कस्तूरवा से मिलने को उत्सुक थे। वह उनसे मिलने आये, किन्तु उस समय कस्तूरवा सभा मण्डप में थीं। इसलिए भेंट न हो सकी। वाद में समय निकाल कर वह राव साहव के निवास स्थान पर गईं और उनके साथ काफी देर तक वातचीत की।

पूज्य कस्तूरवा की उपस्थिति से कार्यकर्त्ताओं को नई प्रेरणा प्राप्त हुई और हजारों स्त्री पुरुषों ने उनके मुख से स्वराज्य और सत्याग्रह का संदेश सुना और वर्तमान युग के सवसे वड़े महापुरुष की जीवन संगिनी के दर्शनों से अपने को कृतार्थ किया।

स्व० विजयसिंह पथिक

५

बिजोलियां का सत्याग्रह

(१)

बिजोलियां और बारडोली, ये दो नाम भारत के आधुनिक इतिहास में प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुके हैं किन्तु बिजोलियां को यह श्रेय प्राप्त है कि वहां सत्याग्रह और असहयोग की कल्पना को सबसे पहले मूर्त रूप मिला था। अवश्य ही इससे पूर्व गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए सत्याग्रह की सफल लड़ाई लड़ चुके थे और विजयी वीर की भांति स्वदेश लौटे थे।

किन्तु उन्हीं दिनों आवागमन के साधनों से दूर देश के एक कोने में और वह भी राजस्थान की एक देशी रियासत में, सामन्ती शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध किसानों के सामूहिक प्रतिरोध का एक संगठित मोर्चा कायम हुआ। बात तो बिजोलियां की है जो मेवाड़ राज्य की प्रथम श्रेणी की जागीर थी। बिजोलियां को ऊपरमाल भी कहा जाता है, क्योंकि यह क्षेत्र ऊंचे पठार पर अवस्थित है। यह विन्ध्याचल का एक भाग है। पठार काफी उपजाऊ है, किन्तु यहां के किसान और दूसरे लोग लम्बे समय से सामन्ती जुल्मों और शोषण के शिकार थे। एक दो बार पहले भी बिजोलियां के किसान जागीरी जुल्मों के विरुद्ध सिर उठा चुके थे। किन्तु उन्हें दबा दिया

गया और कोई खास राहत नहीं मिली। बिजोलियां के किसानों के सौभाग्य से उन्हें इस बार एक क्रान्तिकारी देशभक्त का पथ-प्रदर्शन प्राप्त हुआ। हमारा आशय स्वर्गीय विजयसिंह पथिक से है। वह खरवा (अजमेर) के राव गोपालसिंह के सहयोगी थे, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों के साथ सहानुभूति रखने के अपराध में कई वर्ष नजरबन्द रखा था। पथिकजी गिरफ्तारी से बच निकले और उन्होंने मेवाड़ राज्य में आकर शरण ली। बिजोलियां के स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के निमन्त्रण पर वह बिजोलियां पहुंचे और उसे अपना कार्य क्षेत्र बना लिया। पथिकजी में ग्रामीणों के साथ घुल मिल जाने की अद्भुत क्षमता थी और उन्होंने शीघ्र ही किसानों क विश्वास प्राप्त कर लिया। उन्होंने देख लिया कि जब तक किसान अन्याय और शोषण के विरुद्ध संगठित होकर आंदोलन नहीं करेंगे, तब तक उनको मुक्ति नहीं मिल सकती। उन्होंने ऊपरमाल किसान पंचायत का संगठन किया और यह संगठन समय के साथ अधिकाधिक सुदृढ़ और प्रभावशाली बनता गया। उसके आदेशों ने इस क्षेत्र में अलिखित कानून का रूप धारण कर लिया।

उस समय प्रथम महायुद्ध चल रहा था और राजस्थान की रियासतों में भी युद्ध ऋण और युद्ध चन्दा वसूल किया जा रहा था। बिजोलियां के किसानों ने युद्ध ऋण और युद्ध चन्दा देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होंने कहा कि जागीरदार हमसे मनमाना लगान और लागें (टैक्स) वसूल करता है, जिसके कारण हम नंगे भूखे रहने के लिए विवश हो गये हैं। उधर महाजनों के कर्ज़ का भारी बोझ हमारे सिर पर लदा हुआ है। हम जो फसल पैदा करते हैं, उसका बहुत बड़ा हिस्सा जागीरदार और महाजनों के घरों में पहुंच जाता है और जो कुछ बचता है उससे हमारी खाने पीने और पहनने की जरूरतें भी पूरी नहीं हो सकतीं। फिर भी युद्ध ऋण में जोर जबर्दस्ती से काम लिया गया और स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को किसानों बहकाने को का आरोप लगाकर जेल में डाल दिया गया।

किसानों की शिकायतों की सूची काफी लम्बी थी। लगान उस समय जिन्स के रूप में लिया जाता था। फसलों का राज्य कर्मचारी माप करते थे और उसी हिसाब से ठिकाना अपना हिस्सा लेता था। कहने की जरूरत नहीं कि यह माप मनमाना होता था। लगान के अलावा किसानों से तरह-तरह की लागें (टैक्स) वसूल की जाती थीं, जिन की संख्या ८० से ऊपर पहुंच गई थी। लागों की शुरूआत भी अजीब ढंग से होती थी। किसानों ने

उदारतावश जागीरदार को कोई वस्तु एक बार भेंट दी तो वह स्थायी लाग बन गयी और प्रति वर्ष वसूल की जाने लगी। जागीरदार को जो कर मेवाड़ रियासत को देने पड़ते, वे भी वह अपनी प्रजा से वसूल करता। सबसे अधिक त्रास वेगार का था और इससे वनिये महाजन भी मुक्त नहीं थे। विभिन्न पेशे वालों को जागीरदार के लिए जरूरी होने पर मुफ्त काम करना पड़ता था, जिसकी कोई मजदूरी नहीं दी जाती और जो उत्पादन वे करते, उसका भी एक भाग जागीरदार को मुफ्त देना पड़ता। वेगार देने से इन्कार करने पर मारपीट मामूली वात थी और लोगों को ठिकाने की जेल में असहनीय यन्त्रणायें दी जातीं थीं।

उस समय विजोलियां का जागीरदार नावालिग था और जागीर का प्रवन्ध मुंसरमात यानी कोर्ट आफ वार्ड्स के अधीन था। रियासत की सीधी देखरेख में सब कुछ चलता था। किसानों ने अपने कष्टों के निवारण के लिए शुरू में वैधानिक मार्ग अपनाया। महाराणा और उनकी सरकार की सेवा में आवेदन पत्र पर आवेदन पत्र भेजे। उनकी मुख्य मांग यह थी कि वैठ-वेगार और अनुसूचित लागें रद्द की जायें और जमीन का पक्का बन्दोवस्त कराया जाये। किन्तु लम्बी प्रतीक्षा करने के बाद भी जब किसानों को कोई राहत नहीं मिली तो उन्होंने सत्याग्रह का मार्ग अपनाया। उन्होंने राज्याधिकारियों से स्पष्ट कह दिया कि वे न तो कोई चीज मुफ्त देंगे और न कोई काम वेगार में करेंगे। वे अपने झगड़े पंचायत की मारफत निपटाने लगे और राज्य की कचहरी का वहिष्कार कर दिया। उन्होंने महाजनों (सूदखोर वनियों) का भी वहिष्कार किया और उनके साथ हर प्रकार का लेन देन बन्द कर दिया। राज्य ने किसानों का मनोवल तोड़ने के लिए दमन चक्र चलाया। कार्यकर्त्ताओं और किसानों को पकड़ कर सैंकड़ों की संख्या में जेल में डाला और उनके साथ अमानुषी व्यवहार किया गया। तरह तरह की यंत्रणायें दी गईं। खोड़े में पांव दे दिये जाते। उसमें दोनों पांव चौवीसों घण्टे चौड़े रखने पड़ते जिससे पांव दर्द से फटने लगते और औंधा लटका कर पीटा जाता। कम्बल ओढ़ा कर मार पीट करना मामूली वात थी। किसान स्त्रियों कोय भी इन अत्याचारों से अछूता नहीं रखा गया। राज्य कर्मचारी किसानों के घरों में घुस कर उनकी सम्पत्ति छीन कर ले जाते। जंगल से घास लकड़ी नहीं काटने देते। किन्तु इस सारे दमन और अत्याचारों के वावजूद किसानों ने अपना यह आग्रह नहीं छोड़ा कि वे वैठ-वेगार और लागें नहीं देंगे। जैसे दमन चक्र उग्र हुआ, किसानों ने भी सत्याग्रह को तीव्र कर दिया। उन्होंने

कुछ वर्ष विजोलियां क्षेत्र में खेती नहीं की और भूमि को पड़त रख दी। इसका नतीजा यह हुआ कि ठिकाने को लगान के रूप में एक पैसा भी नहीं मिला और उसकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी।

पथिकजी ने विजोलियां के किसानों पर होने वाले जुल्मों और अत्याचारों को समाचार पत्रों के माध्यम से दुनियां के सामने रखा। इस कार्य में स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी ने बड़ी सहायता दी। उन्होंने अपने पत्र 'प्रताप' के पृष्ठ विजोलियां आंदोलन के लिए खोल दिये। पथिकजी ने राष्ट्रीय नेताओं को भी विजोलियां आन्दोलन की गतिविधि से परिचित रखा। उस समय के मूर्धन्य नेता लोकमान्य तिलक की सहानुभूति प्राप्त की और उनके 'केसरी' और 'मराठा' पत्रों में आंदोलन को प्रकाशन मिला। लोकमान्य तिलक ने महाराणा को एक व्यक्तिगत पत्र लिखकर उनसे विजोलियां के किसानों के साथ न्याय करने का अनुरोध किया।

(फरवरी सन् १९१८ में पथिकजी वम्वई जाकर गांधीजी से मिले और उनके सामने विजोलियां आन्दोलन की सारी स्थिति रखी। गांधीजी किसानों के कष्ट सहन, संगठन और दृढ़ता आदि से वड़े प्रभावित हुए। गांधीजी ने विजोलियां सत्याग्रह की स्थिति का अध्ययन करने के लिए अपने निजी सचिव श्री महादेव भाई देसाई को विजोलियां भेजने का निश्चय किया। तदनुसार महादेव भाई विजोलियां पहुंचे। उस समय पथिकजी कोटा में थे। सम्भवतः यह सन् १९१९ की वात है। सिंगोली (ग्वालियर) में श्री माणिक्यलाल वर्मा ने महादेव भाई का स्वागत किया। विजोलियां में एक रात वह उमाजी के खेड़े नामक गांव में रहे। दूसरे दिन वह विजोलियां कस्बे में गये और उन्हें जेल का निरीक्षण कराया गया। दूसरी रात वह लक्ष्मीनिवास गांव में रहे। उन्होंने किसानों से खुलकर वातचीत की। वह वस्तुस्थिति जानना चाहते थे ताकि गांधीजी के सामने सही चित्र प्रस्तुत कर सकें। उन्होंने वताया कि गांधीजी कोई अतिरंजित वात नहीं चाहते और सत्याग्रह का आधार एक मात्र सत्य ही हो सकता है। श्री महादेव भाई ने विजोलियां में जो कुछ देखा-सुना, उसका कच्चा चिट्ठा गांधीजी के सामने रख दिया। गांधीजी ने अनुभव किया कि किसान सचमुच पीड़ित हैं और उन पर राज्य की ओर से तरह तरह के अत्याचार हुए हैं। उन्होंने पथिकजी को आश्वासन दिया कि यदि राज्य ने किसानों के साथ शीघ्र ही न्याय नहीं किया तो वह स्वयं विजोलियां के आंदोलन का संचालन करेंगे। स्वर्गीय पं० मदनमोहन मालवीय

के देशी नरेशों के साथ मधुर सम्बन्ध थे और उन्हें राज-दरवारों में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। गांधीजी ने महामना मालवीयजी को प्रेरित किया कि महाराणा के साथ लिखा पढ़ी करके अथवा मिलकर विजोलियां की समस्या का संतोषजनक निपटारा करायें। मालवीयजी ने भी भरसक प्रयत्न किया, किन्तु राजाशाही की मशीन में जंग लग गया था। वह नये प्रवाहों से वेखवर थी और इसलिए कोई परिणाम नहीं निकला।

समय वीतता गया। लोकमान्य तिलक का निधन हो गया। देश की वागडोर महात्मा गांधी ने सम्हाल ली। उन्होंने स्वराज्य की लड़ाई को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने देश के आगे असहयोग का कार्यक्रम रखा जिसे कांग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में स्वीकार किया और सन् १९२० के दिसम्बर में नागपुर अधिवेशन में उसकी पुष्टि की। इसके बाद जब पथिकजी गांधीजी से मिले तो उन्हें विजोलियां के सम्बन्ध में अपना आश्वासन याद था। उन्होंने कहा कि स्वराज्य की लड़ाई की नई जिम्मेदारी सिर पर आ गई, किन्तु मैं विजोलियां के किसानों की मदद के लिए उनके बीच चलने को तैयार हूं। पथिकजी ने गांधीजी को यह कह कर चिन्ता मुक्त कर दिया कि विजोलियां का प्रश्न तो हम आपके छोटे अनुयायी ही निपटा लेंगे, आप निश्चिन्त होकर स्वराज्य की वड़ी लड़ाई का संचालन करें।

विजोलियां के किसानों का एक प्रतिनिधि मण्डल सन् १९२१ की अहमदावाद कांग्रेस में पहुंचा। वह गांधीजी से मिला और उनका सन्देश मांगा। गांधीजी ने कहा : "मैं ऊपरमाल के किसानों को शावासी ही दे सकता हूँ"। इस अवसर पर देशी रियासतों के कार्यकर्त्ता भी गांधी जी से मिले थे। उनमें से किसी ने पूछा कि देशी राज्यों में हम क्या करें? गांधीजी ने कहा : "खादी का प्रचार करो, नशा निषेध करो, शिक्षा का प्रचार करो।" दूसरा प्रश्न था कि अत्याचार हो तो क्या करें? गांधीजी का उत्तर था : "हिजरत करो।" पथिक जी ने टिप्पणी की कि यह मार्ग तो नामर्दों का है। इस पर गांधीजी ने कहा कि जो प्रतिरोध कर सकते हैं वे प्रतिरोध करें।

आखिर राजस्थान सेवा संघ की मध्यस्थता से सन् १९२२ में जागीरदार और किसानों के बीच सम्मानपूर्ण समझौता हुआ। अधिकांश लागें माफ कर दी गई। जमीन का पक्का वन्दोवस्त कराने की वात तय पाई। वेगार की प्रथा को समाप्त करना मान लिया गया। यह स्वीकार किया

गया कि जो काम लिया जायेगा, रसद ली जायेगी तो उसका मुआवजा दिया जायेगा और मुआवजे का निर्णय सरपंच करेगा । किसान पंचायत को बाकायदा मान्यता दे दी गई । बिजोलियां में जो असंतोष प्रकट हुआ, वह दावानल की भांति आसपास के क्षेत्रों में फैल रहा था । ब्रिटिश सरकार भी यह नहीं चाहती थी कि रियासतों में असंतोष और अशांति फैले । उसके प्रतिनिधियों ने भी राज्य पर समझौते के पक्ष में दबाव डाला । राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेन्ट मि० हालेण्ड और राज्य के दीवान श्री प्रभाषचन्द्र चटर्जी ने समझौते की बातचीत में हिस्सा लिया था । किसानों की संगठित शक्ति ने सामंती जुल्मों से पीड़ित लोगों को मुक्ति का नया रास्ता बताया । बिजोलियां ने सामंती शक्तियों से टक्कर ली और उन्हें परास्त किया । बिजोलियां के किसानों ने त्याग और कष्ट सहन का मार्ग अपनाया और जुल्म तथा उत्पीड़न के सामने सिर झुकाने से इन्कार कर दिया । इस धर्म युद्ध में हमारे जमाने के महापुरुष गांधीजी का आशीर्वाद प्राप्त था । उन्होंने किसानों और कार्यकर्त्ताओं का हौसला बढ़ाया जिससे वे न्याय और सत्य के पथ पर अविचल खड़े रह सकें । जिस प्रकार बारडोली ने देश के इतिहास का निर्माण किया है, उसी प्रकार बिजोलियां ने राजस्थान में सामन्तवाद के किलों को ध्वस्त करने में अनूठा योगदान दिया है ।

---

(२)

सन् १९२२ के समझौते के अनुसार बिजोलियां में जब जमीन का बन्दोबस्त हुआ तो किसानों ने अनुभव किया कि लगान काफी बढ़ गया है। सन् १९२२ के समझौते की कुछ शर्तें भी ठिकाने ने तोड़ी थीं। किसानों ने अनेक प्रार्थना-पत्र दिये, किन्तु उनकी कोई सुनवाई नहीं हुई। तब सम्वत् १९८४ में किसानों ने अपनी शिकायतें दूर होने तक अपनी माल (वर्षा से उपज देने वाली) जमीन का इस्तीफा दे दिया। यह करीब २७ हजार बीघा जमीन थी। ठिकाने ने फिर भी किसानों को संतुष्ट करने का कोई कदम नहीं उठाया। उल्टे किसानों की जमीन दूसरों के नाम बापी कर दी। उधर किसानों ने अपनी जमीनों का लगान रोक दिया।

बिजोलियां की किसान पंचायत अब तक पथिकजी और राजस्थान सेवा संघ के परामर्श से काम रक2 रही थी। अब उसने भी श्री हरिभाऊ उपाध्याय को अपना परामर्शदाता नियुक्त किया। हरिभाऊजी ने मेवाड़ के बन्दोबस्त हाकिम श्री ट्रेंच से समझौता वार्त्ता चलाई और दोनों के बीच यह तय पाया कि ठिकाना सन् २२ के समझौते का पूरा पालन करेगा, छटूंद नाम की लाग लगान में शामिल कर ली जायगी। लगान में एक आना प्रति रुपया कमी की जायगी। लगान की बकाया राशि में आधी रकम की छूट दी जायगी और किसानों की जो जमीन ठिकाने के कब्जे में है वह तुरन्त किसानों को लौटा दी जायगी और जो जमीन बापी कर दी गई है, वह बापीदारों को खानगी तौर पर समझा कर लौटा दी जायगी। बिजोलियां के जागीरदार ने समझौते को सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया।

किन्तु इसके बावजूद बापीदारों के कब्जे में जो जमीन थी, वह किसानों को नहीं मिली। मि० ट्रेंच ने कहा कि बापीदार उस जमीन पर से अपना कब्जा छोड़ने को तैयार नहीं हैं। दो वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद

किसानों ने आखिर सत्याग्रह करने का निश्चय किया। उन्होंने सम्वत् १९८८ की अक्षय तृतीया (अप्रेल सन् १९३१) में अपनी जमीनों पर हल चलाये। इस पर ठिकाने ने दमन चक्र शुरू कर दिया। किसानों के नेता श्री माणिक्यलाल वर्मा और पचासों किसानों को गिरफ्तार किया गया और जेल में सन् २२ के फसले के विपरीत उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया। मेवाड़ रियासत ने तो ठिकाने की मदद की। अपनी फौज और पुलिस बिजोलियां भेजी। उसने सारे इलाके में आतंक फैला दिया। मारपीट और लूट खसोट एक साधारण बात हो गई। अजमेर से अचलेश्वरप्रसाद शर्मा, ओंकारलाल शास्त्री, प्यारचन्द विश्नोई और श्रीमती रमादेवी जोशी किसानों की सहायता के लिए बिजौलियां गये। उन्हें न केवल अपमानित किया गया बल्कि प्रथम तीन के साथ अमानुषिक मारपीट भी की गई और उन्हें मेवाड़ रियासत से बाहर निकाल दिया गया। सत्याग्रही किसानों के साथ भी मारपीट की गई।

बिजोलियां के इस किसान सत्याग्रह का हाल जब गांधीजी को लिख कर भेजा गया तो उन्होंने यह सन्देश भेजा था :—

"यदि किसान पूर्णतया अहिंसक रहेंगे तो उनकी विजय निश्चित है।"

यह सत्याग्रह दो महीने तक चला। अन्त में समझौते के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए कार्यकर्त्ताओं को बिजोलियां भेजना रोक दिया गया और गांधीजी की सलाह पर इस्तीफाशुदा जमीनों पर हल चलाने का कार्यक्रम अर्थात् सत्याग्रह भी समाप्त कर दिया गया। उधर मेवाड़ रियासत ने किसानों के परामर्शदाता श्री हरिभाऊ को सूचित किया कि उनके मेवाड़ प्रवेश पर रोक लगा दी गई है, वह रियासत के किसानों को बहकाते हैं।

बाद में सेठ जमनालाल बजाज इस मामले में बीच में पड़े। वह राज्य के मुसाहिबे-आला सर सुखदेव प्रसाद से बम्बई में मिले और फिर उदयपुर भी गये और महाराणा से भी मिले। मुसाहिबे-आला श्री सुखदेव ने जमनालालजी को भरोसा दिलाया कि रियासत किसानों की जब्त जमीनों को न्यायपूर्वक वापस दिलाने के लिए अपनी शक्ति भर पूरा प्रयत्न करेगी। पुलिस के उन आदमियों और घुड़ सवारों को हटा लेगी जिन्हें बिजोलियां में तैनात किया गया था, सत्याग्रही कैदियों की सजायें अपील करने पर स्थगित कर दी जायगीं, ठिकाने की पुलिस की ज्यादतियों की योग्य अधिकारियों द्वारा

जांच कराई जायगी और सन् २२ के समझौते का पूरा पालन किया जायगा। जमनालालजी ने श्री शोभालाल गुप्त को अपना प्रतिनिधि बनाकर किसानों को इस समझौते की शर्तों से अवगत कराने के लिए विजोलियां भेजा, किन्तु ठिकाने के कर्मचारियों ने उन्हें भी अपमानित किया और उनके साथ मारपीट करके उन्हें वापस लौटा दिया। जमनालालजी के साथ हुए समझौते के बाद भी किसानों को उनकी जमीनें वापस नहीं मिलीं और इस समस्या का तभी समाधान हुआ जब मेवाड़ में लोकप्रिय शासन की स्थापना हुई। विजोलियां के किसानों को अपने अधिकारों के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा और उसमें गांधीजी और अन्य राष्ट्रीय नेताओं की सहायता और सहानुभूति उन्हें प्राप्त हुई और गांधीजी की यह भविष्यवाणी सत्य हुई कि किसानों की अवश्य जीत होगी। विजोलियां को राजस्थान के इतिहास में सत्याग्रह की आदि प्रयोगस्थली के रूप में स्मरण किया जायगा और वह आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा भूमि रहेगी।

जीवन भीतर या बाहर के तूफान के विरुद्ध सतत संग्राम है। संग्राम के बीच भी शांति के अनुभव की जरूरत है।

६

भील आन्दोलन

सन् १६२१–२२ में राजस्थान और गुजरात की रियासतों में भीलों का एक जवर्दस्त आंदोलन चला। भील और गरासिये आदिवासी हैं और रियासतों और सामन्तों द्वारा उनका वड़ा शोषण और उत्पीड़न होता था। उससे मुक्ति पाने के लिए यह आंदोलन हुआ। रियासती सरकारों ने इस आंदोलन को कुचलने की भरसक कोशिश की। सेना ने कई जगह गोलियां भी चलाईं और सैंकड़ों व्यक्ति जान से मारे गये। उदयपुर रियासत के निवासी श्री मोतीलाल तेजावत भीलों के नेता थे और भील उन पर वड़ी श्रद्धा रखते थे और उनके लिए जान भी देने को तैयार थे। जव गांधीजी ने भील आंदोलन के वारे में सुना तो उन्होंने अपने विश्वस्त साथी श्री मणिलाल कोठारी को भील आंदोलन की जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा। वह सिरोही आदि स्थानों को गये। वाद में उन्होंने गांधीजी को सूचित किया कि मोतीलाल तेजावत भीलों में मद्यपान निषेध, मांसाहार त्याग आदि का काम करते हैं। उनकी हलचल से भीलों में जागृति हुई है इसमें कोई शक नहीं है। श्री तेजावत भीलों की टोलियां वनाकर घूमते थे और गिरफ्तारी से वचने की कोशिश में छिपकर भी रहते थे। श्री तेजावत ने मणिलाल

जी कोठारी के साथ एक पत्र गांधीजी को भेजा था। यह पत्र ११ फरवरी १९२२ को लिखा गया था। श्री तेजावत ने लिखा था:—

"मैं जिस जगह काम कर रहा हूं, सत्याग्रह का काम करता हूं। मैं कोई बेजा काम नहीं करता हूं। असल बात यह है जिस तरह आपके सत्य काम के पीछे सारा हिन्दुस्तान चलता है, उसी तरह मेरे पीछे भील-गरासिया चल रहे हैं। इनके पास तीर कमाण और तलवार हैं जो उनके पुश्त-दरपुश्त चले आते हैं। ये पहाड़ी जमीन को जोतते हैं। शांति प्रिय हैं, सत्यवादी और आचारवान हैं। जब मैंने इनमें सत्याग्रह का प्रचार शुरु किया तो इन लोगों ने बड़ी श्रद्धा से मेरा साथ दिया। इस बात से राज कारबारी लोग नाराज हुए। भीलों को डराकर, मार पीटकर और लालच देकर दबाना चाहते हैं। पर वे बड़े अटल हैं। अपनी भलाई को समझते हैं। अब मेरी अरज न तो राज सुनता है और न अंग्रेज। आप ही मेरे सहायक हैं। इन गरीब लोगों के लिए मरने को तैयार हूं। कोई प्रचारक आप जरूर भेजें। यहां के लोग अज्ञान हैं। सीधे सादे हैं। श्री मणिलाल कोठारी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। मेरी अर्ज पर जरूर ध्यान दीजिये।"

गांधीजी ने इस पत्र पर २६ फरवरी १९२२ के 'नवजीवन' में लिखा था:—

"इस पत्र में कितना ही अज्ञान दिखाई देता है। इस मामले में अंग्रेज का तो कोई सम्बन्ध ही नहीं और उचित बात हो वह तो राज्यों के सामने पेश होनी ही चाहिए। श्री मणिलाल कहते हैं कि उन्हें पालनपुर, दांता और सिरोही राज्यों की तरफ से पूरी मदद मिली। श्री मोतीलाल तेजावत तथा भीलों ने भी उनकी बात को सुना और वे शांति के ही साथ काम लेना चाहते हैं। मुझे आशा है कि यदि रियासत भीलों की शिकायतों पर ध्यान देकर उनके साथ न्याय करेगी तो भील सुखी होंगे। श्री मोतीलाल से यदि कुछ अपराध हुआ है तो उस पर ध्यान न देते हुए भीलों पर जो उनका प्रभाव है उसका उपयोग करके भीलों की स्थिति को सुधारने की ओर राज्य ध्यान दे तो इससे राजा और प्रजा दोनों का भला होने की सम्भावना है।"

इससे प्रकट है कि गांधीजी ने राजस्थान और गुजरात के भील आंदोलन में दिलचस्पी ली थी और रियासतों को भीलों की न्यायायोचित शकायतें दूर करने का नेक परामर्श दिया था।

इसके कई वर्ष वाद जव भील आंदोलन ठंडा पड़ गया तो श्री मोतीलाल तेजावत को ईडर रियासत ने गिरफ्तार कर मेवाड़ रियासत को सौंप दिया। मेवाड़ रियासत ने विना मुकदमा चलाये श्री तेजावत को जेल में डाल दिया। उनकी यह गिरफतारी और कैद उस आश्वासन के विपरीत थी जो राजपूताना के ए० जी० जी० सर आर० ई० हालेण्ड ने दिया था। श्री तेजावत की गिरफ्तारी और कैद के सम्वन्ध में एक पत्र देशी राज्यों के अन्यतम सेवक श्री मणिलाल कोठारी ने गांधीजी को लिखा था। वह पत्र इस प्रकार था:—

"आपको याद होगा कि सन् १९२२ में राजपूताना के भीलों की हालत पर लिखते हुए आपने 'यंग इण्डिया' में भील नेता मोतीलाल को माफ करने की सिफारिश की थी। सन् १९२४ में राजपूताना के ए० जी० जी० सर आर० ई० हालेण्ड ने सारे मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करके और उस समय के राजपूताना के शांतिप्रिय वातावरण का खयाल करके संबंधित राज्यों को सलाह दी थी कि वे मोतीलाल को क्षमा कर दें, जिससे कुछ समय वाद उनके प्रभाव का उपयोग पिछड़ी हुई और अज्ञान भील जाति के सामाजिक सुधार में हो सके। मुझे पता चला है कि राजपूताना की तमाम रियासतों ने, जिसमें मेवाड़ भी शामिल है, इस प्रस्ताव को मन्जूर किया था और सर आर० ई० हालेंड एवम् उनके उत्तराधिकारी लेफ्टिनेन्ट कर्नल पेटर्सन ने भी मुझसे स्पष्ट कहा था कि मैं वम्वई सरकार को अधिकारपूर्वक कह सकता हूं कि अगर वम्वई प्रान्त की ईडर, दांता वगैरा, रियासतें मोतीलाल को क्षमा कर दें तो राजपूताना को कोई आपत्ति नहीं होगी। लेकिन मुझे आज यह देखकर आश्चर्य होता है कि मेवाड़ जैसी रियासत विना मुकदमा चलाये मोतीलालजी को गिरफ्तार किये हुए है।

"अधिकारी कहते हैं कि आपने मोतीलाल से सम्वन्ध विच्छेद जाहिर कर दिया था। मुझे विश्वास है कि यह वात सच नहीं है। मैं जानता हूं कि आप उनके काम के वारे में भी कुछ जानते हैं। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप कृपा कर इस गलतफहमी को दूर करेंगे और मेवाड़ दरवार को इस मामले में सहानुभूतिपूर्वक विचार करने और मोतीलाल को छोड़ देने की सलाह देंगे।"

श्री कोठारी का यह पत्र मिलने पर गांधीजी ने ५ सितम्बर १९२९ के 'नव जीवन' में वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण किया और श्री

मोतीलाल तेजावत को कैद से रिहा करने तथा समाज सुधार का काम करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने की सिफारिश की थी।। गांधीजी ने लिखा था:—

"पाठक शायद ही मोतीलाल को जानते हैं। वह एक भोले भाले, अपढ़ समाज सुधारक और राजपूताना के भीलों के सेवक हैं। उनकी बड़ी इच्छा है कि भील लोग मांस मदिरा का त्याग कर दें। एक समय उनका भीलों पर बहुत ज्यादा प्रभाव था और आज भी यद्यपि प्रभाव उतना ज्यादा नहीं हैं, उस जाति के लोग बड़े आदर से उनका नाम लेते हैं, क्योंकि मोतीलाल के कारण ही उनमें काफी समाज सुधार हो सका था। यरवदा जेल से छूटने के बाद मुझे श्री मोतीलाल से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह न पढ़े-लिखे हैं और न किसी से ज्यादा बात ही करते हैं। वह एक मात्र काम करना जानते हैं और अपने लोगो में विश्वास रखते हैं। जो लोग कहते हैं कि सन् १९२२ में मैंने उन पर अविश्वास सा प्रकट किया था, मुझे डर है कि वे सत्य को छिपाना चाहते हैं। सन् १९२२ में जब मैंने सुना कि वह मेरे नाम का उपयोग करते हैं तो मैंने कहा था उन्हें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन उसके बाद और खासकर मुझे उनके कार्य का कुछ परिचय प्राप्त हुआ तब तो मैंने बड़े जोरों से इस बात की सिफारिश की थी कि उन्हें माफ कर दिया जाए। मैंने तो अपने संतोष के लिए यह भी मान लिया था कि सर आर० ई० हालेण्ड की सिफारिश में 'यंग इन्डिया' की पंक्तियों का भी कुछ हाथ होगा। चाहे कुछ भी क्यों न हो, मुझे आशा थी कि मोतीलाल को क्षमा मिल गई होगी और सन् १९२२ की घटनाओं को सम्बन्धित राज्य अब तक पूरी तरह भूल चुके होंगे। इसी कारण मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि मेवाड़ ने उन्हें किसी दूसरे अभियोग के लिए नहीं बल्कि सन् १९२२ वाले पुराने आरोपों के कारण ही फिर से गिरफ्तार करके कैद में रख छोड़ा है। मुझे विश्वास है कि मेवाड़ राज्य यह नहीं भूलेगा कि यदि उसने भीलों के प्यारे नेता को ज्यादा समय तक कैद में रख छोड़ा तो भोले भाले भील राज्य पर विश्वासघात का आरोप करेंगे, क्योंकि वे तो यह मानते थे कि उनके नेता को क्षमा कर दिया गया है। जहां तक मैं जानता हूं श्री मोतीलाल ने ऐसा कोई काम नहीं किया है, जिसके कारण वे कैद में रखे जाएं। अतः मैं विश्वास करता हूं कि यह भोला-भाला और सच्चा सुधारक शीघ्र ही कैद से छोड़ दिया जायगा और अपने लोगों में समाज सुधार का काम करने के लिए उसे प्रोत्साहित किया जावेगा।"

गांधीजी की इन पंक्तियों का मेवाड़ रियासत पर कोई असर नहीं हुआ। उसने लम्वे अरसे तक मोतीलाल तेजावत को उदयपुर की जेल में कैद रखा और कई वर्ष वाद रिहा किया, तव भी उन्हें उदयपुर म्यूनिसिपल सीमा के भीतर रहने का आदेश दिया। उन्हें भीलों के वीच जाने की इजाज़त नहीं थी। एक वार वह राज्य निषेधाज्ञा तोड़कर भील क्षेत्र में चले गये थे तो उन्हें पकड़कर जेल में वन्द कर दिया गया था। जव उदयपुर प्रजा-मण्डल आन्दोलन के वाद लोकप्रिय मन्त्रिमन्डल की स्थापना हुई तव जाकर श्री तेजावत पर लगे प्रतिवन्ध हटे। उन्हें भीलों की सेवा करने का पुरस्कार राज्य ने कैद और नजरवन्दी के रूप में दिया। मेवाड़ रियासत ने तो यह प्रस्ताव भी किया था कि अगर कोई दूसरी रियासत श्री मोतीलाल तेजावत पर मुकदमा चलाना चाहे तो वह उन्हें उनके सुपुर्द कर सकती है। किन्तु दूसरी किसी रियासत ने मेवाड़ रियासत को उपकृत नहीं किया। सुधारक को अपने विश्वासों की कितनी कीमत चुकानी पड़ती है, श्री मोतीलाल तेजावत का जीवन इसका अच्छा उदाहरण है। यह उनका सौभाग्य था उन्हें गांधीजी जैसे महापुरुष का आशीर्वाद और समर्थन प्राप्त हुआ।

इस भील आंदोलन में राजस्थान सेवा संघ की ओर से भीलों को काफी प्रोत्साहन और सहायता मिली। संघ के अध्यक्ष पथिकजी भील क्षेत्र में गये। श्री माणिक्यलाल वर्मा भी क्षेत्र में संघ की ओर से कुछ समय तक रहे। सिरोही गोलीकांड के वाद संघ के मन्त्री श्री रामनारायण चौधरी और श्री सत्यभक्त कठोर राजकीय नाकावन्दी के वावजूद घटनास्थल पर पहुंचे और वहुमूल्य सामग्री जुटाकर लाये। उनकी रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई जिससे देश और विदेश में भी इन दुर्घटनाओं की गूंज हुई।

लड़ाई और शस्त्रास्त्र से न तो भारत को मुक्ति मिल सकती है, न संसार को।

७

बेगार विरोधी आन्दोलन

आजीवन देश सेवा का व्रत लेने वाले कार्यकर्ता तैयार करने के लिए गोखलेजी ने भारत सेवक समिति और लाला लाजपतराय ने लोक सेवक समिति नामक संस्थाओं को जन्म दिया। ऐसे ही उद्देश्यों के लिए काम करने वाली एक और संस्था बनी, जिसका कार्य क्षेत्र केवल देशी रियासतों तक सीमित था। उसका नाम राजस्थान सेवा संघ था और श्री विजयसिंह पथिक उसके प्रथम अध्यक्ष थे। इस संस्था ने अपने समय में राजस्थान के सामन्ती-तन्त्र को हिला दिया था और अंग्रेज शासक भी उससे भय खाते थे।

इस संस्था ने सन् १९२१ में राजस्थान में बेगार विरोधी आन्दोलन उठाया। बेगार प्रथा राजस्थान में नाना रूपों में प्रचलित थी। इसके कारण सत्ताधीश, लोगों पर मनमाने जुल्म ढहा सकते थे। चाहे जिसको बेगार में पकड़ लिया जाता और बिना कोई मजदूरी पाये उन्हें सत्ताधीशों के लिए तरह तरह के काम करने पड़ते थे। घर में कोई बीमार पड़ा है अथवा खेती का दूसरा कोई जरूरी काम अटका है, इसकी कोई परवाह नहीं की जाती और आदमी को बेगार में पकड़ कर बुलाया जाता। इन्कार करने पर मारपीट की जाती थी। राजा शिकार खेलने निकला है तो सैंकड़ों लोगों को जंगली जानवर घेरने के लिए बेगार में पकड़ कर बुलाया जाता। नाई को मुफ्त

चाकरी करनी पड़ती। कुम्हार को पानी भरना पड़ता और बनिये को अफसरों के यहां रसद पहुंचानी पड़ती।

उस समय भारत भक्त दीनबन्धु सी० एफ० एण्डरूज भी बेगार प्रथा के उन्मूलन में दिलचस्पी ले रहे थे। राजस्थान सेवा संघ ने एण्डरूज साहब को लिखा कि बेगार प्रथा राजस्थान की रियासतों में अपने चरम रूप में मौजूद है। उसे खत्म करने के लिए आप हमें अपना सहयोग प्रदान करें। दीनबन्धु को निमन्त्रण देने के लिए संघ ने अपना एक विशेष प्रतिनिधि शान्ति निकेतन भी भेजा था। दीनबन्धु एण्डरूज ने इस सिलसिले में राजस्थान आकर विभिन्न रियासतों का दौरा करने की बात स्वीकार करली। राजस्थान सेवा संघ उनके दौरे का कार्यक्रम बनाने में जुट गया और बेगार प्रथा के प्रमाण इकट्ठे करने शुरू कर दिये गये।

दीनबन्धु सी० एफ० एण्डरूज ने २ सितम्बर १९२१ के 'नवजीवन' में बेगार प्रथा की अनैतिकता पर एक लेख लिखा था। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों में प्रचलित बेगार प्रथा का जिक्र करते हुए हिन्दुस्तान में प्रचलित बेगार प्रथा के बारे में लिखा था :—

"बेगार प्रथा खुद हिन्दुस्तान में किसी न किसी रूप में चली आ रही है, और उसका असर उस व्यापारिक लूट से भी ज्यादा बदतर है जो कि अंग्रेजी राज्य में ब्रिटेन के फायदे के लिए हो रही है। बेगार प्रथा भारत में कहीं बाहर से नहीं आई है बल्कि वह तो भीतर ही भीतर बहने वाला नासूर है और आज सारी देशी रियासतों में, खासकर राजपूताना में, उसने बड़ी ही मजबूती से घेरा डाल रखा है। उसने खुद बहादुर राजपूतों को भी, जहां तक एक बड़े हिस्से में खेती करने वाले लोगों से सम्बन्ध है, धीरे-धीरे गुलामी की सी हालत में ला छोड़ा है।

"इस बेगार प्रथा से पिण्ड छुडाने का एक मात्र आखिरी उपाय यह है कि लोग बेगार देने से इन्कार कर दें। राजपूतों की रियासतों में वर्षों से एक आन्दोलन चल रहा है जिसमें असहाय ग्रामीण अपनी सारी बहादुरी का परिचय दे रहे हैं और सो भी अधिक ऊंचे ढंग से सत्याग्रह के रूप में (दीनबन्धु का संकेत बिजोलियां सत्याग्रह और भील आन्दोलन से है)। दोनों ही क्षेत्रों में लोगों ने बेगार देने से इन्कार कर दिया था और राज्यों के कोपभाजन बने थे। यहां तक कि उनके ऊपर गोलियां चलाई गईं और वे उस आखिरी भयंकर

परीक्षा में एक तिल भी न हटे वे उस अवस्था में भी शान्त रहे। शायद जल्दी ही मैं इन वीर आत्माओं से मिलने जाऊं। फिजी जाने के पहले ही मैं वहां जाने का इरादा कर रहा हूं और उनकी इस साहस पूर्ण सहनशीलता के विषय में कुछ जानना चाहता हूं और जब वहां पहुंचूगा तो अपनी आंखों देखी बातें लिखूंगा।"

किन्तु हर अच्छे कार्य में विघ्न डालने वाले मिल जाते हैं। राजस्थान के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में कुछ ऐसे भी थे जो राजस्थान सेवा संघ से ईर्ष्या करते थे। उन्होंने दीनबन्धु को उल्टा सीधा लिखा, जिससे वह असमंजस में पड़ गये कि उन्हें राजस्थान की यात्रा करनी चाहिए या नहीं। उन्हीं दिनों गांधीजी कलकत्ता गये हुए थे और देशबन्धु चितरंजनदास के मकान पर ठहरे हुए थे। दीनबन्धु एण्डरूज भी वहीं मौजूद थे। पथिकजी के बारे में चर्चा चल पड़ी। एण्डरूज साहब के पूछने पर गांधी जी कहा:—

"I can tell you something about Pathik. Pathik is a worker, others are talkers. Pathik is a soldier, brave and impetuous, but obstinate. He was Mahadeo's infallible guide in Bijolia, and the remarkable thing is that the masses of Bijolia have implicit confidence in him".

(मैं आपको पथिक के बारे में कुछ बता सकता हूं। पथिक काम करने वाले हैं दूसरे बातें बनाते हैं। पथिक एक सिपाही हैं, बहादुर, जोशीले किन्तु जिद्दी। जब महादेव बिजौलिया गये तो वह उनके अचूक मार्ग दर्शक थे। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि बिजौलिया की जनता का उन पर पूरा-पूरा विश्वास है।)

गांधीजी और दीनबन्धु की इस चर्चा के समय हिन्दी के सुपरिचित साहित्य सेवी पं० बनारसीदास चतुर्वेदी भी मौजूद थे और उन्होंने ही बाद में पथिकजी के बारे में गांधीजी के उद्गारों का प्रकाशन किया था। कार्यकर्त्ता के रूप में गांधीजी पथिकजी को किस निगाह से देखते थे यह इस बातचीत से भली प्रकार प्रकट हो जाता है।

गांधीजी के इस कथन के बाद दीनबन्धु एण्डरूज की सभी शंकाओं का निवारण हो गया। वह राजस्थान की यात्रा के लिए प्रस्तुत थे। किन्तु राजस्थान की अनेक रियासतों को दीनबन्धु एण्डरूज का आगमन रुचिकर

न था । शायद वे रोड़े भी डालतीं । किसी न किसी कारण से एण्डरूज साहब की राजस्थान यात्रा टलती गई और वे अन्त तक नहीं आ पाये ।

किन्तु राजस्थान सेवा संघ के वेगार विरोधी आन्दोलन का यह परिणाम जरूर आया कि वेगार की क्रूरता में कमी आई और एकाध रियासतों में सार्वजनिक घोषणा द्वारा उसके रूप को वदल दिया गया और काम के वदले मजदूरी देने की व्यवस्था अनिवार्य करदी गई ।
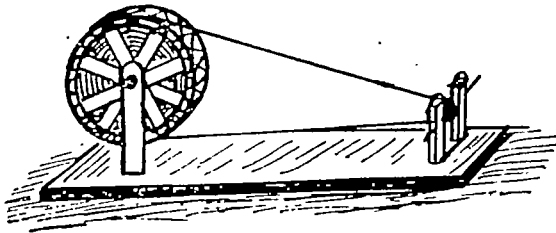
महान् पुरुष कभी नहीं मरते । यह आप पर है कि उनके काम को जारी रख कर आप उन्हें अमर रखें ।

८

नीमूचाणा हत्याकाण्ड

जलियांवाला वाग के हत्याकाण्ड से सभी परिचित हैं। इस हत्या काण्ड ने अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीय जनता के विश्वास को जड़ मूल से हिला दिया। जनरल डायर ने इस वाग में आयोजित नागरिकों की एक सभा को फौज द्वारा घेर लिया और मशीनगन की अंधा धुंध गोलियां चला कर सैकड़ों स्त्री पुरुषों और वच्चों को मौत के घाट उतार दिया। भारत में ब्रिटिश शासन पर कभी न मिटने वाला कलंक का टीका लग गया और उसने जव इस अन्याय का समुचित प्रतिकार किनहीं या तो गांधीजी को असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात करना पड़ा जिसने भारतीय इतिहास की धारा को ही मोड़ दिया। जलियांवाला वाग शहीदों का स्मारक और पुण्य तीर्थ वन गया है। जिस धरती पर शहीदों का रक्त पड़ा उसकी मिट्टी को माथे पर लगा कर कौन देशभक्त कृतकृत्य नहीं होगा।

जलियांवाला हत्याकाण्ड से मिलता जुलता काण्ड सन् १९२५ को १४ मई को राजस्थान की अलवर रियासत के नीमूचाणा गांव में घटित हुआ। उस समय महाराज जयसिंह अलवर की गद्दी पर थे। उनकी निरंकुशता से प्रजा वुरी तरह पीड़ित थी। उन्हीं दिनों रियासत में भूमि का नया वन्दो-वस्त हुआ। किसानों के विस्वेदारी अधिकार छीन लिए गए और लगान पहले

से ड्योढ़ा कर दिया गया । राजपूत किसानों ने अपनी एक कमेटी संगठित की और उसके द्वारा न्याय प्राप्त करने के लिए वैधानिक प्रयत्न करने लगे । महा-राजा और ब्रिटिश अधिकारियों को तार, आवेदन पत्र, आदि दिए ।

महाराजा को इस पर बड़ा गुस्सा आया और उन्होंने नीमूचाणा गांव पर फौजकशी करने का हुकम दे दिया । फौज और पुलिस के सैंकड़ों आद-मियों ने, जिसमें घुड़सवार भी शामिल थे, नीमूचाणा गांव को घेर लिया । चार मशीनगन और दो तोपें उनके साथ थीं । फौज ने राजपूत किसानों की सभा पर चारों ओर से गोलियां चलाना शुरू कर दिया । सभा को न तो गैर कानूनी घोषित किया गया और न उसे बिखरने का आदेश दिया गया । गोली चलाने में इस बात का कोई लिहाज नहीं रखा गया कि कम से कम प्राण हानि हो । करीब दो घंटे तक गोलियां चलती रहीं । ४२ मिनट तक लेविस गन ने गोलियां चलाईं । पुलिस के सिपाहियों ने गांव को लूटा और आग लगा दी । घायलों को कोई मदद नहीं दी गई ।

इस काण्ड में जान-माल की भारी क्षति हुई । १६ व्यक्ति, जिनमें स्त्रियां भी थीं, अपने घरों में गोली से मारे गये, १८ घायल हुए और ६ का पता नहीं लगा । ३५३ झोपड़ियां नष्ट हो गई और ७१ पशु जल गये । उस समय के अनुमान के अनुसार ५० हजार से १ लाख रुपये तक की सम्पत्ति नष्ट हुई । हताहतों की जो संख्या ऊपर दी गई है, वह उन लोगों की है जिनके नाम ज्ञात हुए, किन्तु दरअसल इस हत्याकाण्ड में एक सौ से अधिक आदमी मारे गए और दो सौ घायल हुए ।

इस घटना के बाद बहुत से व्यक्ति गिरफ्तार किए गए । उनके साथ जेल में दुर्व्यवहार किया गया और उन्हें माफी मांग लेने के लिए विवश किया गया । कुछ पर मुकदमा चलाया गया । उनको अपनी सफाई का अवसर नहीं दिया गया । दो को बीस वर्ष, एक को १० वर्ष, और अन्य दो को पांच-पांच वर्ष सख्त कैद की सजाएं दी गईं । दो वन्दी जेल के अत्याचारों के कारण जेल में ही शहीद हो गए ।

महाराजा ने इस हत्याकाण्ड पर पर्दा डालने की पूरी कोशिश की, किन्तु सत्य कभी छिपा नहीं रह सका । ब्रिटिश सरकार ने भी इस काण्ड के के प्रति आंखे मूंद लीं और महाराजा को एक शब्द भी नहीं कहा । कांग्रेस की उस समय यह नीति थी कि देशी रियासतों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप न किया जाए । किन्तु जब उसका विवरण गांधीजी के पास पहुँचा तो उन्होंने

'यंग इन्डियां' में Dyerism Double Distilled (दोहरी डायरशाही) शीर्षक से एक टिप्पणी लिखी। उसका अनुवाद यह रहा :—

> अलवर के विषय में मेरे पास इतना ब्यौरा नहीं है कि कुछ लिख सकूं। मेरी बात या लेख पर निज़ाम साहब की तरह अलवर महाराज भी तिरस्कार के साथ हंस सकते है। अब तक जो बातें प्रकाशित हुई हैं, वे यदि सच हैं तो इसे दोहरी डायर शाही ही समझना चाहिए। किन्तु मैं जानता हूँ कि फिलहाल मेरे पास इसकी कोई दवा नहीं है। इन भीषण आरोपों के सम्बन्ध में कम से कम जांच कराने के निमित्त समाचार पत्रों वाले जो उद्योग कर रहे हैं, उसे मैं आदर की दृष्टि से देख रहा हूं।

इस काण्ड की जांच के लिए एक जांच कमेटी बनी। उसके अध्यक्ष श्री मणिलाल कोठारी और मन्त्री श्री राम नारायण चौधरी हुए। राजस्थान सेवा संघ की ओर से श्री हरि भाई किंकर, पं० लादूराम जोशी, और श्री कन्हैयालाल कलयंत्री गुप्त रूप से घटना स्थल पर पहुँचे। खुले तौर पर तो कोई वहां जा नहीं सकता था। इतनी बड़ी नाकाबन्दी राज्य की ओर से थी। ये तीनों कार्यकर्ता काफी मूल्यवान सामग्री जुटा लाये थे। उनके जाने से पीड़ित ग्रामीणों को भी आश्वासन मिला था।

सन् १९२५ के अन्त में कानपुर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। उसके साथ ही देशी राज्य प्रजा परिषद का अधिवेशन हुआ। उसकी और नेताओं की प्रार्थना पर इस परिषद के लिए नीमूचाणा हत्याकाण्ड के बारे में गांधीजी ने स्वयं अपने हाथ से एक प्रस्ताव का मस्विदा तैयार किया। प्रस्ताव का मस्विदा अंग्रेजी में था, जिसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है:—

> देशी राज्यों की प्रजा की यह परिषद अलवर राज्य के भीतर नीमूचाणा की अमानुषिक घटनाओं पर खेद प्रकट करती है कि राज्य ने अपनी पुलिस और अफसरों द्वारा किए गए घोर हत्याचारों और अनियमितताओं के कारणों और ब्यौरों की खुली और निष्पक्ष जांच करने की अनुमति न देने का दुराग्रह किया है।
>
> यह परिषद अनेक शोक-दग्ध कुटुम्बों, आहत व्यक्तियों और उन लोगों के प्रति जो कानून और व्यवस्था के नाम पर

> अपनी सम्पत्ति के नष्ट कर दिए जाने के कारण गृह हीन हो गए हैं, हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है, और चाहती है कि वह नीमूचाणा के लोगों की इस संकट के समय कुछ कारगर सहायता करने में समर्थ हो।

यही नहीं, गांधीजी ने देशी राज्य प्रजा परिषद को रियासती जनता के नाम एक छोटा सा स्फूर्तिदायक संदेश भी दिया। संदेश हिन्दी में था। संदेश की शब्दावली यह थी:—

> प्रत्येक मनुष्य अपना बन्धन काट सकता है। यदि हम इस सामान्थ नियम को समझ लें और उसका पालन करें तो सब दुःख की जड़ काट सकते है। कोई जालिम मजलूम कीसहाय के वगैर जुलम नहीं कर सकता है। इतना पाठ सीख लें तो कैसा अच्छा होगा।

नीमूचाणा हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में गांधीजी ने जो दिलचस्पी ली और रियासती कार्यकर्ताओं और जनता का जो मार्ग दर्शन किया, उससे बड़ी हिम्मत बंधी। नीमूचाणा हत्याकाण्ड ने राजाओं की निरंकुशता और अत्याचारों के प्रति रिसायती जनता में तीव्र रोष और असंतोष उत्पन्न किया। अन्त में अलवर महाराजा को भी इसी जीवन में उसका फल भोगना पड़ा। किसी और प्रसंग को लेकर ब्रिटिश सरकार उन पर कुपित हुई और उन्हें रियासत से निर्वासित कर दिया गया। उनकी मृत्यु निर्वासित अवस्था में ही पेरिस में हुई।

नीमूचाणा हत्याकाण्ड के बारे में कांग्रेस ने कोई प्रस्ताव क्यों नहीं स्वीकार किया, गांधीजी ने ३० जुलाई १९२५ के हिन्दी 'नव जीवन' में प्रकाशित अपने एक खेल में इसका स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने बताया कि कांग्रेस की देशी रियासतों के सम्वन्व में क्या मर्यादायें हैं और व्यक्तिगत रूप से कांग्रेसजन रियासती प्रजा की किस प्रकार मदद कर सकते है। गांधीजी ने लिखा था :—

> लोग जिसे 'अलवर हत्या काण्ड' कहते है उसके सम्वन्ध में कलकते की कांग्रेस कार्य समिति में श्री जमना लाल जी बजाज ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया था कि एक जांच समिति नियत की जाये। वर्षों से कांग्रेस की यह परम्परा चली

आई है कि वह देशी राज्यों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप न करें। कार्य समिति के सदस्यों ने अनुभव किया कि यह परम्परा अच्छी है और उसको तोड़ना नादानी होगी। तब श्री जमना लाल जी ने इस पर जोर न दिया। फिर भी मैंने उनसे कहा था कि मैं 'यंग इण्डियां' में इस प्रश्न की चर्चा करूंगा और अपनी इस जाती राय के कारण बताऊंगा कि क्यों कांग्रेस को देशी रियासतों की भीतरी बातों में दखल न देना चाहिये। यदि कोई चाहे तो इसे समय साधकता या समय नीति ख्याल कर सकता है। यह दोनों है, और शायद इससे भी कुछ अधिक है। यह बात खुल्लम खल्ला कबूल कर लेनी होगी कि खुद ब्रिटिश इलाकों में कांग्रेस अपने आदेशों का पालन करने की जितनी सत्ता रखती है उतनी भी देशी राज्यों में उसके पास नहीं है। इसलिए दूरदर्शिता कहती है कि जहां कर्म, यदि नादानी नहीं तो व्यर्थ प्रयत्न हो, वहां अकर्म ही श्रेष्ठ होता है। पर यदि अकर्म दूरदर्शिता पूर्ण हो तो वह लाभकारी भी है। कांग्रेस देशी राज्यों को तंग करना नहीं चाहती। वह तो इन्हें मदद करना चाहती है। वह उनको नष्ट करना नहीं चाहती, उनमें सुधार करना चाहती है और कांग्रेस यह करती है उनसे दूर रहकर, अपनी सदिच्छा की सरगर्मी का परिचय देकर।

परन्तु कांग्रेस के अलग रहने का यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेसी अपनी तरफ से कुछ न करें। जिनका देशी राज्यों से कुछ भी सम्बन्ध है, वे अवश्य ही अपने प्रभाव का उपयोग करेंगे। स्थानिक समितियां दुखी लोगों की सहायता और रहनुमाई कर सकती है, जहां तक राज्य सत्ता से उनका संघर्ष न हो। और न कांग्रेस किसी कांग्रेसी के कार्यों पर अंकुश ही रखती है या उसे नियमित ही करती है। क्योंकि वे जब कोई काम वहां करते हैं तब कांग्रेसी की हैसियत से नहीं करते हैं। यह न होना चाहिए कि उनके काम को कांग्रेस का काम दिखाया जाय।

तब क्या देशी राज्यों की प्रजा कांग्रेस से, जो कि एक राष्ट्रीय संस्था होने का दावा रखती है, किसी तरह की

सहायता की उम्मीद न करे ? मैं समझता हूँ कि इसका उत्तर अंशतः होगा 'नहीं'। वे किसी तरह की प्रत्यक्ष सहायता की आशा न करें। हां अप्रत्यक्ष सहायता उन्हें जरूर मिलती है: क्योंकि जिस दर्जे तक कांग्रेस कार्यक्षम और शक्तिशाली होती है उसी दर्जे तक देशी राज्यों की दशा अच्छी होती है। कांग्रेस का नैतिक प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश के कोने कोने में हुए विना नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में मैं आशा करता हूँ कि अलवर के दुःखी लोग इस वात को समझ लें कि यदि कांग्रेस उन्हें कोई सीधी सहायता नहीं पहुंचा सकती तो इसका कारण इच्छा का अभाव नहीं, वल्कि क्षमता और अवसर का अभाव है।

एक भाई ने गांधी जी से यह प्रश्न पूछा :—

अलवर राज्य, मालवीय जी को अकेले नीमू चाणा काण्ड की तहकीकात करने की इजाजत दे रहा था, फिर भी उन्होंने उसे नहीं किया। क्या यह उनकी भूल नहीं ? राज्य की ओर से आर्थिक सहायता मिलने के कारण दव जाना और अपने फर्ज से चूकना, नैतिक साहस प्रकट करने में हिचकना और तहकीकात के मिले मौके को गंवाना, पंडित जी जैसे नेता के लिए क्या अनुचित नहीं है ?

गांधीजी ने २७ अगस्त १९२५ के 'नवजीवन' में इस प्रश्न का उत्तर यों दिया :—

मैंने अखवारों में पढ़कर पंडितजी के विषय में लिखा था। प्रश्नकर्ता ने जल्दवाजी से उल्टा अनुमान किया है। पंडितजी को अलवर जाने की तथा तहकीकात करने की इजाजत मिली ही नहीं। अलवर नरेश के अधिकारियों ने डायरशाही चलाई है और अलवर नरेश ने खुली तहकीकात को रोककर राजमुकुट के तेज को कम कर दिया है। पंडित जी इतने भीरु नहीं हैं कि तहकोकात का मौका उन्हें मिले और वह उसे खोयें। कोई स्वप्न में भी यह खयाल न लावे कि पंडितजी द्रव्य के लिए आत्मा को वेच देंगे।

राजपूताना में तो चरखे और खादी का खूब प्रचार होना चाहिये। अन्य प्रान्तों में जब चरखे का लोप हो रहा था, तब राजपूताना में थोड़ा सही तो चल रहा था। अब तो कोई घर चरखे से खाली नहीं होना चाहिये, न घर में सिवाय खादी के दूसरे कपड़े होने चाहिये।

—मो० क० गांधी

९

राजस्थान में खादी और वस्त्र स्वावलम्बन कार्य

इस देश में हाथ कताई और बुनाई का गृह उद्योग परम्परा से चलता था। बारीक से बारीक कपड़ा यहा बुना जाता था। विदेशी मंडियों में भी बिकता था। किन्तु समय ने पलटा खाया। इस देश में अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आगमन हुआ। उसने देश के परम्परागत उद्योग को नष्ट करने के लिए तरह तरह के उपाय अपनाये। यहां तक कि बारीक सूत कातने वालों के अंगूठे कटवा दिये। विदेशी मिलों में तैयार हुआ कपड़ा, जो अपेक्षाकृत सस्ता होता था, यहां बिक्री के लिए आने लगा। लोगों ने अपने चरखे उठाकर रख दिये जो धीरे धीरे ईंधन के काम में आने लगे।

गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे और उन्होंने देश का भ्रमण किया तो उन्हें पता चला कि देश में गरीबी और बेकारी बढ़ती जा रही हैं, और उसके निवारण के लिए खेती के साथ किसी सहायक धन्धे की आवश्यकता है तो उन्होंने चरखे को खोज निकाला। उसे फिर से नया जीवन दिया। उन्होंने देखा कि फुर्सत के समय लोग, स्त्री और पुरुष, चरखे या तकली पर सूत कातकर अपनी जरूरत का कपड़ा खुद बुनवा सकते हैं और

इस तरह जीवन की एक बुनियादी जरूरत अर्थात कपड़े के मामले में आत्म-निर्भर हो सकते हैं। विदेशों से जो करोड़ों रूपया मूल्य का कपड़ा देश में आने लगा था, वह बन्द हो सकता है और इस तरह देश के धन को देश में ही बचाया जा सकता है। शुरू में मोटा सूत कतता था और मोटी खादी तैयार होती थी। धीरे धीरे चरखों में सुधार हुआ, धुनाई ठीक होने लगी और बुनने के करघों में भी सुधार हुआ। महीन और बड़े पन्ने की खादी तैयार होने लगी। साथ ही खादी की रंगाई और छपाई का काम भी शुरू हुआ और खादी का उत्पादन दिनों दिन बढ़ता गया और आज देश में करोड़ों रूपये के मूल्य की खादी तैयार हो रही है। चरखे ने सिद्ध कर दिया कि वह एक सहायक धन्धा हो सकता है और अनुकूलता मिलने पर खादी मिल के कपडे की जगह ले सकती है। वह शोषण को रोकेगा और पूंजी का समान वितरण करके समाजवाद की स्थापना में सहायक होगा। देहात को उजाड़ेगा नहीं बल्कि आबाद रखेगा और खुशहाल बनायेगा।

खादी के काम के दो पहलू रहे हैं। एक तो जहां व्यापक रूप से कताई और बुनाई होती है, ऐसे केन्द्रों में खादी का उत्पादन किया जाय और फिर उस तैयार खादी को उन शहरों और कस्बों में बेचा जाए जहां उसकी मांग हो। यह खादी का व्यावसायिक काम हुआ। खादी का दूसरा रूप यह है कि लोग खुद सूत कातें और अपने कुटुम्ब की जरूरत का कपड़ा या तो खुद बुन लें या देहात के बुनकर से बुनवा लें और इस तरह आत्मनिर्भर हो जाएं। इसे वस्त्र स्वावलम्बन का काम कहा गया है।

राजस्थान में खादी के काम के लिए काफी अनुकूलता थी। यहां विशेषकर जयपुर रियासत में परम्परा से काफी चरखे चलते थे। पहले मिश्रित खादी तैयार होती थी, यानी ताना मिल के कते सूत का तो बाना हाथ कते सूत का होता था। गांधीजी ने शुद्ध खादी की यह व्याख्या की कि उसमें केवल हाथ के कते सूत का इस्तेमाल होना चाहिए और वह हाथ करघे पर बुनी होनी चाहिए। राजस्थान में व्यावसायिक शुद्ध खादी का उत्पादन बढ़ा और इस समय राजस्थान के भिन्न भिन्न भागों में अनेक खादी संस्थायें काम कर रही हैं। लाखों कातने वालों और हजारों बुनकरों को आंशिक या पूरा रोजगार मिल रहा है। राजस्थान में खादी के काम की शुरुआत उस समय हुई, जब गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन की शुरुआत के साथ चरखे और खादी पर जोर देना शुरु किया। कांग्रेस ने खादी का काम चलाने के लिए खादी मण्डल की स्थापना की। उसके बाद सन् १९२६ में अखिल

भारतीय चरखा संघ की स्थापना हुई और राजस्थान में भी उसकी शाखा बनी तो खादी का काम व्यवस्थित रूप से होने लगा। गांधीजी ने एक विशेष सन्देश भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा था: "राजपूताना में तो चरखा और खादी प्रचार खूब होना चाहिए। अन्य प्रान्तों में जब चरखे का लोप हो रहा था, तब राजपूताना में थोड़ा सही तो भी चल रहा था। अब तक कोई घर चरखे से खाली नहीं होना चाहिए, न घर में सिवाय खादी के दूसरे कपड़े होने चाहिए।" रियासतें उस समय खादी के काम से चौंकती थीं। चरखा संघ ने रियासती अधिकारियों को आश्वासन दिया कि चरखे और खादी का काम मानव सेवा का काम है, गरीबों की सहायता का काम है और राजनीति के साथ उसका कोई सरोकार नहीं है। जयपुर रियासत ने रुई के आयात और खादी के निर्यात पर चुंगी हटा ली और उसके विकास में सहायता दी। राजस्थान के कुछ राजा-महाराजाओं ने खादी खरीद कर उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया।

बिजोलियां में वस्त्र-स्वावलम्बन

किन्तु वस्त्र स्वावलम्बन की दृष्टि से सबसे उल्लेखनीय काम राजस्थान में बिजोलियां में हुआ। यहां पर किसान सत्याग्रह के कारण राजनीतिक जागृति पहले से मौजूद थी और स्थानीय कार्यकर्ता आसानी से उपलब्ध हो गये। पंचायत का सुदृढ़ संगठन भी वहां मौजूद था। श्री जेठालाल गोविन्द ने इस काम को संगठित किया। वे बिजोलियां में अपरिचित थे। राजस्थान सेवा संघ का वहां प्रभाव था। संघ ने उनकी सहायता की। जेठालाल भाई खादी के पीछे पागल थे। उन्होने अपनी कमाई की एक बड़ी राशि खादी काम के लिए चरखा संघ को दी और खुद की सेवाएं भी इस काम के लिए सौंप दी। देश में घूमने के बाद बिजोलियां का क्षेत्र उन्होंने वस्त्र स्वाव-लम्बन के प्रयोग के लिए पसंद किया। वहीं अपना डेरा डाल दिया और भूत की तरह इस काम में जुटगये। सन् १९२६ में उन्होंने इस काम की शुरुआत की। वह अपने काम की प्रगति का विवरण समय समय पर गांधीजी के पास भेजा करते थे, जो 'नवजीवन' में छपता था और गांधीजी अपनी टिप्प-णियां द्वारा उनका पथ-प्रदर्शन करते थे। चरखा संघ ने बिजोलियां के खादी काम को अपनी रिपोर्ट में बारडोली के प्रयोग से भी ज्यादा ध्यान देने योग्य बताया था। उस समय इस क्षेत्र की आबादी ११,००० थी। लक्ष्य यह था कि इस क्षेत्र में लोग, स्त्री पुरुष दोनों, खुद अपनी जरूरत का सूत कातें और उसका कपड़ा बुनवा लें। पहले यहां बहुत कम चरखे चलते थे और बहुत

मोटा तीन-चार नम्बर का फड़ियों वाला सूत कतता था। पुरुष सूत कातने में संकोच करते थे। खादी सेवकों के प्रयास से लोगों ने बुनाई सीखी और घर-घर चरखे चलने लगे। सूत १५–२० नम्बर का कतने लगा। उमाजी का खेड़ा गांव, जहां श्री माणिक्यलाल वर्मा रहते थे, कताई की दृष्टि से सबसे आगे रहा। वहां एक व्यक्ति ने ५१।। नम्बर का सूत कात कर दिखाया। सूत इतना कतने लगा कि उसकी बुनाई की समस्या पैदा हो गई। बुनकरों के अलावा खुद किसानों को बुनने और रंगने तथा छापने का काम सिखाया गया। कुछ ही समय के काम का यह नतीजा आया कि ११,००० की आबादी में,५०० आदमियों ने खुद सूत कातकर अपना कपड़ा बुनवा लिया। परम्परागत बुनकरों के अलावा खुद किसानों को बुनना सिखाया गया और उन्होंने यह काम खुशी से सीखा। ६५ करघे चलने लगे। हिसाब लगाया गया कि यदि प्रति व्यक्ति, प्रति वर्ष, दस गज कपड़े की आवश्यकता हो तो ११,००० जनसंख्या के लिए १ लाख १० हजार गज कपड़ा चाहिए। ६५ करघे साल में ७८ हजार गज कपड़ा तैयार कर सकते थे। ३० करघे और चलने पर यह क्षेत्र कपड़े के मामले में स्वावलम्बी हो सकता था।

२७ सितम्बर १९२८ के 'नवजीवन' में बिजोलियां के खादी कार्य के बारे में जेठालाल भाई का एक लम्बा विवरण प्रकाशित हुआ। इसमें बुनकरों की समस्या और रंगाई-छपाई को कठिनाइयों का भी जिक्र किया गया। जेठालाल भाई चाहते थे कि किसानों को ओटने, धुनने, कातने से लगाकर बुनने, रंगने और छापने की सब क्रियाएं सिखा दी जाय। श्री जेठालाल भाई के विवरण पर गांधीजी ने 'नवजीवन' के उसी अंक में यह टिप्पणी लिखी :—

"बिजोलियां में खादी कार्य नामक जो लम्बा लेख इस अंक में दिया है उसकी ओर में आपका ध्यान खींचता हूं। मैं आशा करता हूं कि लेख की लंबाई से कोई नहीं भड़केगा। हमारे पास जो बहुत ही थोड़े से गिने गिनाये खादी-पागल हैं, उन्हीं में एक श्री जेठालाल भाई हैं। गीता की परिभाषा में खादी-पागल को स्वधर्म निरत कहेंगे। परमार्थ से ग्रहण किये हुए अपने कार्य में रचे-पचे हुए लोगो की देश में बहुत बड़ी जरूरत है। इसके अलावा बिजोलियां के खादी कार्य में और जगहों की अपेक्षा बहुत जल्दी सफलता मिली है। ऐसी सफलता किस प्रकार मिली है, किस हद तक मिली है, यह जानना प्रत्येक खादी कार्यकर्ता का कर्त्तव्य है। इस समझ से मैंने यह लेख पूरा का पूरा छापा है। पाठक यह स्पष्ट रूप से देख सकेंगे कि इस

के मूल में खादी को अव्यभिचारिणी भक्ति और उसमें से उत्पन्न होने वाली दृढ़ता और धैर्य है। लेख का यह मान सबके याद रखने लायक है।

"यहां यह भी कहना चाहिए कि हमने ऐसे संयम का पालन करने का निश्चय किया था कि मानो हम खादी के सिवाय कुछ जानते ही नहीं, समझते ही न हों, खादी के लिए पगले हो गये हो। खादी का उपदेश लोगों को मीठा नहीं लगत था। क्रियात्मक बात होने के कारण हां कहते हुए भी लोग विचार करने लगते थे। मनुष्यत्व को जो नष्ट कर डाले, ऐसी स्थितियां बीमारी, गंदगी, अनीती, सामाजिक और राजनीतिक अशांति—हम नजरों से देखते थे। हमारी अपनी बात खत्म हुई कि हम दूसरी किसी बात में दिलचस्पी नहीं लेते थे। हम समझते थे कि हमने दूसरी बातों में टांग अड़ानी शुरू की कि हमारी खादी की दलील में जहर घुसा।"

"गांधीजी ने अन्त में लिखा था कि ऐसे चुस्त आदमी ही जाड़े के सवेरे का कड़कता जाड़ा, गर्मी की दुपहर की चिलकती लू, चौमासे की मूसलाधार वर्षा और बीच बीच में कीचड़ सहन करते लोगों को खादी का संदेश पहुंचाते हैं। जेठालाल भाई के शब्दों में किसानों के लिए जो आराम का समय होता है, खादी का काम करने वालों के लिए वह काम का मौसम होता है और काम की सफलता तो काम के मौसम में ही वह काम करने में रहती है।"

७ मार्च १९२९ के 'नवजीवन' में जेठालाल भाई ने गांधीजी के सामने एक और समस्या पेश की। उन्होंने लिखा :—

"संभव है, पांच छः महीने बाद इस प्रदेश को छोड़ने का मौका आ जाये। फिर भी यहां छः हजार लोग तो अपने कपड़े के लिए खुद सूत कातने लगेंगे। बहुत से अपना कपड़ा आप बुन भी लेंगे। लेकिन रंग का सवाल उलझन पैदा कर रहा है। लाल, पीला और गुलाबी, इन तीन रंगों की जरूरत है। इस बारे में हम परावलम्बी हैं। विलायती रंग बरतना पड़ता है। अगर बाजार के भरोसे पर रहते हैं तो मुनाफे की लालच से व्यापारी धोखा देंगे और लोगों को बाजारू कपड़ा खरीदने के लिए ललचायेंगे। इस कारण जो काम हो चुका है उसे आगे बढ़ाने के लिए लोगों को घर पर रंग तैयार करने का रास्ता बतलाना पड़ेगा। अत : या तो आप इस उलझन को सुलझायें अथवा इसे सुलझाने के लिए 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' द्वारा किसी को प्रेरणा दीजिए। आशा हैं कुछ न कुछ तो मदद करेंगे ही। क्या यहां

और क्या दूसरी जगह, जब तक यह समस्या सुलझती नहीं है, हमारी लाचारी बनी ही रहेगी।"

गांधीजी ने इस पर स्वावलम्बन की व्याख्या की। उन्होंने कहा कि मनुष्य एकांगी रूप से स्वावलम्बी नहीं हो सकता। अगर होगा तो उसमें अनेक दोष घुस आयेंगे। स्वावलम्बन की अति नहीं करनी चाहिए। खादी का आन्दोलन आत्मशुद्धि का आन्दोलन है तो उसका असर दुकानदारों पर भी पड़ना चाहिए। गांधीजी ने ७ मार्च १९२९ के 'नवजीवन' में लिखा था: —

"यह जरूरी है कि घर में ही हमें रंग तैयार मिल जाय। आशा है, रंगाई शास्त्र के जानकार इस काम में मदद करेंगे। लेकिन भाई जेठालाल के समान अनन्य खादी-भक्त को एक बात की सूचना यहीं किये देता हूं। जिस लोभ के चक्कर में भाई जेठालाल पड़े हों सो तो पहले प्रचलित नहीं थी। पुराने जमाने में भी किसानों को जरूरी चीजों के लिए दूकानदार की आवश्यता रहती थी, और मेरी राय में उसका बना रहना बहुत जरूरी है। मनुष्य जितना स्वावलम्वी है उतना ही वह परावलम्वी भी है, उसे होना भी चाहिए। मनुष्य का जीवन सामाजिक है। जब तक वह समाज का सहारा नहीं लेता, तब तक वह अद्वैत की साधना नहीं कर सकता, शून्यता को पा नहीं सकता, जगत की कसौटी पर बढ़ नहीं सकता और अपनी श्रद्धा की परीक्षा कर नहीं सकता। अगर वह अपने आसपास ऐसा वायुमंडल खड़ा कर सके कि जिससे मनुष्य को किसी भी हालत में किसी का आश्रय लेना ही न पड़े तो वह महा अभिमानी, अहंकारी बन जाय और फलस्वरूप संसार के लिए भार रूप हो जाय। समाज का अवलम्बन मनुष्य को नम्र बनाता है। यह निःसन्देह सच है कि कई काम ऐसे हैं जिन्हें खुद कर लेना हमारे लिए जरूरी है। लेकिन अगर सभी काम स्वयं करने की लालच करें तो वह लालच बोझ बन बैठेगी। विचार करके देखने से पता चलता है कि कपास होने से लेकर कातने तक की क्रियाओं से भी मनुष्य एक दम स्वाश्रयी नहीं बन सकता। अगर वह अपने कुटुम्बियों की उस काम में मदद न ले तो उसकी गाड़ी शुरू-में ही रुक जाय। और अगर वह कुटुम्बियों की मदद स्वीकार करता है, तो फिर अपने पडौसियों की क्यों न स्वीकार करे? इसी तरह के विचारों के 'फलस्वरूप वसुधैव कुटुम्बकम्' महावाक्य की पैदाइश हुई है।

"एक बात और है। भाई जेठालाल के दुख के गर्भ, में, बहुत गहरे में अविश्वास की गंध आती है। हम यह क्यों मानलें कि जितने दुकानदार हैं वे

सब दगा देंगे ? खादी की प्रवृति में तो आत्मशुद्धि का अपना विशेष ध्यान है। खादी का काम करते हुए हमें समाज के लगभग सारे अंगों से काम लेना है और वे शुद्ध बनेंगे। हम दुकानदार का नाश नहीं चाहते, हमारी इच्छा तो उसके धन्धे में परिवर्तन करने और उसके हृदय को पलटने की है। हम में वह अडिग श्रद्धा होनी चाहिए कि दूकानदार भी देश-प्रेमी और प्रमाणिक हो सकता है। यह बात नहीं है कि कि आज ऐसे दुकानदार हैं ही नहीं। हर बात में हमें अति सर्वत्र वर्जयेत् के सिद्धान्त का प्रयोग कर देखना चाहिए क्योंकि मध्यम मार्ग ही सच्चा मार्ग है। स्वावलम्बन स्वमान और परमार्थ की पूर्ति के लिए जरूरी है। अगर वह इससे आगे बढ़ता है तो दोषरूप बनता है। ईश्वर का साम्राज्य कबूल करने के लिए मनुष्य को नम्रता और आत्महित की साधना के लिए सम्मानपूर्ण परावलम्बन, दोनों आवश्यक हैं। यही सुवर्ण मध्यम मार्ग है। जो इसे छोड़ता है वह 'अतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' होता है।"

विजोलियां में एक ओर खादी काम चलता था तो दूसरी ओर राजनीतिक हलचल भी होती रहती थी। राज्य के अधिकारियों को शक हुआ कि खादी कार्यकर्त्ता राजनीतिक हलचल में योग देते हैं। उन्होंने तीन व्यक्तियों को इस सन्देह में गिरफ्तार कर लिया, जिनमें दो खादी कार्यकर्ता थे और खादी आश्रम के व्यवस्थापकों से यह लिखित वचन मांगा कि वे अपने यहां किसी राजनीतिक कार्यकर्ता को नहीं टिकायेंगे और न उससे सम्पर्क ही रखेंगे। यह वचन तो नहीं दिया गया, किन्तु यह वचन दिया गया कि खादी कार्यकता राजनीतिक कामों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग नहीं लेंगे। इस प्रकार का भरोसा इससे पहले भी दिया गया था। खादी कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी पर गांधीजी ने २१ जौलाई १९२७ के 'नवजीवन' में यह टिप्पणी लिखी थी :—

"कुछ अरसा हुआ जब दैनिक पत्रों में यह खबर छपी थी कि विजोलियां के खादी कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये हैं और वहां के खादी संगठन के व्यवस्थापक से इस बात का वचन मांगा गया है कि वह अधिकारियों को उन तमाम लोगों की खबर देता रहे जो उसके पास जाएं। इस खबर के मिलते ही श्री जमनालालजी सच्ची परिस्थिति को देखने के के लिए उदयपुर पहुँचे। उदयपुर में अधिकारियों से मिलकर विजोलियां होते हुए जमनालालजी चरखा संघ की कोंसिल की बैठक में शामिल होने तथा दक्षिण भारतीय खादी प्रदर्शिनी के समय उपस्थित रहने के लिए

वंगलोर आये, और अपने इस वंगलोर के दौरे में उन्होंने मुझ से कहा कि सचमुच विजोलियां में दो खादी कार्यकता गिरफ्तार कर लिये गये थे। पर वे खादी का काम करने के लिए नहीं, वल्कि राज्य की राजनीति में हस्त-क्षेप करने संदेह में गिरफ्तार किये गये थे। अधिकारियों ने जमनालाल जी को विश्वास दिलाया कि वे खादी के काम में कोई विघ्न नहीं करना चाहते, वल्कि वे तो उल्टा खादी को चाहते हैं और कुछ निश्चित शर्तों पर खादी के काम की खासी सहायता भी करने के लिए तैयार हैं। तव जमना-लालजी विजोलियां के स्थानीय अधिकारियों से मिले और अव यह तय हो गया है कि खादी कार्यकर्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी तरह राज्य की राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, वल्कि अपने खादी उत्पादन और विक्री के लिए ही लोगों को संगठित करते रहेंगे। जमनालालजी को यह वचन देने में स्पष्ट ही कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी क्योंकि यह तो चरखा संघ की निश्चित और अपरिवर्तनीय रीति चली आई है कि देशी राज्यों में वह अपने को शुद्ध खादी के काम में ही सीमित रखे।

संक्षेप में विजोलियां क्षेत्र में चरखे के द्वारा वस्त्र स्वावलम्वन का काम नमूनेदार हुआ। जेठालाल भाई वहां से चले गये। काम की जिम्मेदारी स्थानीय कार्यकर्ताओं को सोंप गये। यह आशा की गई थी कि खादी कार्य-कर्ताओं के हट जाने के वाद भी खादी का वस्त्र स्वावलम्वी कार्य विजोलियां में टिका रहेगा। किन्तु खेद है कि यह आशा पूरी नहीं हुई। विजोलियां क्षेत्र में मिल का कपड़ा पुनः प्रवेश कर गया है। यह अध्ययन किया जाना चाहिए कि ऐसा क्यों हुआ और वस्त्र स्वालम्वन क्यों नहीं टिका।

रींगस का प्रयोग

विजोलियां की सफलता को देखकर जयपुर रियासत के रींगस क्षेत्र में भी वस्त्र स्वावलम्वन की शुरुआत की गई।

रींगस क्षेत्र के संगठनकर्ता भाई मूलचन्द जी ने गांधीजी को (जून १९२९ में) सूचित किया कि रींगस क्षेत्र में कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्न से अव तक करीव ९०० लोग पींजना सीख चुके हैं। इनके अलावा वहुत से लोगों ने आपस में एक दूसरे की सहायता से पींजना सीखा। ६७ परिवार यानी ३४७ व्यक्ति कपड़े के मामले में स्वावलम्वी वन गये। इस क्षेत्र में चरखे पर पहले से कताई होती थी। श्री मूलचन्द ने गांधीजी से पूछा कि कातने वालों

को बुनना भी सिखाया जाए अथवा नहीं, कारण पेशेवर जुलाहे बुनाई ज्यादा लेते हैं। बहुधा हाथ कते सूत में मिल का सूत मिला देते हैं और किसान जो सूत देता है उसे बदल भी देते हैं। गांधी जी ने स्वावलम्बन की व्याख्या करते हुए ६ जून १९२९ के 'नवजीवन' में ये उद्‌गार प्रकट किये थे :—

"मेरा अभिप्राय है कि जो किसान बुनना सीखना चाहते हैं, उनको बुनना सिखाना खादी–सेवक का धर्म है। किन्तु जैसे कताई का प्रचार सफलतापूर्वक किया जाता है और आवश्यक है, वैसा बुनाई के बारे में नहीं कहा जा सकता। बुनाई, कताई का अविभाज्य अंग है, जैसे रोटी पकाने में आटे का गूंधना। जो आटे को गूंध नहीं सकता, परन्तु चूल्हे के निकट बैठकर रोटी पका सकता है, यह नहीं कहा जाता कि वह रोटी पकाना जानता है। इस लिए बुनाई का प्रचार उतना ही आवश्यक है जितना कताई का।

"बुनाई अलग क्रिया है, अलग पेशा है। इसका नाश नहीं हुआ है। हिन्दुस्तान के दारिद्रय के साथ इसका सम्बन्ध नहीं है। कताई के नाश से किसानों की हालत चिन्ताजनक और कंगाल हो गई है। स्वावलम्बन पद्धति के प्रचारार्थ भी बुनाई के प्रचार की आवश्यकता नहीं है। स्वावलम्बन पद्धति का यह अर्थ हरगिज नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब काम खुद करले। ऐसा प्रयत्न करना व्यर्थ और हानिकारक है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज पर अवलंबित है। स्वावलम्बन पद्धति का यह अर्थ है कि प्रत्येक देहात में देहाती लोग अपना अनाज आप पैदा करें, अपने कपड़े आप बनालें। देहात में श्रम विभाग अवश्य होगा। केवल सूत कातना सबके लिए कर्त्तव्य होगा। भूत काल में ऐसा था अब ऐसा होना चाहिए, भविष्य में ऐसा रहना चाहिए। थोड़े ही विचार से मनुष्य देख सकेगा कि यदि कताई क्रिया हाथों से की जाए और करनी चाहिए–तो वह इसी तरह की जा सकती है।

"हमारे दिल में यह खयाल भी नही आना चाहिए कि चूंकि जुलाहे सचाई से काम नही करते हैं इसलिए किसानों को बुनाई का काम सीख लेना चाहिए। हमारा काम जुलाहों को अच्छा बनाने का है। वे भी प्रजा के एक अंग हैं। हां, एक काम हमें अवश्य करना चाहिए, कई खादी–सेवकों को बुनाई का काम अच्छी तरह सीख लेना चाहिए, ताकि उन भाइयों पर हम असर डाल सकें और उन लोगों को हमारे अज्ञान से होने वाले अन्याय से भी बचालें।"

१०

जयपुर प्रजा मण्डल का सत्याग्रह

(१)

जयपुर प्रजामण्डल को अपना अस्तित्व कायम रखने और नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए रियासत के साथ अहिंसात्मक संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्ष का नेतृत्व जमनालालजी ने किया। उन्होंने स्वयं राज्य के प्रतिबन्ध को तोड़कर सत्याग्रह में भाग लिया और रियासत की स्वेच्छाचारिता को चुनौती दी। उस समय जमनालालजी जयपुर प्रजामण्डल के अध्यक्ष थे। जिस प्रवृति में जमनालालजी हों, उसमें गांधीजी न हों, यह सम्भव ही नहीं था। जमनालाल जी ने जयपुर प्रजामण्डल के आन्दोलन की हर मंजिल से गांधीजी को अवगत रखा और जो भी कदम उठाया, गांधीजी के परामर्श से उठाया। गांधीजी ने न केवल निजी रूप से जमनालालजी को परामर्श दिया बल्कि बार बार जयपुर की स्थिति पर अपने 'हरिजन' पत्र में लेख और टिप्पणियां लिखकर प्रजामण्डल के आन्दोलन को खुला समर्थन दिया। वायसराय के साथ भी उन्होंने इस बारे में बातचीत और पत्र व्यवहार किया। उन्होंने चेतावनी दी कि जयपुर का प्रश्न अखिल भारतीय रूप धारण कर सकता है और कांग्रेस इस बारे में उदासीन नहीं बैठेगी। यह इसलिए संभव हुआ कि जमनालालजी कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य थे और गांधीजी के साथ उनके बहुत ही निकट के सम्बन्ध थे। जयपुर प्रजामण्डल को अपने इस
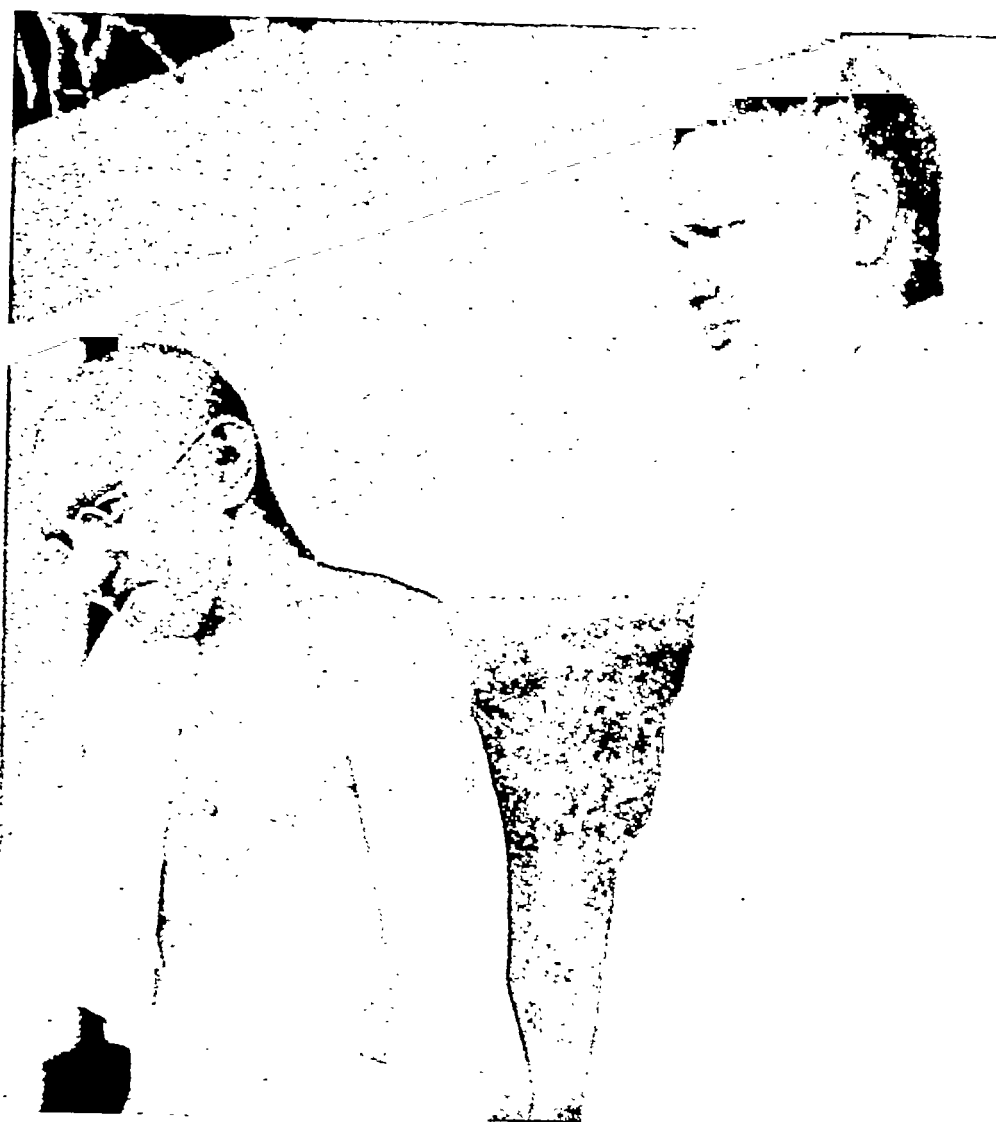
जयपुर प्रजामण्डल सत्याग्रह के समय जमनालालजी गांधीजी के साथ

संघर्ष में जो सफलता मिली, उसमें जमानालालजी का नेतृत्व तो था ही, किन्तु गांधीजी के मार्गदर्शन और समर्थन से बहुत बड़ी सहायता मिली। जयपुर प्रजामण्डल की सफलता ने राजस्थान की दूसरी रियासतों की जनता का भी रास्ता सरल बनाया।

जयपुर प्रजामण्डल सन् १९३१ में कायम हुआ था, किन्तु सन् १९३६ में उसका पुनर्गठन हुआ। तब से उसमें नई जान पड़ी। उसके पांच हजार से अधिक सदस्य बन गये। प्रजामण्डल का उद्देश्य महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन स्थापित करना रखा गया। उसका पहला खुला अधिवेशन जमनालालजी की अध्यक्षता में सन् १९३८ में ८–९ मई को हुआ। अधिकारियों ने सभापति का जुलूस शहर के भीतरी भागों से होकर नहीं निकलने दिया, किन्तु जिस रास्ते से भी यह जुलूस निकला, स्त्री पुरुष हजारों की संख्या एकत्र हो गये। प्रजामण्डल के अधिवेशन में ७–८ हजार व्यक्ति शामिल हुए। उसमें उत्तरदायी शासन, नागरिक स्वतन्त्रता, प्रजा के अभाव–अभियोगों के बारे में खुली चर्चा हुई और प्रस्ताव पास हुए। सीकर की स्थिति पर भी अधिकारियों के न चाहने पर भी एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। अधिवेशन के साथ एक स्वदेशी प्रदर्शनी भी हुई जिसका उद्घाटन कस्तूरबा ने किया। एक महिला सम्मेलन भी हुआ जिसकी अध्यक्षता कस्तूरबा ने की। उसमें तीन-चार हजार महिलायें शामिल हुईं। कहने का आशय यह कि प्रजामण्डल का यह अधिवेशन धूमधाम और सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसके साथ जयपुर रियासत के इतिहास में एक नये युग का श्रीगणेश हुआ। रियासत के दम घोटू वातावरण में लोगों ने पहली बार स्वतन्त्रता के वातावरण का अनुभव किया।

किन्तु जयपुर प्रजामण्डल की प्रवृत्तियां जयपुर रियासत के अधिकारियों की आंखों में बुरी तरह खटकने लगीं। उस समय जयपुर के प्रधान मंत्री पद पर सर बीचम सेंट जान नामक अंग्रेज बैठे हुए थे। उस समय ब्रिटिश सरकार की यह नीति थी कि रियासतों में महत्वपूर्ण पदों पर अंग्रेज अधिकारी नियुक्त किये जाएं। भारत सरकार का पोलिटिकल विभाग रियासतों पर इस प्रकार हावी रहना चाहता था। अंग्रेज अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि रियासती जनता में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हो। जयपुर रियासत में पब्लिक सोसाइटीज एक्ट (सार्वजनिक संस्था अधिनियम) बनाया गया, जिसके अनुसार बिना राज्य सरकार में रजिस्ट्री कराये कोई संस्था कायम नहीं की जा सकती थी। इस कानून के अनुसार प्रजामण्डल को गैर-कानूनी करार दे दिया गया, पब्लिक

मीटिंग एक्ट (सार्वजनिक सभा अधिनियम) बना कर सार्वजनिक सभाओं पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। यही नहीं जब जमनालालजी प्रजामण्डल की ओर से जयपुर रियासत में अकाल पीड़ितों के लिए सहायता-कार्य संगठित करने के लिए २९ दिसम्बर सन् १९३८ को जयपुर रियासत की सीमा में दाखिल होने लगे तो उन्हें रोक दिया गया और यह आदेश दिया गया कि वह बिना इजाजत रियासत में न आयें। जमनानालालजी गांधीजी से परामर्श करके ही जयपुर के लिए रवाना हुए थे। उस समय यह आशंका थी कि जमनालालजी पर रियासत इस किस्म की रोक लगा सकती है। गांधीजी ने यह सलाह दी थी कि यदि निषेधाज्ञा जारी की जाय तो उसकी तुरन्त अवहेलना न की जाए और रियासत के अधिकारियों को उस पर पुनर्विचार करने का मौका दिया जाए। जमनालालजी पर यह निषेधाज्ञा सवाई माधोपुर में, जहां जयपुर की रेलवे लाइन शुरू होती थी, तामील की गई। जमनालालजी वहीं से दिल्ली लौट गये और वहां से प्रजामण्डल के कुछ साथियों के साथ बारडोली पहुंचे, जहां गांधीजी ठहरे हुए थे।

बारडोली पहुंचने पर जमनालालजी ने ७ जनवरी, १९३९ को जयपुर कौंसिल के प्रेसीडेन्ट के नाम संदेश भेजा, जिसमें निषेधाज्ञा को अनुचित बताते हुए उस पर फिर से विचार करने और मण्डल पर लगे प्रतिबन्धों को हटाने का अनुरोध किया गया। इस पत्र का मस्विदा गांधीजी ने खुद तैयार किया था। वह महत्वपूर्ण पत्र पूरा का पूरा इस प्रकार है :—

"गत २९ दिसम्बर को, जब कि मैं जयपुर जा रहा था, सवाई माधोपुर स्टेशन पर २६ दिसम्बर का एक हुक्म मुझ पर तामील किया गया जिसके अनुसार मुझे जयपुर राज्य में प्रवेश करने की मुमानियत की गई थी।

"उस हुक्म से मुझे दुःख के साथ आश्चर्य हुआ। स्टेशन पर पुलिस के इन्सपेक्टर जनरल मि० एफ० एस० यंग से मेरी कोई एक घण्टे से अधिक बातचीत हुई, जिसमें उन्होंने मुझसे हुक्म न तोड़ने का आग्रह किया। मुझे अधिक आग्रह की जरूरत नहीं थी, क्योंकि ऐसे हुक्म के तामील किये जाने की संभावना होने के कारण मैंने पहले ही जब गांधीजी से इस विषय में चर्चा की तो उन्होंने मुझे यही सलाह दी थी कि मैं उस आज्ञा को तुरन्त भंग न करूं, बल्कि कोई आखिरी कदम उठाने के पहले उनके साथ फिर सारी स्थिति पर विचार करूं।

"उसके अनुसार मैंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और मैं दिल्ली को रवाना हो गया। मित्रों, साथियों और अन्त में गांधीजी के साथ सलाह के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूं कि मुझे आगामी १ फरवरी को उस हुक्म को तोड़ देना चाहिए, अगर उससे पहले यह बिना किसी शर्त के रद्द न कर दिया जाय।

"अधिकारी इस बात को जानते थे कि गत १ नवम्बर को प्रजामण्डल की तरफ से, जिसका कि मैं सभापति हूँ, मैंने एक सार्वजनिक अपील प्रकाशित की थी कि शेखावाटी और दूसरे इलाकों में अकाल फैल गया है इसलिए मण्डल अपने दूसरे सब कार्य स्थगित करके अकाल सेवा का काम करेगा। वे यह भी जानते थे कि किसी अखबार में यह प्रकाशित होने पर कि जयपुर में सत्याग्रह शुरू किया जाने वाला है, मैंने उसका स्पष्ट खण्डन प्रकाशित कर दिया था।

"मैं नहीं जानता कि १६ दिसम्बर को या उससे पहले ऐसी क्या बात हो गई थी, जिससे कि मेरे जयपुर में प्रवेश करने की बारणा पर ऐसा हुक्म पास करने की जरूरत महसूस हुई। मैं यह भी देखता हूँ कि उसी तारीख को रियासत गजट में इस आशय की विज्ञप्ति प्रकाशित की गई, कि 'राज्य के लोगों को राज्य के पावने (लगान आदि) अदा न करने के लिए गैर-कानूनी तौर पर भड़काया जा रहा है, इसलिए उसे रोकने की आवश्यकता आ पड़ी है।'

"क्योंकि उपरोक्त आज्ञा उसी दिन दी गई है जिस दिन मेरे खिलाफ पाबन्दी की आज्ञा जारी की गई, इससे मैं यह अनुमान लगाता हूँ कि सरकार को यह डर है कि मेरा गैर-कानूनी रूप से लगान आदि न देने के लिए भड़-काने की कार्यवाहियों से सम्बन्ध है। अगर अधिकारियों को यह डर था कि मैं लगानबन्दी अथवा ऐसे ही आन्दोलनों का नेतृत्व करूंगा तो उन्हें कम से कम मुझसे तो यह पूछ लेना चाहिए था। मेरे बारे में जितना वे जानते हैं उससे वे यह निश्चय रूप से जान सकते हैं कि मैं उनसे सच्ची बात छिपाऊंगा नहीं।

"सीकर के मामले में मैंने जो सहायता अधिकारियों की की है उसे वे भलीभांति जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि मैंने इस अवसर पर बिल्कुल शान्ति से काम लिया।

"अतः उस समय मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जबकि मैंने यह आज्ञा देखी कि तुम्हारे जयपुर जाने और वहां के कामों में शांति भंग होने की संभावना है, अतः शान्ति स्थापित रखने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि तुमको जयपुर न

आने दिया जाए। इस आज्ञा से मालूम होता है कि अधिकारियों ने मुझे समझा ही नहीं।

"मुझे वर्धा का आदमी कहा गया है। मैं समझता हूँ कि वह कोई भूल है। जयपुर राज्य के लिए तो मैं वास्तव में जयपुरी हूं। वर्धा या अन्य स्थानों में मेरे हित हैं इससे मैं बाहरी आदमी नहीं हो सकता। इससे तो मेरे और मेरे साथियों के लिए कठिन समस्या पैदा हो गई है।

"प्रजामण्डल की स्थापना जुलाई सन् १९३१ में हुई थी। सन् १९३६ में इसका पुनर्गठन किया गया। उसका अपना एक विधान है और जयपुर के बहुत से सम्भ्रान्त व्यक्ति उसके सदस्य हैं। अभी तक जयपुर प्रजामण्डल का कार्य पूर्ण रूप से वैध और कानून के अन्दर रहा है और उसने सभाओं तथा जुलूसों की अनुदार पाबन्दियां भी बरदाश्त की हैं। किन्तु मेरे ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है उसने प्रजामण्डल की आंखे खोल दी हैं। अगर उसे सभायें करने, जुलूस निकालने और संगठन बनाने की खुली छूट न मिली तो उसने सत्याग्रह करने का निश्चय कर लिया है।

"मैं मण्डल का उद्देश्य भी बता देना चाहता हूँ। उसका उद्देश्य महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन कायम करना है। अतः हमें जनता को बतलाना है कि यह क्या है और उसको प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए। हम इसके लिए सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन तो करना नहीं चाहते, परन्तु हमें प्रजा की शिकायतों को दूर करना है। इसके लिए मण्डल शिक्षा संबंधी और ठोस काम करना चाहता था। उसका उस समय लगानबन्दी आन्दोलन करने का कोई निश्चय नहीं था। यदि हमारे इन रचनात्मक और शांतिमय कामों और हमारी शिकायतों को दूर करने में हमें राज्य का सहयोग मिल जाए तो लगानबन्दी आन्दोलन की कभी आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु यदि उसकी आवश्यकता पड़े ही तो मण्डल अधिकारियों को इसकी पहले से ही सूचना दे देगा क्योंकि मण्डल तो उचित और अहिंसात्मक उपायों का अवलम्बन करना चाहता है। मैं भी मंडल के शान्तिपूर्ण और वैध कामों के लिए पूरी स्वतन्त्रता की ही वकालत कर रहा हूं। यदि इस मास की ३१ तारीख तक मेरी यह प्रार्थना स्वीकृत न हुई तो मुझे इस प्रतिबन्धक आज्ञा को तोड़ना पड़ेगा और मैं इसे तोड़कर जयपुर में प्रवेश करूंगा और उस समय मण्डल भी अपनी स्थिति को सम्मान के साथ कायम रखने के लिए आवश्यक कार्यवाही करने के लिए स्वतन्त्र होगा।

"मैं समझता हूँ कि इससे कुछ भी कम करना अपने नागरिक अधिकारों की आत्म हत्या करना होगी। अतः मैं आशा करता हूँ कि कौंसिल मेरी और प्रजामण्डल के सदस्यों की राजनीति पर जरूरत से ज्यादा दवाव न डालेगी।"

उसी दिन वारडोली में जमनालालजी ने अखवारों को एक वक्तव्य दिया। इस वक्तव्य का मस्विदा भी गांधीजी ने ही वनाया था। जमनालाल जी ने उसमें कहा था :—

"कई तरह की अफवाहें फैल रही है कि मेरे जयपुर राज्य में प्रवेश पर लगे प्रतिवन्ध के सम्वन्ध में मैं क्या करने वाला हूँ। जयपुर राज्य मेरी जन्म भूमि और मेरा पैतृक घर है। इस प्रतिवन्ध से मुझे भी उतना ही आश्चर्य है जितना कि मेरे मित्रों को। मेरा सारा जीवन ही इस प्रयास में व्यतीत हुआ है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शान्ति स्थापित हो। एक कांग्रेसजन के लिए अहिंसा का कुछ भी अर्थ क्यों न हो, मेरे लिए तो यह एक धर्म है, और मुझ से जितना वन पड़ता है, उसका पालन करने का प्रयत्न करता हूं। देशी रियासतों का मैं शत्रु नहीं हूं। मैंने उनके प्रति हमेंशा मित्रतापूर्ण रुख रखा है। मेरा सदा से विश्वास रहा है कि ये रियासतें भारत में हुए नव जागरण के अनुरूप अपने आपको ढाल सकती हैं। जयपुर अधिकारियों के साथ हो रहे पत्र-व्यवहार में मेरी दृष्टि यह जानने की है कि मेरे जयपुर प्रवेश पर लगे प्रतिवन्ध के पीछे क्या रहस्य है। उस आदेश में जो भाषा लिखी गई है वह किसी तरह भी मुझ पर लागू नहीं होती। मैं जल्दी में कोई कदम नहीं उठाना चाहता। मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं हैं कि जयपुर रियासत के अधिकारियों को परेशानी में डाला जाए। किन्तु यदि इस प्रतिवन्ध को हटाने के सभी सम्मान-जनक प्रयास असफल हो जाते हैं तो जनता यह भरोसा रखे कि मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करूंगा।

"मेरा तात्कालिक उद्देश्य यह है कि जयपुर रियासत के अकाल पीड़ितों को प्रजामण्डल की मारफत सहायता पहुंचाई जाए। मुझे आशा है इस प्रतिवंध का संभावित दान-दाताओं पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ेगा। मैं प्रत्येक स्थिति का सामना करने की तैयारी कर रहा हूँ। दरअसल, जयपुर जाने का मेरा मुख्य उद्देश्य अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए उपाय करना था।

"मेरा दूसरा तात्कालिक काम है सीकर की हाल की घटना के दौरान कैद किये गये नौ व्यक्तियों को रिहा कराना। उसमें से एक को सजा हो चुकी है और शेष पर मुकदमें चलने वाकी हैं। मेरे पास यह आशा करने के काफी

कारण थे कि उन्हें भी आम माफी में शामिल कर लिया जाएगा। मैं केवल यही विश्वास दिला सकता हूं, जब तक मैं स्वतन्त्र हूं, उनको रिहा कराने का कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोड़ूंगा।"

जयपुर के अधिकारियों ने जमनालालजी के पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया। लगभग एक महीने का समय बीत गया। कोई अनुकूल दृष्टिकोण अपनाने के बजाय अधिकारियों ने प्रजामण्डल को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। इसके फलस्वरूप जमनालालजी के पास इसके सिवा कोई विकल्प नहीं रह गया कि वे उन पर लगी निषेधाज्ञा का उल्लंघन करें। जमनालालजी ने प्रजामण्डल के संविधान को स्थगित कर दिया और जयपुर के स्वतन्त्रता प्रिय नागरिकों को अनुमति दे दी कि उनकी गिरफ्तारी के बाद महाराजा की अधीनता में जनता की सरकार कायम करने और भाषण, लेखन तथा संगठन आदि की नागरिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर दें। जयपुर सरकार ने १८ जनवरी १९३९ को सरकारी गजट में इस आशय की विज्ञप्ति प्रकाशित की कि राज्य में कोई भी संगठन यदि शासन द्वारा रजिस्टर हुए बगैर कार्य करेगा तो कठोर दण्ड का भागी होगा। जमनालाल जी ने कहा कि यह विज्ञप्ति उन सभी संगठनों को खत्म करने के लिए काफी है जिनका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो मानवीय और रचनात्मक प्रवृत्तियों में संलग्न हैं और ऐसी विज्ञप्ति को कोई भी स्वाभिमानी जयपुरी जारी नहीं रहने दे सकता। जमनालालजी ने अपील की कि जनता सत्य और अहिंसा के आधार पर अपना आन्दोलन चलाये और कोई कितना ही क्यों न भड़काये, लोग इन आधारभूत सिद्धांतों को कभी न भूलें। जमनालालजी ने जयपुर के अंग्रेज प्रधानमंत्री को सारी खराबी की जड़ बताया और कहा कि वह महाराजा को गलत सलाह दे रहे हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि प्रजामण्डल के सत्याग्रह का उद्देश्य लिखने, बोलने और सभा संगठन बनाने की नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त करना होगा। जमनालालजी ने उनकी अनुपस्थिति में काम करने के लिए पांच सदस्यों की एक समिति बना दी और यह निर्देश दिया कि यह समिति सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे में जब भी आवश्यक हो गांधीजी की राय ले और उसके अनुसार चले।

जमनालाल जी ने अपने घोषित निश्चय के अनुसार निषेधाज्ञा को तोड़ कर जयपुर-रियासत में दाखिल होने के लिए ४ फरवरी १९३९ को आगरा से प्रस्थान किया। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि जयपुर के अधिकारी उन्हें जयपुर से बाहर निकालने की कोशिश करेंगे तो उन्हें पशुबल का उप-

योग करना पड़ेगा। वावरी-ठीकरिया पर जयपुर के पुलिस अधिकारी ने जमना-लालजी को विशेष रेलगाड़ी पर सवार कराया और जयपुर स्टेशन पर लाये। वहां से उन्हें कार में विठाकर छप्परवाड़ा रेस्ट हाउस ले गये। यह स्थान जयपुर से लगभग ५० मील दूर था। रात को डेढ़ वजे जयपुर के इन्सपेक्टर जनरल मि० यंग वहां पहुंचे और उन्हें उसी समय वापस जयपुर लाना चाहा। जमना लालजी ने इन्कार किया तो उन्हें जवर्दस्ती उठाकर कार में लाया गया। वल प्रयोग के फलस्वरूप जमनालालजी की वांह और दायीं आंख के नीचे चोट लगी। जमनालालजी का आग्रह था कि उन्हें गिरफ्तार करके मुकदमा चलाया जाय और जयपुर में ही किसी जगह रखा जाए। किन्तु अधिकारियों ने उन्हें वताया उनके पास उन्हें भरतपुर रियासत में ले जाकर छोड़ देने का आदेश है। शाम तक उन्हें लालसोट के निकट भरौती नामक स्थान पर रखा गया। फिर उन्हें जवर्दस्ती कार में विठकार रात भर की सफर के वाद भरतपुर की हद में कार से उतार दिया। उतारते समय भी जवर्दस्ती की गई। उससे जमनालालजी के दायें हाथ की मझली अगुंली में काफी चोट आई और खून वहने लगा। उनके कपड़े फट गये और खून से सन गये। अन्त में जमनालाल जी पैदल चलकर समीप के स्टेशन पर पहुंचे और आगरा चले गये। उस तरह जयपुर के अधिकारियों ने गिरफ्तारी और निर्वासन का नाटक खेला और देश के एक सम्मानित नेता के साथ जवर्दस्ती करने में भी उन्हें संकोच नहीं हुआ।

किन्तु जमनालालजी गिरफ्तार होने लिए खुले हुए थे। उन्होंने १२ फरवरी १९३९ को फिर जयपुर रियासत की हद में प्रवेश किया। गांधीजी ने उन्हें विना नोटिस दिये प्रवेश करने की अनुमति दे दी थी। घनश्यामदासजी विड़ला चाहते थे कि दुवारा प्रवेश करने में जल्दी न की जावे। किन्तु जमना लालजी रुकना नहीं चाहते थे। वैराठ नगर के पास जमनालालजी को गिरफ्तार कर लिया गया और इस वार मोरांसागर के डाकवंगले में नजरवन्द कर दिया। यह एक निर्जन स्थान था और आस पास हिंसक पशु विचरण करते थे। सांप भी निकलते थे। करीव ६ महिने जमनालाल जी नजरवन्द रहे। उनके घुटनों में दर्द था और स्वास्थ्य खराव रहने लगा था। डाक्टरों की सलाह थी कि उन्हें यूरोप जाकर इलाज कराना चाहिए। किन्तु जमनालाल जी एक सच्चे गांधीवादी की भांति अपने लिए ऐसी कोई सुविधा नहीं चाहते थे जो दूसरों को न मिलती हो। आखिर रियासत ने उन्हें विना किसी शर्त के रिहा कर दिया और उन्हें जयपुर में रहने की स्वतंत्रता दे दी।

प्रजामण्डल का सविनय अवज्ञा आन्दोलन काफी दिन चला । करीब पांच सौ सत्याग्रही गिरफ्तार हुए होंगे, किन्तु आगे चलकर गांधीजी के आदेश पर सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया । गांधीजी ने सत्याग्रह के दिनों में जयपुर निवासियों के नाम एक संदेश भेजा था यह संदेश उन्होंने १४–३–३९ को ट्रेन में लिखा था । संदेश इस प्रकार था :—

> सुनता हूं कि जयपुर निवासियों ने सत्याग्रह में शान्ति का पालन किया है । सब याद रखें कि जो व्यक्ति या समुदाय अपने कार्य के लिए सत्य और अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करते हैं, उनकी सदा विजय होती है ।
>
> —मो० क० गांधी

अब तक रियासत के अंग्रेज प्रधानमंत्री सर बीचम जा चुके थे और राजा ज्ञाननाथ दीवान बन कर आये । उनके साथ जमनालालजी ने समझौते की चर्चा चलाई । यह चर्चा काफी लम्बे समय तक चली और अन्त में आदान-प्रदान की भावना से एक समझौता हो गया । राज्य ने सभाओं और जलूसों पर प्रतिबन्ध लगाने वाले कानून को रद्द कर दिया । अखबारों पर से भी प्रतिबंध हटा लिया गया । प्रजामण्डल का आग्रह था कि संस्था अधिनियम को रद्द कर दिया जाय, किन्तु समझौते के तौर पर प्रजामण्डल ने रजिस्ट्री कराने का आवेदन पत्र दिया और राज्य ने उसे मान्यता प्रदान कर दी । महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन की स्थापना उसका अन्तिम लक्ष्य स्वीकार कर लिया गया और उसका यह अधिकार मान लिया गया कि वह इसके लिए लोगों को प्रशिक्षित करने, उनकी आंकाक्षाओं और आवश्यकताओं को खुले तौर पर प्रकाश में लाने तथा वैधानिक रीति द्वारा लोगों की शिकायतें सरकार तक पहुंचाने का काम कर सकता है । राज्य ने आग्रह नहीं किया किसी बाहरी राजनीतिक संस्था का पदाधिकारी प्रजामण्डल का अधिकारी न हो । यह भी मान लिया गया कि जयपुर के जो लोग बाहर रहते हैं, वे प्रजामण्डल के सदस्य बन सकेंगे । गांधीजी ने इस समझौते पर जमनालालजी को बधाई का तार भेजा । इस समझौते के फलस्वरूप प्रजामण्डल और राज्य के बीच सहयोग का वातावरण बना । गांधीजी ने प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओं को परामर्श दिया कि वे अपने भाषणों में संयम से काम लें । प्रजामण्डल का दूसरा वार्षिक अधिवेशन मई १९४० में जमनालालजी अध्यक्षता में ही हुआ । उन्होंने उत्तर-दायी शासन की स्थापना पर पुन जोर दिया और राज्य सरकार से सहयोग की अपील की । इस प्रकार प्रजामण्डल एक अहिंसक संघर्ष के बाद नागरिक स्वतंत्रता के अपने तात्कालिक उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हुआ ।

(२)

बीचम-गांधी पत्र-व्यवहार

ब्रिटिश सरकार का राजनीतिक विभाग राजाओं को अंग्रेज दीवान स्वीकार करने के लिए बाध्य करता था। ये दीवान अक्सर प्रतिक्रियावादी होते थे और रियासतों में राजनीतिक जागृति के घोर शत्रु। भारत में अंग्रेजी राज के हितों का पूरा-पूरा ख्याल रखते थे। जयपुर रियासत को ऐसे ही एक अंग्रेज दीवान से पाला पड़ा था, जिनके समय में जयपुर प्रजामण्डल को नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए सत्याग्रह करना पड़ा था और जमनालाल जी के प्रवेश पर रोक लगा दी गई थी। उनका नाम था सर बीचम सेन्ट जान। उन्होंने अहिंसा के मुकाबले मशीनगन से काम लेने की धमकी दी थी और गांधीजी को इस बारे में उनसे पत्र-व्यवहार करना पड़ा था। गांधीजी किसी विवरण को प्रकाशित करने से पहले सम्बन्धित व्यक्ति से पूछताछ करने की सावधानी बरतते थे। वे जानबूझकर किसी विरोधी को बदनाम करना पसन्द नहीं करते थे। सत्य के प्रति उन्हें जो अगाध निष्ठा थी, उसकी रक्षा के लिए वह कितने जागरूक रहते थे, यह बीचम-गांधी पत्र-व्यवहार से जो सन् १९३९ में हुआ था, भली प्रकार प्रकट होता है।

बात यों थी कि सीकर रावराजा और जयपुर रियासत के बीच एक गम्भीर विवाद उठ खड़ा हुआ था। विवाद रावराजा के अधिकारों के सम्बन्ध में था। उसके फलस्वरूप रावराजा के समर्थकों और रियासत की फौज तथा पुलिस के बीच सशस्त्र संघर्ष की नौबत पहुंच गई थी। रावराजा ने राजकोट के बैरिस्टर श्री पी० एल० चूडगर को अपना कानूनी सलाहकार नियुक्त किया था। वह जयपुर के प्रधान मन्त्री से मिलने गये थे और उन्होंने इस मुलाकात का विवरण बम्बई से सेठ जमनालाल को लिख भेजा था। उन्होंने लिखा था:—

"मैं आपको यह सूचित करना अपना कर्तव्य समझता हूं कि जयपुर रियासत के प्रधान मन्त्री सर वीचम सेण्ट जान से मैं सीकर में ६ तारीख को करीब ११ वजे उनके वंगले नाटानियों के वाग में मिला था। उस समय जयपुर की स्थिति के वारे में मेरी उनसे कुछ चर्चा हुई थी। उस चर्चा का सार इस प्रकार है—

"मैंने सर वीचम से कहा कि आपके जयपुर रियासत में दाखिल होने पर जो प्रतिवन्ध लगाया है, उससे सारे देश में लाखों व्यक्तियों को दुःख मिश्रित आश्चर्य हुआ है, विशेषकर इसलिए कि आप शांन्ति–प्रिय व्यक्ति समझे जाते हैं और आपकी जयपुर यात्रा का मकसद रियासत के अकालग्रस्त क्षेत्रों में राहत कार्यों की देखभाल और संचालन करना था।

"इसके जवाव में सर वीचम ने कहा कि मैं मानता हूं, आप शान्ति-प्रिय व्यक्ति हैं, किन्तु आप और आपके आदमी अकालग्रस्त क्षेत्र के लोगों से सम्पर्क में आयेंगे और इस वात को वह जाहिर राजनीतिक कारणों से पसन्द नहीं करते।

"मैंने उनसे कहा कि आप इस आज्ञा का अनिश्चितकाल तक पालन नहीं कर सकते और रियासत और उसकी प्रजा के यह हित में होगा कि वह आज्ञा वापस ले ली जाय और अनावश्यक गड़वड़ी को टाला जा सके, विशेपकर उस अखवारी वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए जो आपने वह आदेश तामील होने के वाद दिया था।

"वह (सर वीचम) अपनी वात पर अड़े रहे और वोले कि अगर आपने निषेधाज्ञा की अवहेलना की तो वह उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थिति का मुकावला करने को तैयार हैं। उन्होंने कहा कि कांग्रेसी अहिंसक संग्राम के जरिये क्रांति करने पर तुले हुए हैं। किन्तु उन्होंने कहा कि अहिंसा, हिंसा जितनी या उससे अधिक शक्तिशाली ताकत है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय अंग्रेज जाति की मानवीय वृत्ति का अनुचित लाभ उठा रहे हैं। अगर भारत में अंग्रेजों की जगह जापान या हिटलर होता तो भारतीयों की अहिंसा इतनी सफल नहीं होती।

"उन्होंने आगे कहा कि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि अहिंसा चाहे जितनी मर्यादित हो, उसका हिंसा से मुकावला करना होगा और अगर जयपुर में अहिंसक आंदोलन हुआ तो उसका जवाव होगा, मशीनगन ?

"मैंने उनसे कहा कि सब अंग्रेजों के आप जैसे विचार नहीं हैं और अंग्रेज जाति भी इस बारे में उनसे सहमत नहीं होगी ।

"सर बीचम ने कहा कि भले ही ऐसा हो या न हो, किन्तु उनकी व्यक्तिगत राय यह है कि अहिंसा और हिंसा में कोई अन्तर नहीं है और अहिंसा के खिलाफ हिंसा का इस्तेमाल करना कतई गलत नहीं होगा ।

"अगर आप या महात्माजी इस वक्तव्य का कोई उपयोग करना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।"

जमनालालजी ने श्री चूडगर का यह पत्र गांधीजी को दिया । इस पर गांधीजी ने बारडोली से १८–१–३९ को सर बीचम को यह पत्र भेजा :—

प्रिय मित्र,

मैंने शुरू में सोचा कि सेठ जमनालालजी पर जयपुर रियासत में दाखिल होने पर जो रोक लगाई गई है, उसके बारे में आपके विचारों के बारे में प्राप्त इस विवरण को प्रकाशित कर दूं, किन्तु दुबारा सोचने पर मैंने अनुभव किया कि अगर श्री चूडगर के पत्र की प्रति आपको भेज दूं और उसके बारे में आपकी राय मालूम करलूं तो मेरा मकसद ज्यादा अच्छी तरह सिद्ध हो सकेगा । मेरा मकसद यह है कि जहां कहीं सम्भव हो मित्रतापूर्ण चर्चा द्वारा राजाओं और उनकी प्रजा में और अंग्रेज अधिकारियों और न्याय प्राप्त करने के लिए उनके सम्पर्क में आने वाले लोगों में मेल पैदा करूं । और अब जब मैंने आपको लिखने की जरूरत महसूस की है, श्री चुडगर के पत्र के बारे में आपकी कोई भी राय हो, मैं आपको यह सुझाव दूंगा कि सेठ जमनालालजी और उनकी संस्था पर लगाई गई रोक को जयपुर रियासत की शांति भंग न होने देते हुए हटा लिया जाय । सचमुच मैंने यह महसूस किया है कि इन रोकों से निश्चय ही शांति को खतरा है ।

आपका सच्चा
मो० क० गांधी

सर बीचम ने जयपुर से २०–१–३९ को गांधीजी के पत्र का यह उत्तर दिया :—

प्रिय मि० गांधी,

आपका १८ तारीख का कृपा पत्र मिला, जिसके साथ आपने श्री चूडगर के सेठ जमनालालजी बजाज के नाम पत्र की प्रति भेजी है । उनको

प्रकाशित करने से पहिले आपने उसके विवरण की जांच करना जरूरी समझा, यह आपकी वुद्धिमानी का कदम था। मैं व्यक्तिशः उसकी सराहना करता हूँ। मैं आपको यह सूचित कर सकता हूँ कि उसमें मेरे जो विचार प्रकट किये गये हैं वे सर्वथा गलत हैं। मैं यह नहीं समझ सकता कि श्री चूडगर ने मेरे विचारों को इतना गलत कैसे समझा और मैं यह कह सकता हूँ इस घटना ने भविष्य में इस प्रकार की मुलाकातें देने के बारे में मेरे में संकोच को बढ़ाया है।

अब आपको तथ्यों का पता चल गया है तो मैं यकीन करता हूँ कि इस प्रकार के पत्र को प्रकाशित करने में आपको संकोच की पुष्टि होगी। किन्तु अगर आप अन्यथा निश्चय करें तो आप यथासम्भव शीघ्र मुझे उसकी सूचना देंगे, ताकि मैं मुनासिब कार्यवाही कर सकूं।

आपने जो सतर्कता दिखाई उसके लिए पुनः धन्यवाद।

आपका सच्चा
डब्लू० बीचम सेण्ट जान

गांधीजी ने बारडोली से २२-१-३९ को पुनः सर बीचम को यह पत्र लिखा :—

प्रिय मित्र,

मैं आपको मेरे १८ तारीख के पत्र का तुरन्त उत्तर देने के लिए धन्यवाद देता हूँ।

मैंने आशा की थी कि अगर आप श्री चूडगर के विवरण का खण्डन करेंगे तो आप उस भेंट का अपना विवरण भेजेंगे। यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि मैं उसे समाप्त नहीं कर सकता। अगर आप चाहेंगे तो श्री चूडगर के विवरण के साथ आपका विवरण भी प्रकाशित कर दूंगा।

आपका सच्चा
मो० क० गांधी

सर बीचम ने गांधी जी को २५ जनवरी १९३९ को पुनः यह पत्र लिखा:—

प्रिय मि० गांधी,

आपके २२ तारीख के पत्र के लिए अनेक धन्यवाद।

मुझे यकीन है मेरे स्वाभाविक संकोच के प्रति आपकी सहानुभूति होगी कि जो मुलाकात निजी व्यक्तिगत थी, उसका रिकार्ड प्रस्तुत करूं जबकि दूसरे पक्ष ने उसका गलत विवरण प्रकाशित करने की धमकी दी है। मुझे यकीन है, आप सहमत होंगे कि इस तरीके से वितण्डावाद पैदा होगा और जहां तक मैं सोचता हूं कोई उपयोगी मतलब हासिल नहीं होगा।

किन्तु यदि आप श्री चूडगर के गलत विवरण को प्रकाशित करना उचित समझें तो मुझे उसकी उचित चेतावनी देंगे ताकि जैसा मैं कह चुका हूँ, मैं मुनासिब कार्यवाही कर सकूं।

आपका सच्चा
डब्लू० बीचम सेण्ट जान

गांधीजी ने २७-१-३६ को बारडोली से सर बीचम को यह पत्र लिखा:—

प्रिय मित्र,

आपके २५ तारीख के पत्र के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

मुझे भय है मैं आपके संकोच के प्रति सहानुभूति नहीं दिखा सकता। श्री चूडगर ने जो विवरण भेजा है, वह इतना मूल्यवान है कि उसे प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकता। मुझे चिन्ता इस बात की थी कि मैं ऐसा विवरण प्रकाशित न करूं जिसकी सत्यता को चुनौती दी जा सके।

मैं श्री चूडगर से पत्र-व्यवहार कर रहा हूं और जमनालालजी को जो विवरण दिया है यदि उस पर वह अब भी कायम होंगे तो मैं जयपुर की जनता के हित में उसे प्रकाशित करने के लिए विवश हो जाऊंगा।

अगर श्री चूड़गर का विवरण प्रकाशित हुआ तो आप मुनासिब कार्यवाही करेंगे उसका मतलब मैं समझ नहीं पाया हूं।

आपका सच्चा
मो० क० गांधी

गांधीजी और सर बीचम के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसकी प्रतिलिपियां श्री चूडगर को बताने पर उन्होंने जमनालालजी को २८-१-३६ को यह पत्र लिखा:—

"मैंने महात्माजी और सर डवल्यू० वीचम के वीच हुए पत्र-व्यवहार को पढ़ा, जिसकी समाप्ति सर वीचम के नाम महात्माजी के २७ तारीख के पत्र के साथ हुई हैं। मैंने आपके नाम १५ तारीख का पत्र एक वार फिर सावधानी के साथ पढ़ा है और मैंने उस पत्र में जो कुछ लिखा है वह मेरी और सर वीचम की वातचीत का खासा सही चित्रण है।"

श्री चूडगर का यह पत्र मिलते ही गांधीजी ने सर वीचम के साथ हुआ पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया और उस पर अपनी टिप्पणी करते हुए लिखा:—

"जयपुर के प्रधान मन्त्री के पत्र विस्मय में डाल देते हैं। मैंने मांगी उनसे रोटी और उन्होंने दिया मुझे पत्थर। अव अगर वे अपना वयान देने में असमर्थ हों और इस स्थिति में चूडगर के वयान को सच्चा मानलूं, तो सर वीचम मुझे क्षमा करेंगे। उनका महज इन्कार करना, साथ ही धमकी देना, इसमें कोई वजन नहीं।

"कांग्रेस ताकत होते हुए भी इन्तजार करती रहे और चुपचाप देखा करे और जयपुर की प्रजा को मानसिक तथा नैतिक भूख से मरने दे खासकर जव कि एक प्राकृतिक अधिकार पर लगाई हुई ऐसी पावन्दी के पीछे ब्रिटिश साम्राज्य का पंजा हो—कांग्रेस के लिए सम्भव नहीं। जयपुर का प्रधानमन्त्री अगर वगैर सत्ता के यह सव कर रहा हो तो कम से कम उसके पद पर से उसे हटा ही लेना चाहिए।" ❀

कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्त में सर वीचम को जयपुर का प्रधानमन्त्रित्व छोड़कर जयपुर से विदा लेनी पड़ी।

❀ यह सारा पत्र व्यवहार अंग्रेजी में हुआ था। यहां उसका अनुवाद दिया गया है।

(३)

गांधीजी के लेख और टिप्पणियां

गांधीजी ने जयपुर प्रजामण्डल के आंदोलन के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा वह ऐतिहासिक महत्व रखता है। उनके लेखों और टिप्पणियों को हम सिलसिलेवार 'हरिजन सेवक' से यहां उद्धृत करते हैं।

जमनालाल जी पर प्रतिबन्ध

(हरिजन सेवक, २१-१-३६)

'जमनालाल जी पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया वह बड़ा अजीब है। उन्हें मिला हुआ हुक्म इस प्रकार है—

'वर्धा (मध्य प्रान्त) के सेठ जमनालाल बजाज

चूंकि जयपुर सरकार को यह मालूम हुआ है कि जयपुर राज्य में तुम्हारी मौजूदगी और हलचल से अमन में खलल पड़ने की सम्भावना है। लिहाजा सार्वजनिक हित और सार्वजनिक शान्ति बनाए रखने के लिहाज से जयपुर राज्य के अन्दर तुम्हारे प्रवेश की मनाई करना आवश्यक मालूम पड़ता है।

इसलिए तुम्हें चाहिए कि जब तक कोई और हुक्म न हो, तुम जयपुर रियासत के अन्दर न आओ।'

दरअसल तो जमनालाल जी ऐसे आदमी हैं कि जिनकी उपस्थिति से कहीं कोई खतरा कम से कम होने की सम्भावना है। लोग तो शांति कराने वाले के रूप में उन्हें जानते रहे हैं। सरकारी अधिकारियों के साथ उनके सम्बन्ध बहुत ही सुखद रहे हैं। उनके इन गुणों की कद्र भी उतनी हुई है कि सन् १९१६ या उसके आस पास उन्हें राय बहादुर का खिताब दिया गया

था जिसे असहयोग के दिनों उन्होंने छोड़ा है। व्यापारी दुनिया में वे एक बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं लौर बहुत बड़े व्यापारी होने के अलावा वह बैंकर भी हैं। यों तो वे बड़े उत्साही कांग्रेसवादी हैं मगर आन्दोलन के रूप में वह कभी मशहूर नहीं हुए। हां रचनात्मक कार्यक्रम और समाज सुधार में वह सबसे आगे हैं। यह जरूर सच है कि अपनी अन्तरात्मा के अनुसार चलने का उनमें साहस है और उसके लिए कई बार वह सर्वस्व की बाजी लगा चुके हैं। जेल से वह कभी नहीं डरते। जमनालालजी पर तामील किये हुए हुक्म में जो कुछ कहा गया है स्पष्टतः वह बिल्कुल गलत है और उन पर लागू नहीं होता। शायद यह कहा जाय कि हुक्म की शब्दावली तो खाली जाब्ते के लिए है क्योंकि बिना उसके कानून उन पर ऐसा हुक्म तामील नहीं किया जा सकता। अगर ऐसा हो तो उससे निश्चित रूप से यही साबित होता है कि जमनालालजी जैसे लोगों पर लागू करने की मंशा से यह कानून हरगिज नहीं बना था। जमनालालजी जैसे व्यक्तियों को जयपुर या देश के किसी अन्य भाग में न आने देने के लिए उसका प्रयोग करना तो कानून का शुद्ध और स्पष्ट दुरुपयोग मात्र है।

. . . .

और इससे भी मजेदार अंश वह है जिसमें जमनालाल जी को वर्धा का बताया गया है। क्योंकि वे दरअसल तो जयपुर राज्य के ही हैं। वहीं उनकी जायदाद है तथा वहीं पर उनके सगे-सम्बन्धी हैं।

ऐसे हुक्म के आगे मेरी ही सलाह पर जमनालालजी ने पूरी तरह सिर झुकाया है। इस बात की बड़ी अफवाह थी कि अगर उन्होंने जयपुर में दाखिल होने की कोशिश की तो शायद उन्हें गिरफ्तार कर लिया जायगा। इसलिए इस बारे में उन्होंने मुझसे सलाह ली कि अगर इस तरह का हुक्म उन पर तामील हो तो वह उस समय क्या करें। जयपुर के उनके कार्यकर्त्ताओं का मत तो यह था कि ऐसा कोई हुक्म हो तो फौरन उसको भंग करें लेकिन मेरा मत इससे भिन्न था। अपनी राय पर पछताने की कोई वजह मुझे मालूम नहीं पड़ी। मैंने ऐसा अपने मन में सोचा, ऐसा हुक्म देना बड़े पागलपन का काम होगा और जो पागल हैं उसकी बात पर ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए। बल्कि उन्हें शान्त होने का मौका दिया जाय। मुझे मालूम हुआ है कि उनकी गिरफ्तारी के लिए बड़ी बड़ी तैयारियां भी की गई थीं। अतः जो लोग गिरफ्तार करने के लिए आये उन्हें जरूर एक तरह की निराशा हुई होगी।

जल्दबाजी न करने और अधिकारियों को यह समझाने की कोशिश करने में कि उन्होंने जल्दबाजी में गलत काम किया है, जमनालालजी का

कोई नुकसान नहीं हुआ। जयपुर की प्रजा तथा एक जिम्मेदार आदमी होने के कारण शायद यह उनका फर्ज ही था कि वे अधिकारियों को अपने निश्चय पर फिर से विचार करने का मौका दें। फिर भी वे ध्यान न दें और जमनालालजी इस हुक्म को भंग करने का निश्चय करें, जैसा उन्हें करना होगा, तो वह ऐसा और भी ज्यादा नैतिक शक्ति और प्रतिष्ठा के साथ करें। और अहिंसात्मक कार्य में तो नैतिक शक्ति की ही जरूरत भी है।

यह स्मरण रहे कि महाराजा तो अपने उन मंत्रियों के हाथों की कठपुतली-मात्र हैं जो सब बाहरी हैं बल्कि उनमें से तो कुछ अंग्रेज हैं। वहां की प्रजा या वहां के प्रदेश के बारे में वे कुछ नहीं जानते। वे तो एक तरह से उन पर जबरदस्ती लदे हुए हैं। जयपुर के पढ़े-लिखे घाटे में हैं। हालांकि बाहरी अधिकारियों से आने के पहले, किसी न किसी रूप में जयपुर राज्य का काम चल ही रहा था। पिछले सप्ताह मुझे उन दुखद बातों की चर्चा करनी पड़ी थी जो राजकोट में अंग्रेज दीवान ने अपने बहुत थोड़े कार्यकाल में ही कर डाली थीं। इसमें कोई शक नहीं कि जयपुर के महकमा खास का, जिसमें सब बाहरी आदमी भरे हुए हैं, यह कृत्य, कम से कम उनकी गैर जिम्मेदारी और अयोग्यता का दुखद प्रदर्शन है। एक आदमी का फिर वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, निर्वासन नगण्य सी बात मालूम पड़ेगी। लेकिन घटनाएं शायद यही सिद्ध करेंगी कि यह मामला कितना मूर्खतापूर्ण और मंहगा रहा है। क्योंकि पाठकों को शायद ही पता हो कि जयपुर में प्रजामण्डल भी है जो पिछले ६ साल से जमनालालजी की प्रेरणा से काम कर रहा है। इस समय जमनालालजी ही उसके अध्यक्ष हैं। मण्डल एक शक्तिशाली संस्था है जिसके सदस्य जिम्मेदार आदमी हैं। और उसने काफी रचनात्मक कार्य किया है। अगर यह प्रतिबन्ध न उठा तो मण्डल को भी अपना फर्ज अदा करना पड़ेगा। क्योंकि यह प्रतिबन्ध तो, ऐसा कहते हैं, मण्डल के रचनात्मक और वैध कार्यों को भी रोकने की पेशबन्दी है। अधिकारी लोग ऐसी संस्था के बढ़ते हुए प्रभाव को बर्दाश्त नहीं कर सकते जिसका उद्देश्य महाराजा की छत्रछाया के अन्दर जयपुर में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है, फिर उसके साधन कितने ही अच्छे क्यों न हों।

जमनालालजी पर लगाया गया यह एक अपशकुन है। ऐसा मालूम पड़ता है कि जिन संस्थाओं की किसी भी रूप में कोई राजनीतिक आकांक्षा हो उनकी हलचलों को रोकने के लिए अख्तियार की जाने वाली सम्मिलित नीति की यह पेशबन्दी है, और अफवाह तो यह भी है कि राजपूताने की

रियासतों द्वारा ग्रहण की जाने वाली यह एक संयुक्त नीति है। यह सिर्फ जयपुर के लिए ही सच हो तो अन्य रियासतों के लिए यह सब पर्याप्त अपशकुन है और जमनालालजी तथा जयपुर की जनता के लिए अपनी पूरी शक्ति के साथ इसका मुकावला करना आवश्यक है। यह जरूर है कि ऐसा किया जाय सत्य और अहिंसा के कांग्रेसी सिद्धांतों के अनुरूप ही।'

—मो० क० गांधी

जयपुर की स्थिति

(हरिजन सेवक, २१–१–३६)

मालुम होता है कि जयपुर के अधिकारी उस समय तक खुश न होंगे जब तक कि वे जयपुर के देशभक्तों के होशहवास अच्छी तरह दुरुस्त न कर देंगे। क्योंकि अब उन्होंने जयपुर राज्य प्रजामण्डल को, जिसके कि जमनालालजी प्रेसीडेंट हैं, गैर-कानूनी घोषित कर दिया है। जयपुर कौंसिल आफ स्टेट के प्रेसीडेंट के नाम लिखे अपने पत्र को जमनालालजी ने प्रकाशित कर दिया है। उम्मीद थी कि वह पत्र अधिकारियों को अपना पुराना हुक्म वापस लेने की प्रेरणा करेगा, मगर जयपुर कौंसिल (जिसके बारे में भूल से पिछले सप्ताह मैंने लिखा था कि उसमें सब बाहर के आदमी हैं, मगर अब मालूम हुआ है कि उसके चार सदस्य जयपुर राज्य के ही हैं) प्रकट रूप में इस बात के लिए उतारू दीखती है कि उन सब कार्यों का अस्तित्व मिटा दिया जाय, जिनसे जमनालालजी और उनके सहयोगियों का सम्बन्ध है, फिर वे चाहे सामाजिक हों अथवा मानव सेवा के अथवा ऐसे ही कोई और।

अधिकारियों का उन लोगों से, जिनको वे पसन्द नहीं करते, पेश आने का यह एक नया तरीका है। मैं केवल आशा के विरुद्ध आशा कर सकता हूँ कि जयपुर के अधिकारी अखिल भारतीय संकट को उत्पन्न करने में जल्दबाजी से काम न लेंगे क्योंकि इस बात के तीन कारण हैं जिससे जयपुर का सवाल वह महत्व धारण कर लेगा।

जमनालालजी खुद ही एक संस्था हैं। इसके अलावा वह कांग्रेस के खजांची और उसकी वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बर भी हैं। फिर जयपुर में जो तरीका अख्तियार किया जा रहा है वह इतना भीषण है कि पूरी शक्ति के साथ उसका मुकावला करना चाहिए। क्योंकि उसका मुकावला न किया गया तो रियासतों में होने वाली ऐसी हरएक हलचल का ही अन्त हो जायगा, जिसका प्रजा की वैध राजनीतिक आकांक्षाओं से जरा भी कोई सम्बन्ध हो।

जयपुर के बारे में विचित्र बात यह है कि वहां असली शासन महाराजा का नहीं, बल्कि एक ऊंचे अंग्रेज अधिकारी का है। क्या इसका मतलब यह नहीं है कि वे केन्द्रीय सत्ता के अनुसार चलते हैं ? अगर ऐसा न हो तो क्या कोई अंग्रेज दीवान ऐसी नीति पर चल सकता है जो खुद राज्य के लिए विनाशक हो ? मैं समझता हूं कि जयपुर का खजाना इतना भरापूरा है कि सर्वनाश के आधुनिक हथियारों का सहारा लेने के बावजूद प्रजा आत्म-समर्पण न करे और राज्य का लगातार बहिष्कार करती रहे, तो भी उससे हर हालत में राज्य का काम चलता रहेगा, लेकिन यह वक्त है कि राजा लोग और केन्द्रीय सरकार इस सम्बन्ध में अपनी कोई नीति बनालें। या जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, यह समझा जाय कि जयपुर ने जो तरीका अख्तियार किया है, वही उनकी समान नीति है। मैं तो केवल यही उम्मीद कर सकता हूं कि ऐसा नहीं है।

—मो० क० गांधी

राजकोट और जयपुर

(हरिजन सेवक, ४-२-३९)

जयपुर का मामला बहुत ही सीधा और राजकोट से भिन्न है। अगर मुझे मिली खबर सही है तो वहां के अंग्रेज प्रधान मन्त्री इस बात पर तुले हुए हैं कि उत्तरदायी शासन की भावना को लोगों में फैलाने का कोई भी आंदोलन न चलने दिया जावे। इसलिए जयपुर में सविनय अवज्ञा उत्तर-दायी शासन के लिए नहीं, बल्कि प्रजामण्डल और उसके अध्यक्ष सेठ श्री जमनालाल बजाज पर लगाये गये प्रतिबन्धों को हटाने के लिए की जा रही है। मेरी राय में वायसराय का कर्त्तव्य है कि राजकोट के रेजीडेंट से कहें कि उस कौल करार को चलने दे और जयपुर के प्रधानमन्त्री से कहें कि पाबन्दी हटालें। वायसराय के ऐसा करने से किसी हालत में यह नहीं समझा जा सकता कि उन्होंने देशी रियासतों के मामले में अनावश्यक दखलन्दाजी की।

—मो० क० गांधी

विज्ञप्तियां संतोषकारक नहीं

भारत सरकार और जयपुर सरकार ने जो विज्ञप्तियां निकाली हैं उन पर गांधीजी ने नीचे लिखा वक्तव्य ३ फरवरी को वर्धा से प्रकाशित कराया:—

(हरिजन सेवक, ११–२–३९)

'जयपुर के बारे में मुझे केवल एक शब्द कहना है। मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि ब्रिटिश प्रधान मन्त्री जयपुर राज्य की कौंसिल के सदस्य हैं। इसलिए मेरा कहना यह है कि वही सब कुछ हैं। उन्होंने प्रजामंडल से तथा सेठ जमनालाल से बदला चुकाने की शपथ ले ली है और मैं यह घोषित करता हूँ कि प्रजामण्डल के सम्बन्ध में राज्य जो कार्यवाही कर रहा है उसके बारे में वह चाहे जो शब्दाडम्बर रचे, प्रजामण्डल गैर-कानूनी संस्था घोषित की जा चुकी है। अगर प्रजामण्डल गैर-कानूनी संस्था नहीं घोषित की गई तो अधिकारियों को चाहिए कि वे सेठ जमनालाल बजाज को जयपुर राज्य में प्रवेश करने की स्वतन्त्रता दे दे और तथा मण्डल को उन्हें बगैर किसी छेड़खानी किये प्रजा को उत्तरदायी शासन की शिक्षा देने दे। और अगर वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसात्मक भाव जागृत करने का प्रयत्न करें, तो अधिकारीगण उन्हें सजा दें।'

—मो० क० गांधी

जमनालाल जी

(हरिजन सेवक, ४–३–३९)

'आखिरकार जयपुर दरबार को जमनालालजी को गिरफ्तार करना ही पड़ा। कहते हैं कि उन्हें एक अपरिचित स्थान में मजबूत चौकी-पहरे के नीचे बढ़िया मकान में रखा गया है। जान पड़ता है हर बात में गुप्तता रखी जाती है। मेरी सूचना यह है कि अधिकारियों को उनके पते-ठिकाने की, उन्हें दी जाने वाली सुविधाओं तथा उनके साथ पत्र-व्यवहार व मुलाकात करने सम्बन्धी शर्तों को प्रकाशित कर देना चाहिए। जमनालालजी को जहां उन्होंने रखा है, वहां क्या डाक्टरी मदद आसानी से मिल सकती है ?

मगर शेखावाटी से जो खबरें आ रही हैं अगर वे सब सच हैं तो उनके आगे जमनालालजी की नजरबन्दी और उनके साथ किया जाने वाला बर्ताव गौण हो जाता है। राज्य की ओर से तफसीलवार खबरें प्रकाशित न होने से जनता अखबारों में आने वाली तरह–तरह की खबरों को ही सही मानेगी।'

—मो० क० गांधी

जयपुर के राजबन्दी

(हरिजन सेवक, ६–५–३९)

जयपुर सरकार ने सेठ जमनालाल बजाज तथा दूसरे राजबन्दियों के साथ किये जाने वाले बर्ताव के बारे में जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, वह

ऐसा मालूम होता है जैसे कि अपने बचाव के लिए खास प्रयत्न करके लिखा गया हो। सेठजी के सम्बन्ध का प्रश्न तो बिलकुल सीधा सादा है। यह स्वीकार किया गया है कि उन्हें ऐसी जगह रखा गया है जहां का पानी बहुत भारी है। यह भी कबूल कर लिया गया है कि वहां पहुंचना आसान नहीं है। उनका वहां कोई साथी भी नहीं। यह सारा अकेलापन किसलिए? क्या वह कोई खतरनाक आदमी हैं? क्या वह कोई षडयन्त्री हैं?

उनको नजरबन्द रखना तो समझ में आ जाता है क्योंकि वह उस हुक्म की उदूली करना चाहते हैं जो उनको अपने जन्म प्रदेश में प्रवेश करने से रोकता है। अधिकारियों को यह भी मालूम है कि सेठजी एक आदर्श कैदी हैं। वह जेल के नियमों को पूरी तरह पालन करने में विश्वास करते हैं। उन्हें जिस प्रकार बाहर की सारी दुनियां से अलग कर दिया गया है, क्या यह अत्याचार और निर्दयता नहीं है?

कैदियों की सबसे बड़ी जरूरत ऐसे साथी की होती है, जो आचार-विचार, रहन-सहन और व्यवहार में उनका सा हो। मेरा खयाल है कि बगैर कठिनाई के उनको एक ऐसे स्थान पर रखा जा सकता है, जहां पहुंचना कठिन न हो, साथ ही जहां उनके कुछ साथी भी हों।

सत्याग्रह के ध्येय से सम्बन्ध रखने वाले अनेक महत्वपूर्ण सवालों का हल होना बाकी है। लेकिन फिलहाल जो सवाल है वह बहुत बड़ा नहीं है। इसका सम्बन्ध तो केवल प्रजामण्डल को मंजूर करवाने के साथ है। सरकार ने एक ऐसी शर्त रख दी है, जिसका स्वीकार करना अशक्य है। वह यह है कि उसके अधिकारी लोग वे लोग नहीं हो सकेंगे जो राज्य के बाहर राजनीतिक संस्थाओं के सदस्य हों। इससे तो खुद जमनालालजी ही प्रजा मण्डल के प्रमुख नहीं रह सकते, क्योंकि उनका सम्बन्ध कांग्रेस से है।

दूसरी रियासतों की तरह मेरे कहने पर जयपुर में भी सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया है। पर वह हमेशा स्थगित नहीं रह सकता। मुझे अब भी आशा है कि रियासत अपनी प्रजा के जागृत समुदाय को संतुष्ट करेगी। मैं जयपुर सरकार को यह सुझाना चाहता हूँ कि सत्याग्रह स्थगित होने पर भी इन सब को जेल में रखकर वह उल्टे रास्ते पर जा रही है। इतना तो मैं फिर भी कहूँगा की राजबन्दियों के साथ, जिनमें जमनालालजी बजाज भी शामिल हैं, होने वाले इस अमानुषिक बर्ताव को तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

—मो० क० गांधी

फिर जयपुर

(हरिजन सेवक, १०—६—३९)

जयपुर में बहुत ही सुस्ती से काम लिया जा रहा है। अखबारों में यह प्रकाशित हुआ था कि दरबार और प्रजा के बीच समझौता होने वाला है और सेठ जमनालालजी तथा उनके साथी कार्यकर्त्ताओं को रिहा कर दिया जायगा। जिस बात पर झगड़ा है वह तो मामूली मालूम पड़ती है। केवल नागरिक स्वाधीनता की रक्षा के लिए ही वहां सविनय अवज्ञा भंग करने का निश्चय किया गया था। और तभी उसका सहारा लिया गया जब कि प्रजा मण्डल द्वारा लोगों को वैध तरीके से राज्य के अन्दर स्थानीय उत्तरदायी शासन के लिए आंदोलन करने की शिक्षा देने के अधिकार तक पर आपत्ति की गई। कुछ समय पूर्व दरबार की एक विज्ञप्ति निकली थी जिसमें प्रजा-मण्डल की स्वीकृति के लिए शर्तें दी हुई थीं। दरबार ने चाहा होता तो निश्चय ही उनको ऐसे रूप में रखा जा सकता था जिससे सविनय भंग के नेता उन्हें मंजूर कर लेते। उदाहरण के लिए यह शर्त कि स्थानीय संघ का कोई पदाधिकारी ऐसा न होगा जो राज्य के बाहर की किसी राजनीतिक संस्था का सदस्य हो, केवल परेशान करने के लिए ही रखी गई मालूम पड़ती है। भला सेठ जमनालालजी को इस बिना पर प्रजामण्डल का अध्यक्ष बनाने के अयोग्य क्यों करार दिया जाय कि वह राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की कार्य समिति के सदस्य हैं? या खास उन्हीं की खातिर यह शर्त रखी गई है। इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। और भी ऐसी शर्तें हैं जिनके स्पष्टीकरण की आवश्यकता । आखिरी दो शर्तें ये हैं: (१) मण्डल श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर द्वारा विधान के मातहत समय—समय पर निश्चित किये जाने वाले उपयुक्त जरियों से जयपुर राज्य की प्रजा की आकांक्षाओं और शिकायतों को पेश करने का वचन देगा और (२) जयपुर राज्य में बसे हुए लोग ही इसके सदस्य हो सकेंगे।

यह दोनों ही शर्तें अस्पष्ट हैं। भला राज्य जो सुधार देने के लिए तैयार है उनका पहले से ही प्रतिपादन करने की आजादी प्रजा को क्यों न दें? लेकिन आखिरी शर्त तो मालूम पड़ता है इस स्वाभाविक अधिकार पर बंदिश लगाने के लिए ही है। और 'बसे हुए' शब्द तो ऐसा खतरनाक कानूनी शब्द है जिसका राजनीतिक रूप में कम ही व्यवहार किया जाता है। इसके बजाय 'अधिक प्रचलित निवासी' शब्द का प्रयोग क्यों न हो?

—मो० क० गांधी

जयपुर

(हरिजन सेवक, १५-७-३९)

जो लोग जयपुर के मामले में दिलचस्पी रखते हैं वे आजकल बड़े पशोपेश में पड़े हैं, क्योंकि उन्हें मालूम हुआ था कि सेठ जमनालालजी बजाज और रियासत के प्रधान मन्त्री के बीच कुछ बातचीत चल रही थी। उन्हें यह सूचित करते हुए मुझे बड़ा दुख होता है कि उस बातचीत का कोई फल नहीं निकला। इसलिए हमारी लड़ाई जारी है। सत्याग्रह भी अपने एक तरीके से जारी है, भले ही गिरफ्तार होने वाले नये जत्थों का जाना बन्द हो गया है। जो लोग सत्याग्रह के सिलसिले में गिरफ्तार हुए थे, वे अब भी जेल में शाही बन्दी हैं। उन्हें अभी तक रिहा नहीं किया गया। वे अपनी सजा की पूरी मियाद भुगत कर ही बाहर आयेंगे। सेठजी भी अनिश्चित काल के लिए नजरबन्द हैं। वे रिहा होते ही रियासत छोड़ने का वचन देकर कभी बाहर नहीं आयेंगे और रियासत के अधिकारी, गिरफ्तारियों के लिए नये जत्थों का आना बन्द होने के बावजूद, उन्हें एक स्वतन्त्र व्यक्ति की भांति जयपुर में नहीं रहने देंगे। इस तरह वे सेठजी को जयपुर के लोगों में रचनात्मक कार्यक्रम चलाने की इजाजत तक भी नहीं देंगे। वे जानते हैं कि सेठजी की ओर से किसी गुप्त आंदोलन का, या कहें कुछ करें कुछ, इसका कोई भय नहीं है। वे अपनी खरी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध हैं और उनकी ईमानदारी पर कोई संदेह नहीं कर सकता।

सेठजी के घुटनों में दर्द रहने के कारण सवाल कुछ पेचीदा होगया है। रियासत के मेडिकल आफिसर ने सेठजी को इलाज के लिए योरोप या कम से कम किसी समुद्री किनारे पर जाने की सलाह दी है। वे खुद अपनी ओर से भरसक इलाज कर रहें हैं, लेकिन उनकी राय स्थान परिवर्तन की है। सेठजी जब नजरबन्द हैं अपने इलाज के लिए भी जयपुर से बाहर जाना पसन्द न करेंगे। उनके खयालों में आत्म-सम्मान का तकाजा है कि रिहाई बगैर किसी शर्त के हो। जब तक उनके ऊपर ऐसी पाबन्दी लगी हुई है जिसे किसी भी तरह जायज नहीं सिद्ध किया जा सकता, वे स्थान परिवर्तन की बात तक नहीं सोच सकते। जब सत्याग्रह ही स्थगित हो गया तब जमनालाल जी को नजरबन्द रखने का कोई कारण मालूम नहीं होता। क्यों नहीं रियासती अधिकारी उन्हें छोड़ देते और जब वे रियासती कानूनों को फिर भंग करें उन्हें गिरफ्तार करलें? अगर हम नरम से नरम शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि सेठ जमनालालजी के इलाज में कुछ गैबीसी चीज है। जयपुर के अधिकारियों का यह फर्ज है कि या तो वे उनकी अनिश्चित

काल तक की कैद को उचित सिद्ध करें या उन्हें बिना किसी शर्त के रिहा कर दें।

जयपुरी लोग मुझ से पूछते रहते हैं कि उनके सत्याग्रह पर कब तक पाबंदी लगी रहेगी ? मैं उन्हें सिर्फ यही जवाब दे सकता हूँ कि जब तक वातावरण की दृष्टि से उसका स्थगित रहना आवश्यक हो। इस अरसे में उन्हें रचनात्मक कार्य जारी रखना चाहिए। मेरी अब भी यही राय है कि ऐसा कोई भी व्यक्ति सत्याग्रह करने का अधिकारी नहीं है, जिसने उन शर्तों को पूरा नहीं कर लिया, जो शर्तें मैंने सत्याग्रह के लिए बताई हैं। लेकिन मेरी सब सलाहों में एक बात ऐसी है, जिससे गुन्जाइश निकल सकती है। जब तक किसी के दिल व दिमाग में मेरी बात बैठ नहीं जाती, वह उस पर अमल करने के लिए बाध्य नहीं है। जब तक किसी को सच्चे दिल से आंतरिक प्रेरणा नहीं होती, तब तक यह गांधीजी सलाह है इस ख्याल से उसे मानकर रुकना लाजिमी नहीं है। दूसरे शब्दों में यह उन्हीं पर लागू होती है जो आंतरिक प्रेरणा का अनुभव नहीं करते और जो मेरे परिपक्व अनुभवों तथा मेरी सलाह की गम्भीरता पर विश्वास करते हैं।

हालांकि समझौते की बातचीत टूट गई है, तो भी रियासत के अधिकारी इस गुत्थी का हल ढूंढने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो गये। सत्याग्रह न करने का अर्थ यह नहीं है कि स्वाधीनता के मौलिक अधिकार, जिनके लिए लड़ाई शुरु की गई थी, लेने के लिए किसी प्रकार का आन्दोलन न चलाया जाय। लोकमत अधिकारियों को चैन नहीं लेने देगा। इसलिए जयपुरियों को यह समझ लेना चाहिए कि जब तक उनमें दृढ़ संकल्प मौजूद है, उनके हाथ में शक्ति भी है और इस शक्ति को अपने नियन्त्रण में रखने से यह सदा बढ़ती ही है। प्रत्येक शक्ति इसलिए नहीं होती कि उसका इस्तेमाल किया जाय। शक्ति के पैदा होते ही उसे इस्तेमाल में लाने की अपेक्षा उसका संचय कर लेना प्रायः अधिक प्रभावकारी होता है।

—मो० क० गांधी

अखिल भारतीय संकट

(हरिजन सेवक, २८–७–३९)

एक संवाददाता ने गांधीजी पूछा कि आपने गत सप्ताह के 'हरिजन सेवक' में लिखा था कि अगर जयपुर के अधिकारियों ने जमनालालजी पर से रियासत में दाखिल होने की रोक न हटाई तो अखिल भारतीय संकट उत्पन्न हो जायगा, तो आपका क्या आशय था ? गांधीजी ने उत्तर दिया :—

जमनालालजी बजाज जयपुर के प्रजाजन होते हुए भी अखिल भारतीय व्यक्ति हैं। वह कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य भी हैं और सब मानते हैं कि वे शांतिप्रिय व्यक्ति हैं। वह ऐसे संगठन के सभापति हैं जो कुछ वर्षों से जयपुर में काम करता रहा है और उसे काम करने दिया गया है। उसकी प्रवृत्तियां हमेशा जाहिर रही हैं। उसमें ऐसे सुपरिचित कार्यकर्त्ता शामिल हैं जो स्वभाव से गम्भीर हैं और जिन्होंने स्त्रियों और पुरुषों दोनों में रचनात्मक काम किया है। जयपुर रियासत के प्रधान पद पर ऐसे व्यक्ति हैं जो राजनीतिक और सैनिक विभाग से सम्बन्धित रहे हैं। उन्होंने ही यह नीति अपनाई है जिसके अनुसार जमनालालजी और उनकी संस्था प्रजामण्डल पर रोक लगाई गई है। मैं यह मानता हूँ कि जयपुर के प्रधान मन्त्री मि० बीचम सेंट जॉन केन्द्रीय अधिकारियों की मूक स्वीकृति के बिना यह सब नहीं कर रहे हैं, कारण वे उनकी स्वीकृति के बिना जयपुर जैसी महत्वपूर्ण रियासत के प्रधान मन्त्री नहीं बन सकते थे।

अगर जयपुर के अधिकारियों की कार्यवाही के फलस्वरूप प्रथम श्रेणी का संकट पैदा होता है तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, और इसलिए भारत के लिए चुप बैठना मुश्किल होगा, जब कि जमनालालजी को बिना किसी अपराध के कैद किया जाता है और प्रजामण्डल के सदस्यों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है। कांग्रेस अपने कर्त्तव्य से च्युत होगी यदि शक्ति होते हुए भी उसका उपयोग नहीं करती और जयपुर के लोगों को कांग्रेस के समर्थन के अभाव में कुचला जाने देगी। इस अर्थ में मैंने यह कहा था कि जयपुर अथवा राजकोट का उदाहरण आसानी से अखिल भारतीय संकट उत्पन्न कर सकता है।

—मो० क० गांधी

सेठ जमनालालजी

(हरिजन, १२–८–३९)

सेठ जमनालालजी असाधारण कैदी हैं। वह यह मानते हैं कि एक कैदी की हैसियत से उन्हें अपने शरीर की उससे अधिक चिन्ता नहीं करनी है जितनी उनके लिए नियुक्त डाक्टर करते हैं। इसलिए उनके स्वास्थ्य के बारे में सही विवरण अभी मिला है। श्री शंकरलाल बैंकर उनसे मिलने जयपुर गये थे। उनके स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित हुए हैं और उन्होंने मुझे बताया है कि वह कितना बिगड़ा हुआ है।

फिलहाल मैं वह पत्र व्यवहार प्रकाशित नहीं करूंगा जो मुझे प्राप्त हुआ है। जयपुर के सिविल सर्जन के अनुसार उन्हें विशेष चिकित्सा की जरूरत है। यदि ऐसी बात है तो रियासत का जिम्मा है कि उन्हें बिना किसी शर्त रिहा करदें और यह जमनालालजी पर छोड़ दे कि वह जयपुर में रह कर इलाज करायें या बाहर जाकर। जमनालालजी से यह कहना बेकार होगा कि रिहा होने पर वह जयपुर छोड़ देंगे। वह जेल में मर जाना पसन्द करेंगे बजाय इसके कि ऐसी शर्त को मान कर छूटें जिसे भंग करके वे कैदी हुए हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, जमनालालजी रियासत में सविनय अवज्ञा को प्रोत्साहन देने वाले नहीं हैं, कारण उसे अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया है। अधिकारी जानते हैं कि जमनालालजी मूलतः अहिंसक व्यक्ति हैं। वे यह भी जानते हैं कि वह वचन के पक्के हैं। मेरे विचार में उनकी नजरबन्दी एक रहस्य है और उनके स्वास्थ्य की मौजूदा दशा में अपराध है।

जनता को आम तौर पर यह पता नहीं है कि उनकी नजरबन्दी की जगह अच्छी और पहुंच के भीतर है, किन्तु जंगली जानवरों से घिरी हुई है। मैं इस बात का विरोध करता हूँ कि उन्हें ऐसे स्थान पर नजरबन्द रखा जाए जहां शेर-चीतों की भरमार हो। उनके पहरेदारों को, मुझे बताया गया है, अपने काम से संतोष नहीं है। जमनालालजी के भाग जाने का कोई खतरा नहीं है और उन्हें जेल में ही रखना हो तो उन्हें किसी निरापद जगह में ही रखा जाए जहां चिकित्सा और अन्य सहायता आसानी से सुलभ हो सके।

एक और बात पर ध्यान देने की जरूरत है। बार बार अनुरोध करने पर भी उन्हें कोई साथी नहीं दिया गया। उन्हें कोई परिचारक भी नहीं दिया गया। ऐसे अनेक अवसर आये जब उन्हें रात को परिचारक की जरूरत पड़ी उन्होंने कोई शिकायत नहीं की। इसका यह मतलब नहीं होता कि अधिकारी परिचारक का भी प्रवन्ध न करें। सेठजी के सेक्रेटरी ने एक से अधिक बार उनका ध्यान खींचा है।

—मो० क० गांधी

(यह छः अगस्त १९३९ को लिखा गया, किन्तु पत्र छपते–छपते यह सुखद समाचार मिला कि जमनालालजी रिहा कर दिये गये हैं।—सम्पादक)

जयपुर सत्याग्रह

(हरिजन सेवक, २३–९–३९)

जैसा कि सेठ जमनालालजी ने अपने सार्वजनिक वक्तव्य में घोषित किया है, जयपुर सत्याग्रह सफलता के साथ समाप्त हो गया। महाराजा

साहब से उनकी मुलाकातें हुई हैं। उनके फलस्वरूप सभाओं और जुलूसों पर पाबन्दी वाला कानून (रेग्यूलेशन) उठा लिया गया है। इसी प्रकार अखबारों पर लगा हुआ प्रतिबन्ध भी उठ गया है, और कई दूसरे सुधार जारी करने का भी आश्वासन दिया गया है। इस सुखद परिणाम के लिए महाराजा साहब और सेठ जमनालालजी दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं। महाराजा साहब तो अपनी न्याय बुद्धि के लिए और सेठ जमनालालजी जयपुर प्रजामण्डल की ओर से बातचीत करने में प्रदर्शित बुद्धिमत्ता और विनम्रता के लिए। यह एक ऐसे आंदोलन का सुखद अन्त है जो बड़े संयम और शांति के साथ चलाया गया था। यह अहिंसा की विजय है। इसमें बिल्कुल शुरू से ही अपनी मांगें इतनी कम से कम रखी गई थीं जितनी कि राजनीतिक शिक्षा और अपने विचारों को प्रकट करने के लिए आवश्यक हैं। उत्तरदायी शासन का ध्येय तो हमेशा रहा है, लेकिन उसे इस उग्र या आक्रमणात्मक रूप में कभी नहीं रखा गया है मानो फौरन ही पूर्ण उत्तरदायित्व देने पर आग्रह हो। प्रजा-मण्डल ने अपनी मर्यादा और जनता की पिछड़ी हुई हालत का बुद्धिमानी के साथ ध्यान रखा है। व्यावहारिक रूप में राजपूताने में अनेक राज्यों में अभी तक कोई राजनीतिक शिक्षा नहीं देने दी गई है। अत: यदि जयपुर की प्रजा को नागरिक स्वाधीनता उसकी असली भावना में मिल गई हो, तो यह एक ठोस लाभ होगा। पर यह जितना जयपुर के अधिकारियों पर निर्भर है उतना ही इस बात पर भी निर्भर है कि प्रजा किस बुद्धिमानी के साथ उसका उपयोग करती है।

इस सम्बन्ध में सेठ जमनालालजी ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही है। उनका आग्रह है कि किसी अंग्रेज को दीवान न बनाया जाय। मुझे इस राज्य के अंग्रेज दीवान के शासन प्रबन्ध की आलोचना का दुखदायी फर्ज अदा करना पड़ा है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी देशी राज्य में अंग्रेज दीवान कभी भी उपयुक्त नहीं हो सकता।

इसलिए आशा की जाती है कि अगर महाराजा साहब को अपना दीवान चुनने की सचमुच छूट हो तो वह किसी ऐसे भारतीय को चुनेंगे, जो ईमानदारी योग्यता और प्रजा की आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति के लिए प्रसिद्ध हो। साथ ही यह आशा की जाती है कि अगर ब्रिटिश सरकार ही चुनाव करे तो वह किसी अंग्रेज दीवान को महाराजा साहब के ऊपर न थोपेगी।

—मो० क० गांधी

जयपुर राज्य और प्रजामण्डल

(हरिजन सेवक, २०–४–४०)

आखिर प्रजामण्डल और राज्य के बीच एक समझौता हो गया है। इस सुखद अन्त का श्रेय राज्याधिकारियों और सेठ जमनालालजी दोनों को है। आशा है कि इस समझौते के फलस्वरूप राज्याधिकारियों और प्रजा-मण्डल के बीच सुन्दर सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा और इन दोनों के सहयोग के परिणाम स्वरूप हर दिशा में रियासती प्रजा की दिन-दिन उन्नति होगी, इसके लिए राज्य को सहिष्णुता का परिचय देना होगा, और मण्डल को अपने सभी कामों और वक्तव्यों में संयम से काम लेना होगा।

—मो० क० गांधी

जयपुर

(हरिजन सेवक, १९–१०–४०)

सेठ जमनालालजी जयपुर में मुसीबतों के घने जंगल में अपना रास्ता निकालने का यत्न कर रहे हैं। एक समझौता पिछले दिनों में हो चुका है। उसमें उनका काफी हिस्सा था। उसमें रियासत को भी वाहवाही मिली थी और मुसीबतें भी कम हो गई थीं। इसलिए उन्होंने सोचा था कि इस बार उनका काम सुगम व सरल हो जायगा। मगर ऐसा नहीं हुआ। सेठ जी के कहने के अनुसार वहां के दीवान राजा ज्ञाननाथजी एक बिल्कुल गैर-जिम्मेदार और तरक्की के दुश्मन व्यक्ति हैं। जयपुर के चिरकाल से पीड़ित काश्तकारों को जरा भी तसल्ली नहीं दे सके हैं। वहां की प्रजा में उनको हटाने और एक ऐसे दीवान को नियुक्त करने के लिए आन्दोलन चल रहा है जो प्रजामत की कदर कर सके। सार्वभौम सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जब वह राजाओं के लिए किसी दीवान की नियुक्ति करें तो यह अवश्य देखलें कि वह रैय्यत की जरूरतों की तरफ सहानुभूति रखने वाला है या नहीं। जब कोई दीवान जिस राजा की नौकरी करता है उससे भी बढ़कर स्वेच्छाचारी बन जाए, तो वह इस बात का सूचक है कि वह हटा दिया जाय।

—मो० क० गांधी

स्व० जयनारायण व्यास

११

मारवाड़ लोक परिषद

जोधपुर रियासत राजपूताना की चार बड़ी रियासतों में से एक थी। उसका क्षेत्रफल काफी विस्तृत था। इस रियासत की एक और विशेषता थी और वह यह कि उसका बड़ा भाग यानी, ८३ प्रतिशत, जागीरदारों के अधीन था। जोधपुर राज्य को मारवाड़ के नाम से भी जाना जाता था।

अपने समय में राजा-महाराजा अपनी निरंकुशता के लिए प्रसिद्ध थे। जोधपुर रियासत भी अपवाद नहीं हो सकती थी। प्रजा को नागरिक स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया गया था। शिक्षा पर राज्य का पूरा अंकुश था। बिना राज्य की स्वीकृति के कोई पाठशाला नहीं चला सकता था। जोधपुर ही ऐसी रियासत थी, जहां टाइप-राइटर रखने के लिए भी सरकार की इजाजत लेनी पड़ती थी। छापाखाना खोलना और अखबार निकालना आसान न था। प्रजा के अभाव-अभियोगों को दूर कराने के लिए जो सुधारक आगे बढ़े, उन्हें दस नम्बरी करार दिया गया और उन्हें रात या तो पुलिस थाने में बितानी पड़ती या नित्य हाजरी देनी पड़ती। उन्हें आवारा समझा जाता और एक अपराधी की तरह उनके साथ बर्ताव किया जाता। देश निकाले की सजा मामूली बात थी।

रियासत में जागीरदारों का काफी प्रभाव था। यह वर्ग काफी शक्तिशाली था। जागीरदार रियासत को वार्षिक खिराज़ देते थे, बाकी अपनी जागीर का प्रबन्ध चलाने के लिए स्वतन्त्र थे। प्रजा को लूटने-खसोटने और सताने की उन्हें पूरी आजादी प्राप्त थी। रियासत क्वचित ही उनके मामले में हस्तक्षेप करती थी। जागीरदार का शब्द ही कानून होता था। अगर कोई उनके सामने सिर उठाता, तो उसके सिर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता। जागीरदार के राज में व्यक्ति की जान-माल या इज्जत-आबरू कुछ भी सुरक्षित न थी। जागीरदारों के अत्याचारों के खिलाफ प्रजा की कहीं सुनवाई नहीं होती थी और न्याय या राहत प्राप्त करना बहुत मुश्किल था।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में तीन बार रियासत भारत सरकार के राजनीतिक विभाग के सीधे अधिकार में रही। उसने रियासत के महत्वपूर्ण पदों पर अंग्रेज अधिकारियों को नियुक्त किया। रियासत के प्रधान मंत्री का पद भी एक रिटायर्ड अंग्रेज फौजी अफसर ने सम्हाल रखा था। अंग्रेज अफसर रियासत में पहुँच कर पूरा तानाशाह बन जाता था। अंग्रेज जाति का जन्मजात उदार और लोकतन्त्री दृष्टिकोण पूरी तरह रियासतों में गायब हो जाता था। ब्रिटिश भारत में अंग्रेज सत्ता को खुली चुनौती दी जा रही थी। इसलिए अंग्रेज रियासतों को अपनी सुरक्षित चरागाह समझते थे। रियासतों को पिछड़ी दशा में रखकर दुनियां को वे दिखाना चाहते थे कि स्वयं हिन्दुस्तानियों के शासन के मुकाबले उनका शासन कितना प्रगतिशील है। रियासती साधनों का अंग्रेज स्वच्छन्द उपयोग करना चाहते थे। राजा-महाराजाओं को अपने साम्राज्य का स्तम्भ मानते थे। राष्ट्र की स्वतन्त्रता की आकांक्षाओं के आगे उन्हें रोड़ा बनाना चाहते थे। रियासतों में उनके नाम पर और उनकी ओट में अपना खेल खेलते थे। जोधपुर रियासत को नाबालगियों और राजा की कमजोरी के कारण अंग्रेज साम्राज्यवादियों की प्रतिक्रियावादी दुर्नीति का अखाड़ा बन कर रहना पड़ा।

किन्तु सारे भारत में जो राजनीतिक चेतना फैल रही थी, उससे रियासतें अप्रभावित नहीं रह सकती थीं। जोधपुर रियासत भी नहीं रही। जन चेतना ने समाज सुधार के आन्दोलनों का रूप लिया। अभाव-अभियोगों के विरुद्ध भी जनता ने समय-समय पर आन्दोलन किये। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को रियासती हुकूमत का कोप भाजन बनना पड़ा। अन्त में सन् १९३८ में मारवाड़ लोक परिषद् के नाम से राजनीतिक संगठन की रियासत में स्थापना हुई। उसका उद्देश्य भी अन्य रियासती प्रजामण्डलों की भांति

महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना था। लोक परिषद् का प्रभाव रिसासत में धीरे-धीरे बढ़ता चला गया। उसने रियासत में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की और जागीरदारों के जोर-जुल्मों का संगठित विरोध किया। लोक परिषद् के नेताओं में सबसे प्रमुख श्री जयनारायण व्यास थे जो आगे चल कर अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के प्रधानमंत्री भी रहे और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राजस्थान के मुख्य मंत्री भी बने। श्री व्यास ने जोधपुर रियासत के राजनीतिक संघर्ष में बड़े-बड़े कष्ट सहन किये और अपनी जिंदा दिली, ईमानदारी और देशभक्ति के लिए जनता का असीम प्यार और आदर प्राप्त किया।

मारवाड़ लोक परिषद् रियासत की आंखों में खटकने लगी उसने। जोधपुर में अखिल राजस्थान राजनीतिक सम्मेलन बुलाने की घोषणा की। यूरोप में द्वितीय महा-युद्ध शुरू हो गया था और अंग्रेज सरकार इस बात के लिए सचेष्ट थी कि उसके युद्ध-प्रयासों में कोई विघ्न पैदा न हो। उसके राजनीतिक विभाग के कान खड़े हुए और उसने रियासत की हुकूमत को लोक परिषद् की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के निर्देश दे दिये। जोधपुर दरबार ने लोक परिषद् को गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया और उसके कार्यकर्त्ताओं को सामूहिक रूप से गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिया। प्रमुख नेताओं पर मुकदमें चलाने की भी जरूरत नहीं समझी। थोड़े समय तक लोक परिषद् का आन्दोलन चलता रहा और उसके बाद जोधपुर दरबार को उसके साथ समझौता करना पड़ा उसके कार्यकर्त्ता रिहा कर दिये गये। किन्तु जोधपुर दरबार के रुख में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। लोक परिषद् को जागीरी प्रजा के अभाव-अभियोगों की समस्या को अपने हाथ में लेना पड़ा। जोधपुर दरबार से न्याय प्राप्त करने की उसकी कोशिशें बेकार रहीं। रियासत ने जागीरदारों को लोक परिषद् के कार्यकर्त्ताओं को सताने और दबाने के लिए उकसाया। रियासत ने जिन लागों (टैक्सों) को गैर-कानूनी घोषित कर दिया था, उनको भी जागीरदार धड़ल्ले से वसूल करते थे। जागीरों में लटाई की पद्धति प्रचलित थी। खेत की उपज का हर फसल पर जागीरदार अनुमान करता था, जो अक्सर मनमाना होता था और अपना हिस्सा वसूल करता था, कहीं चौथा और कहीं छठा। जागीरी रिआया का पक्ष लेने के कारण लोक परिषद को एक बार फिर अग्नि परीक्षा में से गुजरना पड़ा। उसके नेता और कार्यकर्त्ता पकड़े गये। लोक परिषद के आन्दोलन को कुचलने के लिए पशुबल का सहारा लिया गया। जगह जगह लाठी चार्ज हुए। श्री बालमुकुन्द

बीसा, जो लोक परिषद के आन्दोलन के सिलसिले में पकड़े गये थे, जोधपुर जेल में शहीद हुए। किन्तु उग्र दमन के बावजूद प्रजा का मनोबल कायम रहा और अन्त में लोक परिषद को रियासत को मान्यता देनी पड़ी और राजबन्दियों को रिहा करना पड़ा।

गांधीजी ने मारवाड़ लोक परिषद के आन्दोलन को अपना पूरा नैतिक समर्थन दिया और उसके बारे में अनेक मर्तबा 'हरिजन' पत्र में लिखा। यही नहीं, श्री श्रीप्रकाशजी को जोधपुर के अंग्रेज प्रधान मंत्री सर डोनाल्ड फील्ड और लोक परिषद के बीच सम्मानपूर्ण समझौते का प्रयत्न करने के लिए भेजा। लोक परिषद के नेता श्री जयनारायण व्यास सेवाग्राम जाकर गांधीजी से मिले और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

जब जोधपुर रियासत ने लोक परिषद को गैर-कानूनी संस्था करार दिया, उसके प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द कर दिया और सभाओं तथा जुलूसों पर पाबन्दी लगा दी, तो गांधीजी ने लिखा कि जोधपुर की दमन सम्बन्धी खबरें बेचैनी पैदा करने वाली हैं। जोधपुर महाराजा ने निषेधाज्ञाओं का औचित्य सिद्ध करते हुए एक भाषण दिया था। इस भाषण के कुछ अंश गांधीजी ने 'हरिजन' पत्र में प्रकाशित किये थे और उस पर अच्छी खासी टिप्पणी की थी। महाराजा ने लोक परिषद को एक छोटा-सा, शोर मचाने वाला अल्पमत बताया था, जो राज्य के हर काम में दोष निकालता और उसे तंग करता है और चाहता है कि उसके अनुभवहीन हाथों में रियासत की बागडोर सौंप दी जाए, महाराजा अपने राजकुल और अपनी प्रजा को लोक परिषद के हवाले कर दें। महाराजा ने लोक परिषद पर आरोप लगाया कि उसमें ज्यादातर ऐसे अनुभवहीन युवक भरे हुए हैं जिन्हें अपने व्यवसायों में अधिक सफलता नहीं मिली। इनमें सहयोग की भावना बिल्कुल नहीं है। बोलने की स्वतंत्रता का अर्थ इनके लिए सिवा निरंकुशता के और कुछ नहीं। उन्हें यह हलचल ऐसे समय सूझी है जब यूरोप में एक भयंकर लड़ाई छिड़ी है और रियासत में बहुत बुरा अकाल पड़ा हुआ है। महाराजा ने अंत में कहा कि अगर वह एक निराधार राजनीतिक हलचल को अपनी रियासत में बढ़ने और फैलने देंगे तो ब्रिटिश सरकार के एक वफादार मित्र के रूप में अपने कर्त्तव्य से च्युत्त होंगे। उन्होंने अपना यह संकल्प प्रकट किया कि वे कुछ किसानों को विद्रोह करने और युवक वर्ग को पथभ्रष्ट करने और राज्य को तबाह करने वाली इस हलचल को बिल्कुल नहीं चलने देंगे।

गांधीजी ने महाराजा के इस भाषण पर १६ अप्रैल १९४० को लिखा: "यह भाषण पढ़कर ऐसा लगा है मानों पहाड़ खोद कर चुहिया निकालने का प्रयत्न किया गयता है। इस भाषण के उद्धरणों से ऐसा लगता है कि बोलने वाली आवाज तो महाराजा की है पर इस भाषण को जिस हाथ ने तैयार किया वह कोई दूसरा है। भाषण में साफ ही अतिशयोक्ति भरी हुई है। रियासत में लोक परिषद की ३० शाखायें हैं और कितने ही अनुभवी लोग इसके सदस्य हैं। मैंने जो पत्र-व्यवहार देखा है उसमें इन शाखाओं के सहयोग की इच्छा और मांग की गई है। जिस प्रकार का दावा पेश करने का दोष लोक परिषद के माथे पर मढ़ा गया है, वह उसने कभी पेश नहीं किया। राज्य के अंदर रहकर उत्तरदायी राज्यतंत्र का उसका ध्येय है। मुझे ऐसा लगता है कि तथ्यों से प्रमाणित न हो सकने वाली बातें महाराजा के मुंह से कहलाना महाराजा के सलाहकारों के लिए बहुत ही अशोभनीय है। लोक परिषद के खिलाफ दमनकारी कार्यवाही का समर्थन करते हुए महाराजा ने यूरोप की लड़ाई तथा ब्रिटेन के साथ अपनी मित्रता को भी ला घसीटा है और ऐसा करने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। मुझे विश्वास है कि यदि कार्यकर्त्ता कष्ट सहन की कसौटी पर खरे उतर सके तो अन्त में लोक परिषद की विजय होगी और जिन कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया है, वे जोधपुर के सत्व और मुक्तिदाता साबित होंगे। प्रजा उन्हें अपना सच्चा सेवक और विश्वासपात्र मानने लगेगी। राजाओं और उनके सलाहकारों को युगबल की ओर से आंखें बन्द करके ऐसी घोषणाएं और काम करना जो निष्पक्ष जांच में टिक न सकें, उचित नहीं होगा। लोक परिषद ने अपने कार्यकर्त्ताओं पर खुले रूप से मुकदमें चलाने की मांग की है। उसने उन आरोपों से इन्कार किया है जो महाराजा ने अपने भाषण में उस पर लगाये हैं। प्रजा के हक में कम से कम यह आवश्यक है कि परिषद के विरुद्ध लगाये गये आरोपों को प्रमाणित किया जाए। इस बीच लोक परिषद को न्याय मिले या न मिले, मैं यह आशा रखता हूं कि इसके सदस्य सभी कष्टों को शांति और वीरता से सहन करते जायेंगे।"

गांधीजी का रियासतों के प्रति शुरू में काफी नरम रुख था। वह अपने को राजाओं का सबसे अच्छा मित्र कहते थे। उनके प्रस्ताव पर कांग्रेस ने यह मर्यादा स्थिर की थी कि वह रियासतों के भीतर हस्तक्षेप नहीं करेगी। किन्तु जब रियासतों में चेतना उत्पन्न हुई और जन आन्दोलन जोर पकड़ने लगे तो उन्होंने रियासती जनता का अधिकाधिक पक्ष लिया और उससे सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर बार बार अपने विचार प्रकट करने लगे। उन्होंने यहां तक

लिखा कि कांग्रेस को रियासती प्रजा के हक में अपनी शक्ति और प्रभाव का उपयोग करना पड़ेगा। गांधीजी ने १० मई १९४२ के 'हरिजन सेवक' में त्रावणकोर, मैसूर और जोधपुर की घटनाओं का एक साथ जिक्र किया और कहा कि यद्यपि उन्होंने रियासतों की प्रजा को बार बार शान्त रहने और शासकों से संघर्ष मोल न लेने का परामर्श दिया है, कारण काल के प्रवाह में पड़कर चीजें अपने आप बदलती जा रही हैं, किन्तु इस सलाह की भी एक मर्यादा है और उपरोक्त तीनों रियासतों में बात इतनी बढ़ गई मालूम होती है कि वह सहन नहीं की जा सकती। गांधीजी ने जोधपुर में जागीरदारों की मनमानी की विशेष रूप से चर्चा करते हुए लिखा था :—

"जोधपुर से गम्भीर समाचार मिले हैं। दूसरे राज्यों की तरह वहां भी स्थानीय लोक परिषद् ने सरकार के साथ सहयोग से काम करने की कोशिश की। सरकार को परेशान करने वाली कोई बात उसने नहीं छेड़ी। किन्तु राजपूताना की बहुत सी रियासतों की तरह जोधपुर में भी कई जागीरदार हैं और रियासत से सत्ता प्राप्त करते हैं। उनकी जागीर को 'राज के भीतर राज' कह सकते हैं। उन पर किसी कानून की सत्ता नहीं चलती। अंग्रेजी हुकूमत का भी उन पर सीधा अंकुश नहीं है। राजा लोग हमेशा उनसे डरते ही रहते हैं। अपनी जागीर में रहने वाली प्रजा पर वे जिस तरह चाहें हुकूमत कर सकते हैं। राजा-महाराजा उसमें हस्तक्षेप करने की हिम्मत नहीं कर सकते। फलतः इन जागीरों में रहने वाली प्रजा की स्थिति रियासती दुनिया में बुरी से बुरी है। मुझे पता चला है कि एक जागीरदार और उसकी प्रजा के बीच झगड़ा हुआ है। इसमें से एक महत्व का प्रश्न खड़ा हो सकता है। ब्रिटिश भारत की तरह देशी रियासतों में भी प्रजामण्डलों के विरोध में शासकों की कृपापात्र संस्थायें खड़ी करवाई जाती हैं। अगर प्रजा-मण्डलों को कुचल देने के लिए जानबूझ कर ऐसी कोशिशें की जाती हैं तो उन्हें ऐसी चुनौती को स्वीकार करके हर तरह की जोखिम उठाने को तैयार हो जाना चाहिए। उन्हें श्रद्धा रखनी चाहिए कि स्वतन्त्रता और सत्य को सदा के लिए दबाया नहीं जा सकता। लेकिन मैं तो अब भी यह आशा रखता हूं कि राजा-महाराजा और उनके सलाहकार अपने और हिन्दुस्तान के भले के लिए कई रियासतों में पायी जाने वाली इस प्रवृत्ति को रोकेंगे, जिसे सिवाय अन्धाधुन्धी के और कोई नाम नहीं दिया जा सकता।"

जागीरदारों के जोर-जुल्मों ने उग्र रूप धारण किया और उनकी निरीह प्रजा का पक्ष लेने के कारण लोक परिषद् को एक बार फिर अग्नि

परीक्षा में से गुजरना पड़ा। रियासत ने लोक परिषद् के साथ जो समझौता किया था, उसे भंग कर दिया। मई १९४२ के अन्त में लोक परिषद् के नेता श्री जयनारायण व्यास और उनके साथी गिरफ्तार कर लिये गये। इन गिरफ्तारियों पर गांधीजी ने ३० मई को यह विचार प्रकट किये :—

"जोधपुर से खबर मिली है कि श्री जयनारायण व्यास इसलिए गिरफ्तार कर लिये गये हैं कि उन्होंने महाराजा साहब के साथ मुलाकात मांगने की हिम्मत की थी और जोधपुर में उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन जारी रखने का इरादा जाहिर किया था। यह तो साफ लगता है कि श्री जयनारायण व्यास के पास इसके अलावा और कोई दूसरा रास्ता ही न था। जोधपुर के कार्यकर्त्ताओं को ईश्वर सफलता दे। परन्तु मुझे आशा है उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया होगा कि उनको अपनी नाव अकेले ही खेनी पड़ेगी। हिन्दुस्तान के सब हिस्सों से उन्हें सहानुभूति तो खूब मिलेगी, लेकिन कोरी सहानुभूति से उनका कुछ बनेगा नहीं। उनका अपना दृढ़ निश्चय और अविचल साहस ही उनके काम आएगा।"

जोधपुर रियासत ने जनता को दबाने के लिए अपना दमन चक्र तेजी से घुमाया। गिरफ्तारियों का तांता लग गया और सभाओं पर लाठी चार्ज किये जाने लगे। जेल में सत्याग्रहियों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाने लगा। जोधपुर के इस दुःखद दमन पर अपने विचार प्रकट करते हुए १४ जून को गांधीजी ने इस प्रकार लिखा :—

"मुझे डर था कि कहीं जोधपुर का सत्याग्रह गम्भीर और विषम न बन जाए। मैं देखता हूँ कि आखिर वही हुआ। मेरे पास ढेरों पत्र आये हैं जिनसे मालूम होता है कि गिरफ्तारियां बढ़ रही हैं और लाठी चार्ज रोजमर्रा की चीज बन गया है। सरकारी तौर पर यह हुक्म जारी किया गया है कि कोई सत्याग्रहियों को अपने घर नहीं रहने दे। ब्रिटिश भारत में सत्याग्रह आन्दोलन के समय जो बुरी से बुरी कार्यवाहियां हुई थीं, वे सब आज जोधपुर में दोहराई जा रही हैं। फर्क इतना ही है कि जोधपुर में वे सर्व साधारण जनता की नजरों से बहुत दूर एकान्त में हो रही हैं। हो सकता है कि वहां जनता के बिना जाने ही कोई करुण घटना घट जाए और वह उसी तरह दबा दी जाए जैसे ऐसी अनेक दुर्घटनायें अब तक दबाई गई हैं और आज भी दबाई जा रही हैं। इन सब मुसीबतों का एक ही कारण है और इलाज भी एक ही है। जब तक यह इलाज कामयाबी के साथ नहीं किया जाता, यह दुःखद

नाटक किसी न किसी रूप में होता ही रहेगा। देशी राज्यों में होने वाली ऐसी हरेक दुर्घटना के लिए ब्रिटिश सरकार भी दोषी है, वह अपने इस दोष और जिम्मेदारी से बच नहीं सकती। आज जोधपुर में शांति और सुव्यवस्था के नाम पर जिस तरह की अमानुषिक कार्यवाहियां हो रही हैं, उनसे देशी राज्यों की जनता की रक्षा करने के लिए ब्रिटिश सरकार अपनी संधि की शर्तों के अनुसार बंधी हुई है। सत्याग्रही बन्दियों को जेल में भी कोई आराम नहीं मिल रहा है। उन्हें खराब खाना मिलता है और मामूली सुविधायें भी नहीं दी जातीं। इसके विरोध में श्री जयनारायण व्यास ने भूख हड़ताल शुरू की है। यह भूख हड़ताल या तो बन्दियों की शिकायतें दूर होने पर खुलेगी या मरने पर। अगर उन्हें मरना ही पड़ा तो उनकी मौत के लिए खास तौर पर वे लोग जिम्मेदार होंगे, जिनकी दी हुई तकलीफों के कारण कैदियों को आमरण अनशन करने के लिए विवश होना पड़ता है।"

गांधीजी ने इसके साथ श्री द्वारकानाथ कचरू का भेजा हुआ जोधपुर की स्थिति पर प्रकाश डालने वाला विवरण भी 'हरिजन' में प्रकाशित किया था और जोधपुर के कार्यकर्त्ताओं को अपनी सलाह पर चलने का परामर्श दिया था। श्री कचरू अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के एक विशिष्ट कार्यकर्त्ता थे।

गांधीजी इतने पर ही संतुष्ट हो कर नहीं बैठ गये। उन्होंने श्री श्रीप्रकाशजी को जोधपुर भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वह जोधपुर के वातावरण को शान्त करने का भरसक प्रयत्न करें और राज्याधिकारियों से मिल कर उनका पक्ष जान लें। श्री श्रीप्रकाशजी ने अपनी जोधपुर यात्रा की रिपोर्ट गांधीजी को दी। इस रिपोर्ट की चर्चा करते हुए गांधीजी ने २१ जून, १९४२ को इस प्रकार लिखा :—

"श्रीप्रकाशजी की रिपोर्ट से इस बारे में कोई शंका नहीं रहती कि लोगों का दमन करने के लिए वहां खुले हाथों लाठी का प्रयोग किया गया है। किन्तु साथ ही उन्होंने मुझे यह भी बताया कि लोक परिषद के सदस्य अपनी भाषा के बारे में हमेशा जितना चाहिए उतना सावधान नहीं रहे। राज्याधिकारियों ने श्रीप्रकाशजी से कहा है कि जब तक भाषा में ठीक-ठीक संयम और मर्यादा रखी जाएगी तब तक लोक परिषद द्वारा वहां सभायें करने व उत्तरदायी शासन की मांग करने में उन्हें कोई आपत्ति न होगी। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि जोधपुर दरबार इस बात के लिए बहुत उत्सुक हैं कि जागीर-

दारों के निरंकुश स्वेच्छाचार पर, जिससे किसी को इन्कार नहीं, कोई न कोई अंकुश लगाया जाये। किन्तु जागीरदारी युग से कानून कायदे का युग लाने के लिए कुछ समय चाहिए। जहां तक राजनीतिक वन्दियों के साथ वर्ताव का सवाल है, श्रीप्रकाशजी को आशा है कि इसमें सुधार कर दिया जायगा साथ ही उन्हें यह भी आशा है कि अगर स्थानीय कार्यकर्त्ता उदारता और समझौतों की वृत्ति का परिचय देंगे तो वहां राजनीतिक वंदी कोई रह ही नहीं जायेगा। अगर ये सब आशायें पूरी हुईं तो श्रीप्रकाशजी का जोधपुर जाना बहुत सफल सिद्ध होगा और राजनीतिक वंदियों की भूख-हड़ताल तथा श्री वालमुकुन्द वीसा की जेल में दुखद मृत्यु निष्फल न होगी। श्रीप्रकाशजी का कहना है कि यद्यपि निस्संदेह यह मृत्यु कुछ हद तक जेल के कुछ कुप्रवन्ध के कारण हुई है, फिर भी जेल अधिकारियों की निष्ठुरता इसका कारण नहीं है। इसलिए जब कभी जेल में किसी वन्दी की मृत्यु हो, हमें हमेशा जेल अधिकारियों के सिर पर ही उसका दोष नहीं मढ़ना चाहिए, ऐसी प्रत्येक घटना पर उसके स्वतन्त्र गुण दोष के आधार पर ही विचार करना चाहिए। मुझे वताया गया है कि श्री वालमुकुन्द वीसा एक अच्छे कार्यकर्त्ता थे। वह अपने पीछे एक वड़ा परिवार छोड़ गये हैं। उनकी विधवा पत्नी और वच्चों के प्रति मेरी हार्दिक समवेदना है। मुझे आशा है कि जोधपुर निवासी उसके पालन पोषण की व्यवस्था कर देंगे।

श्रीप्रकाशजी ने व्यावर में छपा एक पर्चा भी मुझे दिया है। उसमें ऐसी भाषा का उपयोग हुआ है जो किसी सत्याग्रही की कलम से नहीं निकलनी चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि हमारे कार्यकर्त्ता अपनी भाषा के वारे में अत्यन्त संयम और सावधानी रखेंगे।"

इससे प्रकट है कि गांधीजी की कार्यकर्त्ताओं के आचरण पर भी कितनी वारीक निगाह रहती थी और प्रसंग उपस्थित होने पर वह उन्हें संयम के रास्ते चलने की सलाह देने से कभी नहीं चूकते थे।

देश वड़ी तेजी के साथ स्वतन्त्रता की आखिरी लड़ाई लड़ने की तैयारी कर रहा था। ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते के सब प्रयत्न निष्फल हो गये थे। गांधीजी वम्बई में होने वाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की वैठक में भाग लेने के लिए जा रहे थे। इसी वैठक में गांधीजी ने 'करो या मरो' का राष्ट्र को संदेश दिया था और 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ था। अपनी अत्यधिक व्यवस्था के वावजूद गांधीजी ने

मारवाड़ लोक परिषद की मांगों को प्रकाशित किया और उन्हें अपना नैतिक समर्थन दिया था।

मारवाड़ लोक परिषद की मांगें इस प्रकार थीं :—

(१) मारवाड़ के पिछले सत्याग्रह आन्दोलन के फलस्वरूप सन् १६४० में जोधपुर दरबार और मारवाड़ लोक परिषद के बीच जो समझौता हुआ था, जोधपुर दरबार को उसकी शर्तें फिर से मन्जूर करना चाहिए।

(२) जोधपुर दरबार को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे राज्य में, और विशेष कर जागीरी इलाकों में, कानून का राज्य कायम हो सके, और लोक परिषद के कार्यकर्त्ता सन् १६४० के समझौते के अनुसार जागीरदारों के उत्पीड़न के भय से मुक्त होकर सम्पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रता का उपयोग कर सकें।

(३) सलाहकार सभा के रूप में जारी किये गये शासन सुधारों को रद्द किया जाय और उनके बदले राज्य की कौंसिल ने जो वैधानिक सुधार मंजूर किये थे और उन्हें महाराजा ने स्वीकार भी कर लिया था, उन्हें कार्यान्वित किया जाए और यह घोषणा की जाय कि यह सुधार महाराजा की छत्र-छाया में पूर्ण उत्तरदायी शासन की दिशा में एक कदम होंगे।

(४) जो म्युनिसिपल विधान सन् १६४० में मन्जूर किया गया था, मगर जिस पर अभी तक अमल नहीं हुआ है, उसे फिर से दोहराया जाए और राज्य में लोक प्रतिनिधियात्मक सच्ची सत्ता वाला स्वायत्त शासन स्थापित किया जाए।

(५) जागीरों में नियमित लटाई का कारगर और संतोषजनक प्रबन्ध किया जाए।

(६) गैर-कानूनी और अनुचित लाग-बाग तथा ऐसी ही दूसरी वसूली फौरन ही बन्द कर दी जाये और आगे के लिए यह रिवाज फिर से शुरू न होने देने का उचित बन्दोबस्त किया जाये। साथ ही समूची जागीरी समस्या की जांच पड़ताल के लिए कमीशन नियुक्त किया जावे जो तरह तरह की लागों, करों और दूसरी वसूलियों के बारे में अपनी सिफारिशें करें।

(७) जागीरदारों पर हथियारों सम्बन्धी कानून का फौरन अमल किया जाय और उनके तथा प्रजा के बीच इस बारे में कोई भेदभाव न बरता जाये ताकि जागीरदार अपने हथियारों का मनमाना उपयोग करके शांति और व्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न न कर सकें।

(८) चण्डावल, लाडनू और रोरू आदि जागीरों में जागीरदारों द्वारा की गई ज्यादतियों, राजवन्दियों के साथ हुआ दुर्व्यवहार और १९ जून के बाद सभाओं पर हुए लाठी चार्ज और दूसरी ज्यादतियों की जांच पड़ताल की जाय।

गांधीजी ने इन लोगों का औचित्य स्वीकार किया और तीन अगस्त, सन् १९४२ को लिखा: "इन मांगों में ऐसी कोई बात नहीं है, जिस पर किसी को कोई एतराज हो सके, इसमें कोई व्यर्थ की बात भी नहीं है। इसमें राजस्थानी रियासतों की मर्यादा का ध्यान रखा गया है। उन्हीं मांगों की पूर्ति के लिए श्री जयनारायण व्यास और उनके साथी आज जेल के अन्दर बन्द हैं और श्री बालमुकुन्द बीसा को अपनी जान गंवानी पड़ी है। यही वजह है कि बहुत से जोधपुरियों ने, जिनमें स्त्रियां भी शामिल है, सविनय अवज्ञा करने का निश्चय किया है, जो जोधपुर के लिए एक अनोखा दृश्य है। मैं आशा करता हूं कि जोधपुर दरबार लोक परिषद की इन मामूली मांगों को मन्जूर कर लेंगे। मैं यह भी आशा करता हूं कि जोधपुर की जिस प्रजा ने कष्ट सहन द्वारा अपने ध्येय को प्राप्त करने का निश्चय किया है, वह उस वक्त तक दम न लेगी जब तक वह अपने तात्कालिक ध्येय को सिद्ध न करलें।"

इसके बाद ब्रिटिश भारत में आजादी की जंग छिड़ गई और जोधपुर की लड़ाई भी इसके साथ लम्बी खिची। रियासती समस्या का निपटारा भी आजादी की जंग के फैसले पर निर्भर करता था। अन्त में कांग्रेस के नेता जेलों से छूटे तो उसके आसपास लोक परिषद के नेता और कार्यकर्त्ता भी रिहा हुए। जोधपुर में लोकप्रिय मंत्री मण्डल की स्थापना हुई और आजादी के बाद जोधपुर रियासत अन्य रियासतों की तरह संयुक्त राजस्थान में विलीन हो गई। जागीरें भी खत्म हुईं और राजा-महाराजाओं ने प्रजा के हक में अपनी सत्ता छोड़ दी। गांधीजी ने भविष्यवाणी की थी कि राजा-महाराजा प्रजा के सेवक बन कर रहें अन्यथा उनका अस्तित्व मिट जायगा। गांधीजी की यह भविष्यवाणी सोलह आना सत्य सिद्ध हुई। इतिहास इस बात का साक्षी रहेगा कि गांधीजी ने अंग्रेजी भारत के साथ साथ देशी राज्यों की प्रजा को मुक्ति की राह बताई और अपनी मंजिल तक पहुँचाने में उसे अपना शक्तिशाली समर्थन प्रदान किया।

१२

मेवाड़ प्रजामंडल

मेवाड़ राजस्थान की एक प्राचीन रियासत थी । इस रियासत के राजवंश में कुम्भा, सांगा, हमीर और प्रताप जैसे प्रतापी और शूरवीर राजा हुए । जब राजस्थान के दूसरे राजाओं ने मुगल सम्राटों की अधीनता स्वीकार करली थी, तब भी राणा प्रताप ने अपने राज्य को स्वतंत्रत रखने के लिए जीवन भर संघर्ष किया और स्वतंत्रता प्रेमियों के प्रेरणा स्रोत बन गये ।

किन्तु समय के परिवर्तन के साथ मेवाड़ रियासत भी सामन्तवाद का मजबूत दुर्ग बन गई । राजाओं और उनके सामन्तों ने प्रजा-जन के अपने मुख्य दायित्व को भुला दिया । ब्रिटिश संरक्षण मिल जाने के बाद उन्हें प्रजा के सहयोग और समर्थन की कोई आवश्यकता नहीं रह गई । प्रजा का खुले आम दोहन और शोषण होने लगा । मनमाने टैक्स वसूल किये जाने लगे और बैठ-बेगार ली जाने लगी । प्रजा जुल्म और अत्याचारों की शिकार हो गई । उसे आह और फरियाद करने की स्वतंत्रता भी नहीं रह गई ।

इस सामन्ती, जुल्म, शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध मेवाड़ रियासत के बिजोलियां, बेगूं, भैंसरौड़गढ़, बोराव, पांगड़मऊ, पारसोली, मोमट आदि क्षेत्रों में तीव्र और व्यापक जन-आन्दोलन हुए । लोग हजारों की

स्व० माणिक्यलाल वर्मा

तादाद में पकड़े गये । उन्हें मारपीट और व्यापक यातनायें सहन करनी पड़ीं । गोलियां और लाठियां खानी पड़ीं । इन जन-आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लूट-खसोट से मुक्ति पाना था । स्वर्गीय श्री विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में विजोलियां (ऊपरमाल) के किसानों ने इस दिशा में सबसे पहले कदम उठाया और लगानवन्दी और सत्याग्रह के अस्त्र का सफल प्रयोग किया।

किन्तु नागरिक स्वतंत्रता और राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति का आन्दोलन सन् १९३८ में मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना के साथ शुरू हुआ। प्रजामण्डल महाराणा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन की स्थापना के उद्देश्य को लेकर गठित किया गया था। प्रजामण्डल की स्थापना पहले श्री माणिक्यलाल वर्मा ने की, जो मेवाड़ के जन-आन्दोलनों में प्रमुख भाग ले चुके थे। उन्होंने इन आन्दोलनों में बहुत कष्ट झेले थे और उन्होंने मेवाड़ में राजनीतिक अधिकारों के लिए होने वाले संघर्ष का भी नेतृत्व किया । मेवाड़ के तत्कालीन शासकों के दिमाग दकियानूसी विचारों से ओत-प्रोत थे। उन्होंने प्रजामण्डल की स्थापना का यह अर्थ लगाया कि उसके कार्यकर्ता महाराणा के हाथ से उनका राज्य छीनने का प्रयत्न कर रहे हैं । वह प्रजा के संगठन बनाने, लिखने और बोलने के प्राथमिक नागरिक अधिकार स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। प्रजामण्डल की स्थापना के साथ ही राज्य ने उस पर कानूनी रोक लगा दी । प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं के पास इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया कि राज्य की निषेधाज्ञा की अवहेलना करते और राज्य के दमन का मुकाबला करते । नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह का रास्ता अपनाया गया। किन्तु राज्य ने कानून को उठाकर ताक में रख दिया।

१४ दिसम्बर १९३८ और २ फरवरी १९३९ को दो उल्लेखनीय घटनायें घटित हुईं। ये घटनायें उस जगह हुईं जहां मेवाड़ रियासत और अंग्रेजी इलाके की सीमायें मिलती थीं। मेवाड़ प्रजामण्डल के एक कार्यकर्त्ता श्री मथुराप्रसाद वैद्य देवली के ब्रिटिश इलाके में प्रजामण्डल का प्रचार कर रहे थे। उस दिन रास्ते के एक पुल पर, जहां से मेवाड़ का इलाका १२ गज के फासले पर था, श्री मथुराप्रसाद वैद्य परमेवाड़ के ऊंचा थाने के दो सिपाहियों ने अचानक हमला किया। एक ने उनके पास के साहित्य को छीन कर वहीं जला दिया। दूसरे ने उन्हें जमीन पर पटका और दोनों सिपाही अर्द्ध-बेहोशी की हालत में उन्हें घसीटते हुए नजदीक के मेवाड़ के इलाके में ले गये और गिरफ्तार कर लिया। ऊंचा

थाना ले जाते हुए उनके साथ मारपीट की गई। बाद में उन्हें नौ महिना सख्त कैद की सजा दे दी गई।

मेवाड़ प्रजामण्डल के मंत्री श्री माणिक्यलाल वर्मा के साथ भी यही घटना दुहराई गई। वे २ फरवरी १९३९ को कुछ कार्यकर्त्ताओं के साथ परामर्श करने के लिए देवली गये थे। शाम के समय कस्बे की सीमा पर मेवाड़ पुलिस के १५ आदमियों ने उन पर और उनके चार दूसरे साथियों पर यकायक लाठियों से हमला किया। पांचों बुरी तरह घायल हुए। मेवाड़ पुलिस के आदमी माणिक्यलालजी को कांटों और झाड़ियों में घसीटते हुए मेवाड़ के इलाके में ले गये, जो वहां से कम से कम एक सौ गज के फासले पर था। देवली की ब्रिटिश पुलिस को खबर की गई, मगर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। मेवाड़ के शासक इस प्रकार प्रजा-मण्डल के मुख्य कर्णधार को जेल में डालने में कामयाब हुए।

गांधीजी ने इन दोनों घटनाओं का विवरण 'हरिजन सेवक' में प्रकाशित किया और उस पर टिप्पणी करते हुए लिखा :—

"यह खबर सच है तो बड़ी अजीब है। यह समझ में नहीं आता कि मेवाड़ पुलिस ने उन कार्यकर्त्ताओं को मेवाड़ के इलाके में ही क्यों नहीं गिरफ्तार किया। हर हालत में ये गिरफ्तारियां मुझे गैर-कानूनी मालूम देती हैं। घसीटना तो हमला ही हुआ। इस बारे में सिर्फ यही सलाह दे सकता हूं कि यह तो मुकदमा चलाने लायक मामला है, अतः प्रजा-मण्डल को इसकी कार्यवाही करनी चाहिए।

"लेकिन रियासतों में सविनय अवज्ञा करने वालों को यह याद रखना चाहिए कि असली लड़ाई तो अभी आने वाली है। छोटी बड़ी सभी रियासतें एक ही नीति पर चल रही मालूम पड़ती हैं। ब्रिटिश भारत में सत्याग्रह आंदोलन के समय अंग्रेजों ने जो उपाय अख्तियार किये थे, उन्हीं की वे नकल कर रहीं है, बल्कि उनकी भीषणता में शायद और आगे बढ़ेगीं। वे समझती हैं कि हमें लोकमत का तो डर है नहीं, कारण विरले मामलों को छोड़कर रियासतों में कोई लोकमत होता ही नहीं। किन्तु सच्चे सत्याग्रही किसी भी भीषणता से परास्त नहीं होंगे।"

एक और प्रसंग में गांधीजी ने लिखा : "मैंने मेवाड़ के बारे में एक हैरत में डालने वाली खबर प्रकाशित की है। मैं चाहूंगा कि या तो इस

खबर का प्रामाणिक रूप से प्रतिवाद किया जाए या मेवाड़ पुलिस ने उसे दी हुई हिदायत की परवाह न कर मनमानी की हो तो उसके खिलाफ सख्त कार्यवाही की जाए।"

किन्तु मेवाड़ रियासत को न प्रतिवाद करना था और न उसने किया ही। प्रजामण्डल का सत्याग्रह चलता रहा और गिरफ्तारियां होती रहीं। प्रजा-मण्डल की ओर से एक प्रतिनिधि मण्डल जिसमें इन पंक्तियों का लेखक और श्री प्रेमनारायण माथुर शामिल थे, गांधीजी से मिलने वर्धा गये। उस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक भी हो रही थी और कांग्रेस अध्यक्ष श्री सुभाष चन्द्र बोस और पं० जवाहरलाल नेहरू भी वर्धा में ही मौजूद थे। गांधीजी ने प्रतिनिधि मण्डल का बयान ध्यान से सुना। गांधीजी का खयाल था कि रियासती प्रजा को राजनीतिक अधिकारों की अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी होगी। अवश्य ही कांग्रेस उसे अपना नैतिक समर्थन देगी। गांधी जी का यह विश्वास था कि जो दमन के बावजूद अविचल रहेगी, अंत में वह अपना लक्ष्य प्राप्त करके रहेगी। कांग्रेस अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस को भी प्रजा मण्डल के प्रतिनिधि मण्डल ने स्मरण पत्र दिया। उन्होंने यह कह कर संतोष कर लिया कि आपने महात्मा गांधीजी से पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर लिया है और उससे अधिक वह क्या कह सकते हैं। उस समय मेवाड़ रियासत के प्रधान अमात्य सर सुखदेव प्रसाद के पुत्र धर्मनारायण काक थे। पं. जवाहरलाल नेहरू से जब प्रजा मण्डल का प्रतिनिधि मण्डल मिला तो उन्होंने यह स्मरण किया कि धर्मनारायण केम्ब्रिज में उनके सहपाठी हैं और वह उन्हें निजी पत्र लिख सकते हैं किन्तु नेहरूजी को यह भरोसा नहीं था कि उसका कोई परिणाम निकलेगा।

जब गांधीजी के निर्देश पर त्रावणकोर, हैदराबाद, जयपुर, आदि रिया-सतों में सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया तो मेवाड़ प्रजा मण्डल का सत्याग्रह भी स्थगित कर दिया गया। मेवाड़ में प्रधानमंत्री के पद पर श्री राघवाचार्य नाम के उदार चेता व्यक्ति आसीन हुये। उन्होने मेवाड़ के प्रशासन को समयानुकूल मोड़ दिया और मेवाड़ प्रजामण्डल को भी काम करने की स्वतंत्रता दे दी। प्रजामण्डल उसके बाद वैधानिक संगठन के रूप में काम करने लगा।

गांधीजी ने प्रत्यक्ष रूप से और कांग्रेस ने अप्रत्यक्ष रूप से रियासती प्रजा के आन्दोलनों का पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें बहुत बल पहुंचाया। मेवाड़ प्रजा मण्डल को भी उसका लाभ मिला।

किन्तु प्रजा मण्डल को एक आखिरी संघर्ष में और गुजरना पड़ा। जब गांधीजी की प्रेरणा पर सन् १९४२ में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आन्दोलन का सूत्रपात हुआ तो प्रजा मण्डल ने राष्ट्र के साथ कदम मिलाकर चलने का फैसला किया। गांधीजी ने रियासती प्रजा को यह सलाह दी थी कि उसे राजाओं को यह कहना चाहिए कि वे अंग्रेज सरकार से अपना सम्बन्ध विच्छेद करलें और उसे राष्ट्र-विरोधी कार्यो में कोई सहयोग न दें। मेवाड़ प्रजा मण्डल के नेताओं ने इस सलाह पर अक्षरशः अमल किया। उनका यह कार्य निश्चय ही साहस-पूर्ण था। राजाओं में यह हिम्मत कहां थी कि अंग्रेज सरकार की गुलामी के बन्धनों को तोड़ फेंकें। मेवाड़ के शासकों ने प्रजा मण्डल की इस भक्तिपूर्ण मांग को एक चुनौती के रूप में लिया और उसके नेताओं तथा कार्यकर्त्ताओं को एक साथ पकड़ कर जेलों में बन्द कर दिया। दमन के इस चक्र का अन्त तब हुआ जब देश की राजनीति में नया मोड़ आया और अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस के नेताओं को सत्ता हस्तान्तरण के लिए बातचीत शुरू की। जब सत्ता हस्तान्तरित हुई तो देश का नक्शा ही बदल गया। मेवाड़ में भी लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई और अन्त में मेवाड़ का महान राजस्थान में विलय हुआ और आज रियासती निरंकुशता और सामन्तवाद स्वप्न की वस्तुएं बन कर रह गईं। जहां गांधीजी ने देश को मुक्ति का मार्ग दिखाया, वहां उन्हे रियासती प्रजा के भी मुक्तिदाता के रूप में स्मरण किया जायेगा

जब तक अपने को शून्यवत् नहीं कर लेते, तब तक हम अपने अंदर की बुराइयों पर विजय नहीं पा सकते।

सीकर कांड के सिलसिले में जमनालालजी की सीकर यात्रा

१३
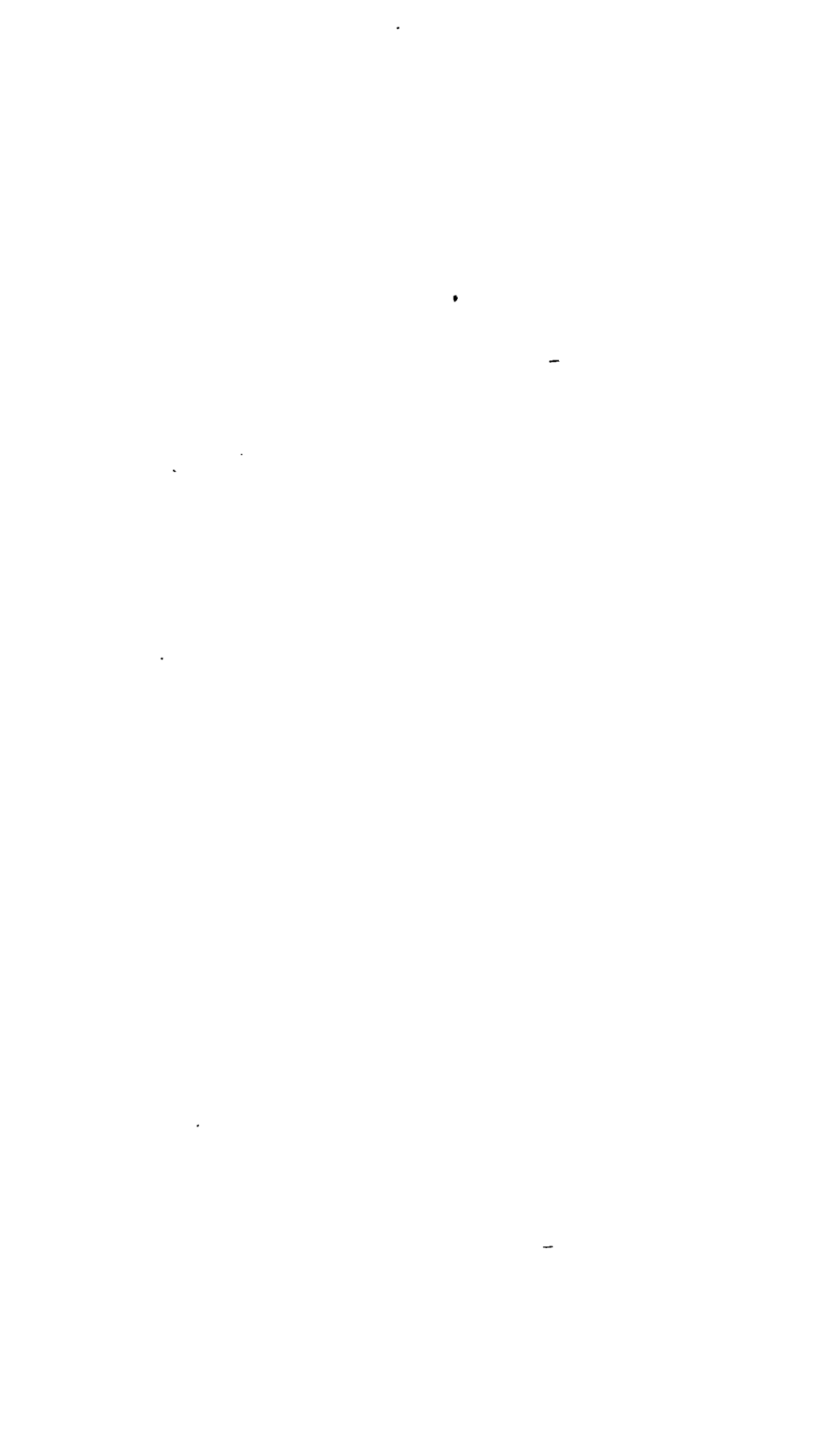
सीकर प्रकरण

सीकर जयपुर के अन्तर्गत दस-बारह लाख रुपया वार्षिक आय का एक ठिकाना था और यहां के रावराजा को शासन के काफी अधिकार प्राप्त थे। हम यह कह चुके हैं कि जमनालालजी सीकर के एक गांव में पैदा हुए थे। सीकर के साथ उनका विशेष सम्बन्ध था। सन् १९३८ में जयपुर रियासत और सीकर के रावराजा के बीच एक अत्यन्त गंभीर विवाद उठ खड़ा हुआ और भीषण रक्त-पात की आशंका उत्पन्न हो गई थी। जयपुर रियासत ने सीकर के रावराजा के सब अधिकार छीन लिये और ठिकाने का शासन प्रबन्ध पूरी तरह अपने हाथ में ले लेने का फैसला किया। उसने रावराजा को रियासत के बाहर भेज दिया और जयपुर महाराजा ने सीकर के युवराज कुंवर हरदयाल सिंह को माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध अपने साथ विलायत ले जाना चाहा। जयपुर रियासत की इस कारवाई के विरुद्ध सीकर में असंतोष का ज्वालामुखी फूट पड़ा। सीकर के गढ़ के दरवाजे बन्द कर दिये गये और रियासत के अधिकारियों को सीकर ठिकाने का रिकार्ड सौंपने से इन्कार कर दिया गया। सीकर में आम हड़ताल हो गयी जो १६ दिन तक चलती रही। सीकर के इस जन-आन्दोलन का संचालन पब्लिक की एक कमेटी कर रही थी। सीकर राव राजा ने यह घोषणा करके कि वह सीकर का शासन प्रबन्ध जनता के प्रति-

निधियों को सौंपने को तैयार हैं, सीकर की जनता के सभी वर्गों की सहानुभूति अपनी ओर कर ली थी। विशेष कर राजपूत रावराजा के लिए मरने मारने को उत्सुक हो गये थे। आस-पास के गांवों से सशस्त्र राजपूत सीकर आ रहे थे। इधर जयपुर रियासत ने भी सेना और पुलिस सीकर भेज दी थी। यह आशंका थी कि अगर शस्त्र संघर्ष हुआ तो काफी रक्तपात होगा।

जब सीकर के इस गम्भीर संकट के समाचार जमनालालजी के पास पहुँचे तो उन्होने गांधीजी और सरदार पटेल से परामर्श किया और सीकर जाने का फैसला किया। जमनालालजी उस समय जयपुर प्रजा मण्डल के भी अध्यक्ष थे। किन्तु सीकर के इस आन्दोलन के साथ प्रजा मण्डल का कोई वास्ता नहीं था। जयपुर के अधिकारी नहीं चाहते थे कि जमनालालजी सीकर जाएं, किन्तु फिर भी वह सीकर पहुँचे और उन्होंने सारी स्थिति का अध्ययन करके जन-आन्दोलन को सशस्त्र संघर्ष से हटा कर शान्ति पूर्ण और वैधानिक रूप देने की कोशिश की, किन्तु इसमें उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली। जयपुर रियासत और सीकर के रावराजा के बीच एक समझौता हुआ, किन्तु उसका ठीक तरह से पालन नहीं हुआ। यद्यपि युवराज को विलायत ले जाने का विचार छोड़ दिया गया, किन्तु अपने माता-पिता के पास फिर भी जाने नहीं दिया गया। सीकर रावराजा जब जयपुर महाराजा से मिलने आये तो उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ। इससे सीकर के लोगों ने समझा कि उनके साथ धोखा हुआ और संघर्ष की नौबत फिर पैदा हो गई।

अन्त में सीकर में गोली-काण्ड हुआ। २० व्यक्ति जान से मारे गये, और कई घायल हुए। कुछ लोग गिरफ्तार भी किये गये। कुछ सशस्त्र राजपूत रेलगाड़ी से सीकर पहुंचे। उनसे हथियार रख देने को कहा गया और जब उन्होंने इन्कार किया तो इनके डिब्बे पर गोली चलाई गई जिसमें ६ व्यक्ति मारे गये। सीकर शहर में भी दो बार गोली चली जिसमें ६ व्यक्ति मारे गये। गोली चलने से भारी आतंक छा गया। कर्फ्यू लगा दिया गया और फौजी तैनात कर दिये गये। लोगों ने मकानों की छतों पर मोर्चे बना लिये। ऐसा दिखाई देने लगा कि बड़े पैमाने पर रक्तपात होगा। जमनालालजी ने फिर सीकर की स्थिति पर गांधीजी और सरदार वल्लभ भाई पटेल से परामर्श किया और रक्तपात को रोकने की दृष्टि से सीकर के लिए रवाना हुए। उन्होंने वहां जाकर गोली-काण्ड के स्थान देखे। सारे शहर को फौज ने घेर रखा था। लोग चाहते थे कि समझौता हो जाय तो अच्छा। जमनालालजी ने जयपुर जाकर महाराजा से भेंट की और उनसे अनुरोध किया कि उन्हें

स्वयं सीकर जाकर लोगों को आश्वस्त करना चाहिए। यद्यपि उनके अंग्रेज प्रधान मंत्री सर वीचम को यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया, किन्तु महाराजा सीकर गये और इससे सामान्य स्थिति कायम होने में मदद मिली। रियासत ने आम माफी की घोषणा करदी। केवल जिन लोगों को गिरफ्तार किया गया उन्हें रिहा करने का और ठिकाने के कर्मचारियों को पुनः वहाल कराने का प्रश्न बाकी रहा। रावराजा के अधिकारों का प्रश्न कानूनी निर्णय के लिए छोड़ दिया गया। इस प्रकार सशस्त्र संघर्ष में सैंकड़ो लोगों के मारे जाने की सम्भावना खत्म हुई और इस सम्भावना को टालने में जमनालालजी के प्रयत्नों का वड़ा योग रहा।

सीकर प्रकरण में कांग्रेस कार्य समिति ने भी दिलचस्पी ली। एक समय था जब कांग्रेस अपने को रियासती मामलों से दूर रखती थी। उदाहरण के के लिए सन् १९२५ में अलवर रियासत के नीमूचाणा में हत्याकाण्ड हुआ था उसकी जांच कराने के लिए जमनालालजी ने कांग्रेस कार्यसमिति के सामने एक जांच समिति नियुक्त करने प्रस्ताव रखा, किन्तु यह कहा गया कि कांग्रेस की परम्परा देशी रियासतों के मामले में हस्तक्षेप न करने की रही है और इस अच्छी परम्परा को तोड़ना नादानी होगी। इस पर जमनालालजी ने अपने प्रस्ताव पर जोर नहीं दिया। किन्तु १४ वर्ष वाद, सन् १९३८ में जमनालालजी ने सीकर प्रकरण के वारे में अपनी रिपोर्ट कांग्रेस कार्यसमिति के सामने रखी और उससे इस वारे में कोई प्रस्ताव स्वीकार करने का भी अनुरोध किया। आखिर कांग्रेस कार्यसमिति ने गांधीजी की उपस्थिति में यह प्रस्ताव स्वीकार किया :—

"जयपुर सीकर के झगड़े के सम्बन्ध में समझौता होने की खबर कमेटी ने सेठ जमनालालजी वजाज से सुनी और कमेटी इसके लिए जनता को बधाई देती है कि उसने सशस्त्र मुकावले का विचार त्याग अहिंसात्मक उपायों को ग्रहण किया जिससे रक्तपात का निवारण हुआ। कार्य समिति को इस पर दुख है कि ४ जुलाई को सीकर में गोलियां चलने के कारण व्यर्थ कुछ मनुष्यों की जानें गईं। मृतकों के परिवार से कमेटी अपनी सम्वेदना जाहिर करती है।

कार्य समिति को यह आशा है कि भविष्य में सीकर की जनता से व्यवहार करने में जयपुर अधिकारी सद्‌भाव से काम लेंगे ताकि राज्य, रावराजा और सरकार की जनता में पुनः मैत्री भाव जागृत हो जायें।"

१४

अजमेर का झंडा प्रकरण

अजमेर में सन् १९४० में राष्ट्रीय सप्ताह के दौरान एक खादी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी के लिए जमीन म्युनिसिपल कमेटी ने दी थी। प्रदर्शनी की जमीन से लगी एक पुरानी बुर्ज खड़ी थी। प्रदर्शनी के आयोजकों ने इस बुर्ज पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया था। झण्डा फहराने की रस्म दिल्ली की कांग्रेसी नेता श्रीमती पार्वती देवी डीडवानिया ने अदा की थी। प्रदर्शनी राजस्थान चर्खा संघ ने लगाई थी और सेठ जमनालालजी ने उसका उद्‌घाटन किया था। अजमेर के कांग्रेसजनों ने भी प्रदर्शनी के आयोजन में सहयोग दिया था। अजमेर के अंग्रेज हुक्काम की निगाह में राष्ट्रीय झण्डा खटका और उन्होंने प्रदर्शनी के मन्त्रियों को उसे उतार देने का आदेश दिया। बहाना यह किया गया कि चूंकि झण्डा किले की बुर्ज पर फहराया गया है और उससे सम्राट के प्रजा-जनों को क्षोभ हुआ है, अतः उसे एक घण्टे के भीतर उतार लिया जाना चाहिए। प्रदर्शनी के मन्त्रियों ने इस आदेश का पालन नहीं किया तो पुलिस ने अपने हाथों से उस झण्डे को उतार दिया। प्रदर्शनी के साथ एक सभा-मंच भी बनाया गया था और वहां भाषण कराने की व्यवस्था भी की गई थी। झण्डे को उतारे जाने पर कार्यकर्त्ताओं के सामने एक धर्म-संकट पैदा हो गया। वे सरकारी आदेशों की अवहेलना कर सकते थे और

गिरफ्तारी को निमन्त्रण दे सकते थे । किन्तु उन्होंने इस बारे में गांधीजी से परामर्श लेना आवश्यक समझा । गांधीजी उस समय यह नहीं चाहते थे कि सरकार से संघर्ष छेड़ा जाए । उन्होंने कार्यकर्त्ताओं को संयम से काम लेने की सलाह दी । किन्तु साथ ही एक से अधिक बार 'हरिजन' पत्र में इस प्रकरण की चर्चा की । उन्होंने कड़े शब्दो में अंग्रेज कमिश्नर की झगड़ा पैदा करने वाली कार्यवाही की निन्दा की और सरकार तथा कांग्रेस के बीच शान्ति बनाये रखने के लिए उसे बर्खास्त कर देने तक की मांग की ।

गांधीजी ने १६ अप्रेल १९४० को अजमेर की घटनाओं का विवरण देते हुए लिखा था : "अजमेर की घटनायें भय-सूचक हैं । वहां से जो खबरें मिली हैं उनकी सच्चाई में संदेह करने की कोई वजह मेरे पास नहीं है । अगर म्युनिसिपल कमेटी की इजाजत से प्रदर्शनी का प्रबन्ध किया गया तो झण्डे के साथ जो दस्तन्दाजी की गई, वह बिल्कुल गैर-कानूनी है । इस गैर-कानूनी दस्तन्दाजी के सिवा भी झण्डे का उतारा जाना निहायत भड़काने वाली कार्यवाही थी । इस तरह की अपमानजनक कार्यवाही का नतीजा कुछ का कुछ हो सकता है । मेरी राय में यह एक ऐसा मामला है जिसकी जांच केन्द्र को करनी चाहिए । मुझे उम्मीद है कि केन्द्रीय सरकार संघर्ष को भड़काना नहीं चाहती । लेकिन अगर अजमेर जैसी घटनायें दोहरायी जायेंगी तो संघर्ष का बढ़ना बहुत सम्भव हो सकता है । ऐसी कोई अवांछनीय बात हुई तो यह दुख की बात होगी ।"

गांधीजी ने बताया कि प्रदर्शनी के प्रबन्धकों ने उनकी सलाह मांगी और उन्होंने उनकी आशा के विपरीत कार्यकर्त्ताओं को हुक्म मानने की सलाह दी । उन्होंने यह सलाह क्यों दी, इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा था :—

"साधारणतः ऐसे हुक्मों को भंग करने की सलाह देने में मुझे एक क्षण का भी संकोच नहीं होगा । मैं राष्ट्रीय झण्डे का जनक हूं । यह झण्डा एकता और अहिंसा का प्रतीक है और इस बात का सूचक है कि चरखे के द्वारा अमीर से अमीर लोग गरीब से गरीब लोगों के साथ घुलमिल सकते हैं । इसलिए झण्डे का अपमान भारतीयों की छाती में गहरा घाव किये बिना नहीं रह सकता । लेकिन आज एकता का पता नहीं है । मुस्लिम लीग खुल्लम-खुल्ला झण्डे का विरोध करने लगी है । जो उसका सम्मान करते हैं, वे भी उसके अधिकृत अर्थों को स्वीकार नहीं करते और राष्ट्र इस समय महान् युद्ध के

लिए तैयार हो रहा है। ऐसी हालत में मैंने यह महसूस किया कि इस मौके पर सबसे अच्छी बात यह होगी कि अपमान का जवाब देने की भावना को दबाया जावे। मैंने यह भी अनुभव किया कि इस संयम से अजमेर के कार्यकर्त्ताओं के अनुशासन की भी परीक्षा हो जायगी। सारे देश के लिए यह अहिंसा के शास्त्र का एक सवक बन सकेगा और इससे केन्द्रीय सरकार को भी मौका मिलेगा कि वह पुलिस की उस मनमानी दस्तन्दाजी का प्रतिकार करे, जिसका परिचय उसने कांग्रेस की साधारण शान्तिपूर्ण और अराजनीतिक प्रवृत्ति को दबाकर दिया है। प्रदर्शनी का आने वाली लड़ाई के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। कार्यकर्त्ताओं ने मेरी सूचनाओं को तुरन्त मान लिया, इसके लिए मैं उनको बधाई देता हूँ। "अनुशासन पालन की अपनी शक्ति का परिचय देकर उन्होंने कांग्रेस की शक्ति को बढ़ाया है।"

गांधीजी का यह लेख प्रकाशित होने के बाद अजमेर के कमिश्नर ने एक बयान प्रकाशित किया, जिसमें अजमेर के कार्यकर्त्ताओं की हर बात का खण्डन किया गया था। इस पर गांधीजी ने कार्यकर्ताओं से अपने इल्जामों के प्रमाण मांगे। कार्यकर्त्ताओं ने तुरन्त गांधीजी को हर आरोप के पक्ष में प्रमाण भेजे और उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। उन्होंने सिद्ध किया कि जिस बुर्ज पर झण्डा फहराया गया था, वह सुरक्षित इमारत का भाग नहीं है। वह म्युनिसिपल कमेटी के अधिकार में थी और उसने उसे गिरा देने का प्रस्ताव किया था। यह भी सिद्ध किया गया कि म्युनिसिपल कमेटी ने प्रदर्शनी के लिए जमीन दी थी। उसमें मुसलमान मेम्बर भी थे। किसी ने झण्डा फहराने पर आपत्ति नहीं की। झण्डा फहराने के लिए पहले से इजाजत लेने का कोई सवाल नहीं था। गांधीजी को यकीन हो गया कि अजमेर के कमिश्नर के मन में कांग्रेस के खिलाफ गहरा पूर्वाग्रह है। उन्होंने उसकी भर्त्सना करते हुए लिखा:—

"अक्सर अधिकारियों को जनता के लगाये इल्जामों का इन्कार करते देखा गया है, किन्तु जिस बेहयाई से अजमेर के कमिश्नर ने घटनाओं की तोड़-मरोड़ की है, उसे मात करना कठिन होगा। कमिश्नर की इस कार्यवाही ने अंग्रेज सरकार की कीर्ति को बढ़ाया नहीं है। अगर कोई घटना सविनय अवज्ञा के लिए माकूल और स्पष्ट कारण मानी जा सकती है तो अजमेर का किस्सा एक ऐसी घटना है। मगर मैं अपना हाथ थामे हुए हूँ, क्योंकि आज का वायुमण्डल मैला है और मैं देश को लड़ाई में लुढकाना नहीं चाहता।

अच्छा ही हुआ कि अजमेर के कार्यकर्त्ताओं ने जवर्दस्त उत्तेजना के वावजूद शांति रखी । केन्द्रीय सरकार को इस घटना की तरफ अच्छी तरह ध्यान देना चाहिए । मेरी राय में अजमेर के कार्यकर्ताओं को पूरा न्याय देने के लिए अजमेर के कमिश्नर को उनके ऊंचे पद से हटा देना चाहिए ।

"यह दलील दी जा सकती है कि अजमेर के कमिश्नर दूसरे अधिकारियों से वदतर नहीं है । दूसरे इससे भी वुरे काम कर डालते हैं और कोई पूछता तक नहीं । यह वात ठीक है । वहुत से चोर उनके खिलाफ काफी सवूत न मिलने के कारण छूट जाते हैं, मगर जव कोई चोरी करता हुआ पकड़ा जाए तो उसका फैसला करके पीड़ित प्रजा को संतोष देना ही चाहिए । लार्ड कर्जन में भारी त्रुटियां थीं, किन्तु उनका विश्वास था कि न्याय तो होना ही चाहिए । इसलिए जव किसी घटना का सवूत उन्हें मिल जाता था, वह फौरन सख्त कदम उठाने में संकोच नहीं करते थे । मैं मानता हूं कि कांग्रेस और अंग्रेज सरकार दोनों ही सविनय अवज्ञा की लड़ाई को रोकना चाहते हैं । मगर जव कांग्रेस को सविनय भंग अनिवार्य लगने लगेगा और, वशर्ते कि उसकी लड़ाई लड़ने की तैयारी हुई, तो वह सविनय आज्ञा भंग करने पर मजवूर हो जायगी । मैं उस वक्त को टालने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूं । लेकिन वड़े अधिकारी अजमेर के कमिश्नर की चाल से चलेंगे तो मेरा कोई भी प्रयत्न ज्वाला को चमक उठने से नहीं रोक सकेगा ।"

गांधीजी की इन चेतावनियों का अजमेर के तानाशाह अंग्रेज अफसरों पर कोई खास असर नहीं हुआ । अजमेर के कमिश्नर ने उत्तेजना की शृंखला में एक कड़ी और जोड़ दी । अजमेर के कांग्रेसजनों ने म्युनिसिपल टाउन हाल के मैदान में मासिक झण्डा अभिवादन करने की घोषणा की, किन्तु अजमेर के कमिश्नर ने मनाही हुक्म जारी कर दिया । अजमेर के कार्यकर्त्ताओं ने फिर गांधीजी से सलाह मांगी और गांधीजी ने संघर्ष को टालने के लिए कार्यकर्त्ताओं को सलाह दी कि वे न केवल टाउन हाल के मैदान में वल्कि अन्यत्र भी झण्डाभिवादन न करें । गांधीजी ने कमिश्नर की मनाही आदेश पर लिखा कि यह शंकास्पद है कि कमिश्नर को म्युनिसिपल मैदान के उपयोग के वारे में ऐसा हुक्म देने का अधिकार था या नहीं, किन्तु उससे यह जरूर प्रकट होता है कि अजमेर के कमिश्नर कांग्रेस से रुष्ट हैं । गांधीजी ने कहा कि वह लड़ाई को रोकने की कोशिश कर रहे हैं और इसलिए उन्होंने कार्यकर्त्ताओं को सरकारी हुक्म की अवहेलना न करने की सलाह दी है, किन्तु अगर कमिश्नर ने लड़ाई मोल लेना ही ठान रखा है तो जव तक लड़ाई न छिड़े उन्हें संतोष थोड़े ही होने वाला है ।

खादी प्रदर्शनी के मन्त्री श्री कृष्णगोपाल गर्ग इस मामले में प्रत्यक्ष में गांधीजी से बातचीत करने के लिए सेवाग्राम गये थे। पुलिस ने प्रदर्शनी के मंत्रियों को झण्डा उतारने का आदेश दिया था और उन्होंने उसका पालन नहीं किया था। इसलिए उनके मनमें धुकधुकी थी कि गांधीजी इस पर क्या कहेंगे। गांधीजी का यह आम निर्देश था कि कोई कांग्रेसजन उनसे पूछे बिना सरकारी आदेशों की अवज्ञा न करें। अजमेर के कार्यकर्त्ताओं को जब झण्डा उतारने का आदेश मिला तो गांधीजी से परामर्श करने जितना समय उनके पास नहीं था। अधिकारियों ने अवधि ही बहुत थोड़ी दी थी। गांधीजी ने श्री गर्ग को भोजन के लिए अपने पास बिठाया और अपनी थाली में से एक आम उन्हें दिया। उन्होंने कहा कि अनुशासन का भंग तो हुआ है, किन्तु जो परिस्थितियां थीं, उनको देखते हुए वह इसे दरगुजर करने को तैयार हैं। पुलिस ने प्रदर्शनी के मन्त्रियों पर मुकदमा चला दिया, उसमें गांधीजी ने उन्हें बचाव करने की सलाह दी। श्री गर्ग सेवाग्राम से बापू के प्रेम की अनुभूति लेकर लौटे। गांधीजी ने श्री गर्ग को भूलाभाई देसाई के नाम एक पत्र दिया जिसमें उन्हें कानूनी सहायता देने का अनुरोध किया था। श्री भूला भाई अस्वस्थ हो गये। अतः श्री गर्ग ने श्री बा० गो० खेर की सहायता प्राप्त की। उनके परामर्श से जो वक्तव्य तैयार किया गया, वह बापू के पास भेजा गया था। बापू ने वक्तव्य को पसन्द किया और अपने आशीर्वाद भेजे। अजमेर के अंग्रेज हाकिमों ने प्रदर्शनी के मंत्रियों को तीन-तीन महीने की सजा देकर ही संतोष माना। इतने पर भी उनके प्रतिशोध की भावना शान्त नहीं हुई। जेल में उनको 'सी' श्रेणी में रखा गया और चक्की पीसने की मशक्कत दी गई। श्री कृष्णगोपाल तो कमजोर स्वास्थ्य के कारण चक्की पीसते समय जेल में मूर्छित भी हो गये थे।

अजमेर की इस घटना से यह प्रकट है कि गांधीजी जरूरी होने पर बड़ी से बड़ी उत्तेजना के अवसर पर भी कितना संयम रखते थे और कार्यकर्त्ताओं के लिए अनुशासन को कितना महत्व देते थे। साथ ही धर्म-संकट में किस तरह उनको सहारा देते थे। किसी मामले की बारीक से बारीक बात भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो सकती थी।

१५

सिरोही का संघर्ष

सिरोही राजपूताना की एक छोटी-सी रियासत थी। उसकी आबादी दो लाख से कुछ कम और वार्षिक आय करीब दस लाख रुपया थी। सन् १९२१–२२ में रियासत की आदिवासी प्रजा, भील-गरासियों में, जबर्दस्त हलचल पैदा हुई थी। रियासत की जुल्म-ज्यादतियों और आर्थिक शोषण के विरुद्ध आदिवासी संगठित होकर उठ खड़े हुए थे और बेठ–बेगार करने और बढ़ा हुआ लगान देने से इन्कार कर दिया था। उनका दमन करने के लिए फौजी ताकत का इस्तेमाल किया गया। गोली चली और भीलों के दो गांव जलाकर राख कर दिये गये।

जब रियासतों में नागरिक अधिकारों और उत्तरदायी शासन की हलचल आरम्भ हुई तो सिरोही भी उससे अछूती नहीं रह सकी। सिरोही में भी प्रजामण्डल की स्थापना हुई। रियासती हाकिमों ने अन्य रियासतों की भांति सिरोही में भी दमन चक्र चलाया। श्री गोकुलभाई भट्ट ने, जो बम्बई में कांग्रेस आन्दोलन में हिस्सा ले चुके थे, सिरोही में ८ सितम्बर १९३९ की घटना के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण गांधीजी के पास लिख कर भेजा था :—

"८ सितम्बर की घटनाओं ने इस दिन को सिरोही की प्रजा के लिए स्मरणीय बना दिया है। एक सार्वजनिक सभा पर पुलिस यकायक चढ़

आई। उसने प्रजामण्डल के झण्डे को खींचना शुरू किया और लाठियां चलाईं। जो झण्डा खींचा गया, वह राष्ट्रीय नहीं था। गत फरवरी में जब रेजीडेन्ट मि० लोथियन सिरोही आये थे, तो उन्होंने सुझाया था कि अपने दफ्तर, जुलूसों और सभाओं में प्रजामण्डल के झण्डे का उपयोग कर सकते हैं। इसके अनुसार हम कर रहे थे। ३ सितम्बर को दीवान साहब ने जुलूसों में इसके इस्तेमाल की मनाही कर दी। उस हुक्म की अवज्ञा से बचने की खातिर हमने जुलूस का विचार ही छोड़ दिया। लेकिन सभाओं में उसके इस्तेमाल की कोई मनाही नहीं थी, इसलिए हमने अपनी सभा में उसे रखा। अचानक पुलिस बड़े रोब-दाब के साथ वहां आ धमकी और बिना किसी चेतावनी या बिना किसी हुक्म के उसने झण्डे को खींचना शुरू कर दिया। कुछ कार्यकर्त्ता उसे थामे रहे। लेकिन पुलिस की बड़ी ताकत के सामने वे उसे ज्यादा देर तक थामे नहीं रह सकते थे। उन्हें उससे अलग कर दिया। मैं उसे किसी तरह पकड़े रहा, इस-लिए पुलिस वालों ने झण्डे के साथ मुझे घसीटा। मेरी गरदन पकड़ कर मुझे मारा। इसके बाद लोगों पर अन्धाधुंध लाठी-चार्ज शुरू कर दिया। लाठी-चार्ज सात मिनट के करीब जरूर हुआ होगा। सभा अन्त तक जारी रही। इस घटना से लोगों का उत्साह नष्ट नहीं, बल्कि और बढ़ गया है। स्त्रियां भी इस आन्दोलन में वीरतापूर्वक भाग ले रही हैं।"

गांधीजी ने इस विवरण को 'हरिजन सेवक' में प्रकाशित किया और इस पर टिप्पणी भी की। उन्होंने गोकुल भाई का परिचय देते हुए लिखा : "वह सिरोही के रहने वाले हैं और एक सुयोग्य अध्यापक और वफादार कांग्रेस कार्यकर्त्ता के रूप में उन्होंने प्रसिद्धि पाई है। वह अहिंसा की भावना से ओतप्रोत हैं और हाल में सिरोही गये हैं और प्रजा के लिए प्राथमिक अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।" आगे गांधीजी ने लिखा : गोकुल भाई को वह स्वयं जानते हैं और उन्होंने जो विवरण भेजा है उस पर विश्वास न करने की कोई वजह नहीं है। सिरोही अधिकारियों के लिए यह कोई श्रेय की बात नहीं है। "सिरोही की प्रजा की शिकायतों की एक लम्बी सूची मेरे पास मौजूद है। अपनी कठिनाईयों से छुटकारा पाने के लिए वह बिल्कुल वैधानिक रूप से कोशिश कर रही है। मगर अधिकारी उन्हें दूर करने के बजाय स्पष्ट-तया लोगों की भावना को ही कुचलने का प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन यदि लोगों ने अहिंसात्मक प्रतिरोध की भावना ठीक तरह से हृदयंगम कर ली है तो लाठी चार्ज के बावजूद अन्त में सफलता निश्चित है।"

गांधीजी ने अपनी इस टिप्पणी द्वारा सिरोही प्रजामण्डल के आन्दोलन को बल पहुँचाया। रियासत की हुकूमत ने प्रजामण्डल के नेताओं और कार्य-

कर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया, किन्तु प्रजा ने हिम्मत नहीं छोड़ी और अपना आन्दोलन चलाती रही। गांधीजी ने ३० जनवरी १९४० को सिरोही की स्थिति पर एक टिप्पणी फिर लिखी। उन्होंने लिखा :—

"सिरोही से यह अच्छी खबर आई है कि पिछले वर्ष हुई प्रजामण्डल के नेताओं की गिरफ्तारी से प्रजा की हिम्मत नहीं टूटी है। वह हर महीने की २२ तारीख को पूरी धर्म-भावना से गिरफ्तारी का दिन मना रही है। सभायें, प्रभात-फेरियां, कताई और खादी-विक्री आदि होती है। यह शुभचिन्ह है कि जहां हो सकता है वहां रियासती कार्यकर्त्ता मजबूती और शान के साथ अपना संगठन करते जा रहे हैं। अगर एक तरफ से कठोर से कठोर कष्टों का मुकाबला करने की और दूसरी तरफ अहिंसात्मक लड़ाई के लिए नियम-सीमा में पूरी तरह रहने की कला सीख लेंगे, तो सब अच्छा ही होगा। सभी तरह के रचनात्मक प्रयत्नों का नतीजा यही होता है कि प्रजा को सच्ची शिक्षा मिलती है और उसका संगठन होता है।"

अन्त में गांधीजी की आशा पूरी हुई। प्रजामण्डल के नेताओं और राज्य के बीच समझौता हो गया। गांधीजी ने ४ जून १९४० को सिरोही के समझौते पर इन शब्दों में अपना संतोष व्यक्त किया :—

"कुछ दिन पहले मैंने दुखपूर्वक सिरोही की घटनाओं की टीका की थी। इसलिए यह लिखते हुए मुझे खुशी होती है कि अब राज्य और प्रजा के बीच सुलह हो गई है। राज्य और सत्याग्रहियों दोनों को समान रूप से इसका श्रेय दिया जा सकता है। आचार्य गोकुलभाई ने, जिनकी सत्याग्रह के सिद्धांतों में पूरी आस्था है, योग्यतापूर्वक सत्याग्रहियों का नेतृत्व किया। मुझे आशा है कि राज्य और प्रजा के बीच का सम्बन्ध दिन पर दिन अधिक प्रेम पूर्ण होता जाएगा और कभी झगड़े का कोई कारण नहीं खड़ा होगा।"

श्री गोकुलभाई ने उसके बाद राजस्थान को अपना कार्य क्षेत्र बना लिया और गांधीजी द्वारा बताये रचनात्मक कामों को आगे बढ़ाने के लिए आज भी दिन रात परिश्रम कर रहे हैं। खादी और ग्रामोद्योगों का विकास, नशाबन्दी आदि उनके प्रिय विषय हैं। राजस्थान में सर्वोदय का संदेश फैलाने में वह पूरी शक्ति के साथ जुटे हुए हैं और राजस्थान के गांधी विचारधारा में विश्वास रखने वाले लोक-सेवकों में उनका विशिष्ट स्थान है। राजस्थान की रचनात्मक संस्थाओं के वह मार्ग दर्शक और सहायक बन गये हैं। राजस्थान में गांधीजी की स्मृति की रक्षा का भार भी उन्होंने अपने कन्धों पर उठाया हुआ है।

१६

जमनालालजी और गांधीजी

जयपुर रियासत के अन्तर्गत सीकर एक ठिकाना था। उसके एक गांव काशी-का-वास में जमनालालजी ने जन्म लिया। इसलिए वह ठेठ राजस्थानी थे और अपनी जन्मभूमि जयपुर और राजस्थान के प्रति उनका प्रेम अन्त तक बना रहा। उनके माता-पिता ने उन्हें वर्धा के सेठ बच्छराजजी के यहां गोद दे दिया था और इस कारण वर्धा जाकर वह रहने लगे थे। गांधीजी का कोई भी वर्णन जमनाजालजी के बिना अधूरा ही रहेगा। जमनालालजी ने अपना सर्वस्व गांधीजी के चरणों में समर्पित कर दिया था और उनके बहुत सारे सार्वजनिक कामों की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा ली थी।

जमनालालजी देश के अनेक बड़े नेताओं, जैसे लोकमान्य तिलक, मालवीयजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जगदीशचन्द्र बोस, आदि के सम्पर्क में आये, किन्तु उन्हें ऐसे पथ-प्रदर्शक की तलाश थी जिसकी कथनी और करनी में कोई अन्तर न हो। जब गांधीजी के भारत लौटने पर वह उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क आये, उस समय गांधीजी ने अहमदाबाद के निकट कोचरब में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। जमनालालजी ने देखा कि उन्हें जैसे व्यक्ति की तलाश थी, वह उन्हें मिल गया। उन्होंने गांधीजी के सामने प्रस्ताव किया कि वह उन्हें अपना पांचवां पुत्र स्वीकार कर लें। गांधीजी ने उनकी मांग को स्वीकार

स्व० जमनालाल बजाज

कर लिया और इस प्रकार दोनों के मध्य पिता-पुत्र का आत्मीय सम्वन्ध कायम हुआ जो जीवन पर्यन्त जारी रहा। यह एक प्रकार के गुरू-शिष्य का भी रिश्ता था। जमनाजालजी मोक्षमार्ग के पथिक थे, आत्मार्थी थे और गांधीजी भी उसी पथ के पथिक थे, अतः दोनों की पटरी खूब बैठी। जमनालालजी ने गांधीजी के विचारों को अधिक आत्मसात करने और उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश की। विचार-भेद का कोई प्रश्न ही नहीं था। गांधीजी ने न केवल जमनालालजी के, बल्कि उनके परिवार के सभी सदस्यों के जीवन निर्माण की जिम्मेदारी उठा ली। उधर जमनालालजी ने अपने को स्वतंत्रता आंदोलन में पूरी तरह झोंक दिया। गांधीजी के आश्रमों को चलाने और उनके रचनात्मक कामों. जैसे खादी, ग्रामद्योग, अपृस्श्यता निवारण, हिन्दू-मुस्लिम एकता, राष्ट्र भाषा प्रचार, वुनियादी शिक्षा, गौ सेवा आदि में अपने आपको जी–जान से जुटा दिया। गांधीजी और जमनालालजी का यह सम्बन्ध करीव २५ वर्ष तक चला और जल जमनालाजी की मृत्यु हुई तो गांधीजी ने अनुभव किया कि उनकी कामधेनु ही उनसे छिन गई।

गांधीजी के वारे में स्वयं जमनालालजी ने अपने हृदय के विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं: "२४ वर्ष से अधिक समय हो गया। तव से मैं महात्माजी के सम्पर्क में हूं। उन वर्षो में मैंने उनके जीवन के समस्त क्षेत्रों का अवलोकन किया। मैं उनके सहवास में घूमा। उनके आश्रम जीवन में रहा। उनके उपवासों में उनके निकट रहा, बीमारियों के समय उनकी सुश्रूषा में भाग लेता रहा। उनकी अनेक गहन मंत्रणाओं का मैं साक्षी रहा और उनके सार्वजनिक कार्यो का भार मैंने शक्ति भर उठाया। सारी अवस्थाओं में उनके अनेक गुणों का मुझ पर असर होता ही गया। मेरी श्रद्धा वढ़ती गई। मैं अपने आपको उनमें अधिकाधिक विलीन करता ही गया। आज तो वह मेरे आदर्श हैं और उनकी आज्ञा मेरा जीवनादर्श है। उनका प्रेम मेरा जीवन है।

महात्माजी में अनेक अलौकिक गुण हैं—उनमें मनुष्योचित गुणों का वड़ा समुच्चय है। मानवी गुणों के तो वे हिमालय हैं। उनकी नियमितता, सार्वजनिक हिसाव रखने की सूक्ष्मता, विचारों की सूश्रूषा, अतिथितियों का सत्कार, विरोधियों के साथ सद्व्यवहार, विनोद प्रियता, आकर्षण, स्वच्छता, वारीक निगाह और दृढ़ निश्चय आदि गुण मुझे उत्तरोत्तर प्रकट होते दिखाई दिये हैं। महात्माजी में मैंने विरोधी गुण भी देखे हैं। उनकी अविचल दृढ़ता व कठोरता, अगाध प्रेम और मृदुता की वुनियाद पर खड़ी है। उनकी पाई-पाई की कंजूसी महान उदारता के जल से सिंचित है। और उनकी सादगी सौंदर्य से पोषित है।

महात्माजी ने मेरी मनोभूमिका ही वदल दी है। मेरे मन में कई वार त्याग के विचार पैदा हुआ करते थे, उन्हें कार्यरूप में लाने का रास्ता वता दिया। उनका निर्मल चरित्र, शीतल तेज, स्वता, गरीबों की सेवा, मनुष्य-मात्र से सद् व्यवहार, अनुपम प्रेम और धर्म-श्रद्धा देखकर ही मेरा मन उनकी ओर खिंचता गया।

"मेरी राय में आज भारत में गरीबों के साथ यदि कोई एक-जीवन हुआ है तो वह महात्माजी हैं। महात्माजी मानों कारुण्य की मूर्ति हैं। गरीबों के कष्ट दूर करने में अमीरों के साथ भी अन्याय न हो पाये और भिन्न-भिन्न वर्गों के वीच तनिक भी द्वेष-भाव पैदा न हो, इसकी हमेशा चिन्ता रखते हैं। इसलिए भारत के सव धर्म, पंथ और वर्गों के लोग उनको आत्मीयता की दृष्टि से देखते। चातुर्वर्ण्य का तो मानों उनमें सम्मेलन ही हुआ है। भारत पर उनका जो असीम प्रेम है, उसके लायक यदि हम भारतवासी वनें तो भारत का उद्धार अवश्य हो जाए।

यह तो हुए पुत्र के, शिष्य या भक्त के उद्‌गार। किन्तु अब पिता या गुरु अपने पुत्र या शिष्य के वारे में क्या सोचता था, इसकी भी कुछ वानगी देखिये। गांधीजी ने जमनालालजी के वारे में लिखा है :—

"जमनालालजी मेरे पांचवें पुत्र वने। इस स्वेच्छा से गोद आये पुत्र ने कितना कुछ किया, इसका वहुत कम लोगों को पता होगा। मैं कह सकता हूं कि इसके पहले किसी मनुष्य को ऐसा पुत्र नसीव नहीं होगा। जमनालालजी ने विना किसी संकोच के अपने आपको और अपने स्वंस्व को मुझे सर्मापत कर दिया था। मेरा शायद ही कोई ऐसा काम होगा, जिसमें मुझे उनका हार्दिक सहयोग न मिला हो, और जो अत्यन्त कीमती सावित न हुआ हो।

"उन्होंने मेरे कामों को पूरी तरह अपना लिया था। यहां तक कि मुझे कुछ करना ही नहीं पड़ता था। ज्योंही मैं किसी नये काम को शुरू करता, वह उसका वोझ खुद उठा लेते थे। इस तरह मुझे निश्चिन्त कर देना मानों उनका जीवन कार्य ही वन गया था।

"मेरी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मैं उन पर आसानी से भरोसा कर सकता था, कारण कि जितना उन्होंने मेरे काम को अपना लिया था, उतना शायद ही कोई अपना पाया होगा।

"उनकी बुद्धि कुशाग्र थी। वह सेठ थे। उन्होंने अपनी पर्याप्त सम्पत्ति मेरे हवाले कर दी थी। वह मेरे समय और मेरे स्वास्थ्य के संरक्षक बन गये और यह सब उन्होंने सार्वजनिक हित के खातिर किया।

"वह बुद्धिशाली भी थे और व्यवहार कुशल भी। वह अपनी जगह पर अद्वितीय थे।

"वह जिस काम को हाथ में लेते थे, उसमें जी-जान से जुट जाते थे।

"खादी के काम में उनकी दिल्चस्पी मुझसे कम न थी। खादी के लिए मैंने जितना समय दिया, उतना ही उन्होंने भी दिया। इस काम के पीछे उन्होंने मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। मैंने खादी का मंत्र दिया तो जमनालालजी ने उसको मूर्त रूप दिया।

"जमनालालजी में छुआछूत को हटाने, साम्प्रदायिकता से दूर रहने और सब धर्मों के प्रति समान आदर भाव रखने की जो उत्कृष्ट वृत्ति है, वह उन्हें मुझ से नहीं मिली है। कोई भी व्यक्ति अपने विश्वास दूसरों को सौंप नहीं सकता। हां, जो विश्वास दूसरों में पहले से मौजूद हों उन्हें प्रगट करने में सहायक हो सकता है। मेरे सम्पर्क में आने के बहुत पहले ही उनमें ये विश्वास बन चुके थे। और उन्होंने उनका अनुकरण करना शुरू कर दिया था। उनके इस आन्तरिक विश्वास की बदौलत ही हम एक दूसरे के सम्पर्क में आये और हमारे लिए इतने सालों तक घनिष्ठ सहयोग के साथ काम करना संभव हुआ।

"जिसको राजकाज कहते हैं वह न मेरा शौक था और न उनका। वह उसमें पड़े क्योंकि मैं उसमें था। लेकिन मेरा सच्चा राजकाज तो था रचनात्मक कार्य और उनका भी राजकाज यही था।

"वह ऐसी साधना में लगे थे जो कामकाजी आदमी के लिये विरल है। विचार संयम उनकी एक बड़ी साधना थी। वह सदा ही अपने को तस्कर विचारों से बचाने की कोशिश करते रहते थे।

"जब कभी मैंने यह लिखा कि धनवानों को सार्वजनिक हित के लिए अपनी सम्पत्ति का संरक्षक या ट्रस्टी बन जाना चाहिए, तो मेरे दिमाग में जमनालालजी का उदाहरण मुख्य रूप से रहा है।

"अगर उनका ट्रस्टीपन आदर्श तक नहीं पहुंच पाया तो इसमें कसूर उनका नहीं था। मैंने जानबूझ कर उन्हें रोका। मैं नहीं चाहता था कि वह अपने आवेश या उत्साह में ऐसा कदम उठायें जिसके ठण्डे दिमाग से सोचने पर उन्हें अफसोस करना पड़े। उनकी सादगी खुद उनकी ही विशेषता थी।

"जहां तक मुझे मालूम है, मैं दावे से कह सकता हूं कि उन्होंने अनीति से एक पाई भी नहीं कमाई और और जो कुछ कमाया उसे उन्होंने जनता जनार्दन के हित में ही खर्च किया।

"जब से वह पुत्र बने तब से वह अपनी समस्त प्रवृत्तियों की चर्चा मुझ से करने लगे थे। अन्त में उन्होंने गौ सेवा के लिए फकीर बनने का निश्चय किया तो वह भी मेरे साथ पूरी तरह सलाह मश्विरा करके ही किया। न्याय की दृष्टि से उनका यह काम सर्वश्रेष्ठ रहा। गौ सेवा के काम में वे इतनी एकाग्रता और लगन के साथ जुट गये थे जिसकी कोई मिसाल नहीं।

"होना यह चाहिए था कि मैं उनके लिए अपनी विरासत छोड़ कर जाता, किन्तु उसके बदले वह अपनी विरासत मेरे लिए छोड़ गये।

"यह मैं कैसे कहूं कि उनके जाने से मुझे दुख नहीं हुआ। दुख होना तो स्वाभाविक था। कारण मेरे लिये तो वही मेरी कामधेनु थे। लेकिन जब उनके कामों की याद करता हूं, और हमारे लिए जो संदेश छोड़ गये हैं उसका विचार करता हूं, तो अपना दुख भूल जाता हूं।"

तो ऐसे थे जमनालालजी, और राजस्थान अपने इस सपूत पर उचित ही गर्व कर सकता है। कोई आश्चर्य नहीं कि जमनालालजी गांधीजी को गुजरात से अपने निवास स्थान वर्धा खींच ले गये और साबरमती छोड़ने के बाद उन्होंने सेवाग्राम में अपना आश्रम और स्थायी निवास बनाया।

इस पृष्ठ-भूमि से यह सहज ही समझ में आ जाता है कि जमनालालजी पूर्णतया गांधीमय हो गये थे। यथाशक्ति गांधीजी के विचारों और उनकी रीति के अनुसार चलने की कोशिश करते थे। उनकी सार्वजनिक प्रवृत्तियों के पीछे गांधीजी का मार्ग-दर्शन और नैतिक समर्थन रहता था। जमनालालजी ने राजस्थान में बहुत काम किया। शुरू में उन्होंने चरखे और खादी का संदेश फैलाया। खादी का संगठित कार्य चरखा संघ की मारफत हुआ और राजस्थान चरखा संघ जमनालालजी की सीधी देखरेख में चला। खादी के साथ

अस्पश्यता निवारण का काम भी हुआ। समाज सुधार की प्रवृत्तियां भी चलीं। शिक्षा प्रचार का काम भी हुआ। राजस्थान के अनगिनत कार्यकर्त्ता उनके सम्पर्क में आये। गांधीजी की भांति जमनालालजी की भी यह विशेषता थी कि वह कार्यकर्त्ताओं के साथ कौटुम्बिक सम्बन्ध स्थापित करते, उनके सुख-दुख की चिन्ता करते और यह चाहते थे कि गांधी विचारधारा में आस्था रखें और सत्य तथा अहिंसा पर चलते हुए देश और समाज की सेवा करें। किन्तु जिन कार्यकर्त्ताओं के साथ विचार-भेद था, उनको भी उन्होंने सहन किया और उनकी यथासंभव मदद की। यहां राजस्थान के उन सभी कार्यकर्त्ताओं के नाम गिनाना मुश्किल होगा, जिन्हें जमनालालजी ने अपने नजदीक खींचा और उन्हें किसी न किसी रूप में सहारा दिया। यह सूची बहुत लम्बी होगी, इन पंक्तियों का लेखक भी जमनालालजी का आभारी है। उनके द्वारा ही उसके लिए कुछ समय सत्याग्रह आश्रम में गांधीजी के निकट सम्पर्क में आना संभव हुआ। उनकी मृत्यु के कुछ समय पहले उन्होंने वर्धा आकर उनके साथ काम करने का निमंत्रण दिया था। उसके लिए यह निमंत्रण स्वीकार करना संभव नहीं हुआ, किन्तु उनका यह निमंत्रण स्मृति के रूप में आज भी उसके पास सुरक्षित है।

देशी रियासतों के काम में उनकी शुरू से ही दिलचस्पी थी। श्री विजयसिंह पथिक ने उनकी मदद से ही वर्धा से हिन्दी साप्ताहिक 'राजस्थान केसरी' निकाला। समय के साथ उनकी यह दिलचस्पी बढ़ती गई। शुरू में उन्होंने अपने को राजस्थान की रियासतों में रचनात्मक काम तक ही सीमित रखा। उन्होंने राजाओं को अपनी मर्यादा बता दी थी। उनका सहयोग और सहानुभूति भी वह प्राप्त करना चाहते थे। अजमेर के कांग्रेसी नेताओं के साथ जब वह बीकानेर रियासत में खादी का प्रचार करने के लिए पहुंचे तो उन्हें महाराजा की सरकार ने जबर्दस्ती रियासत के बाहर निकलवा दिया था। कुछ राजा-महाराजा उस समय इतने असहिष्णु थे।

उदयपुर रियासत के अन्तर्गत बिजोलियां में वस्त्र स्वावलम्बन का काम हुआ, जिसके अनुसार बिजोलियां का सारा ग्रामीण क्षेत्र खादीमय हो गया था। देश में अपने ढंग का अनोखा कार्य था और यह चरखा संघ की मारफत हुआ और उसकी पीठ पर जमनालालजी का हाथ रहा। बिजोलियां पथिकजी का कार्यक्षेत्र था। वहां एक राजनीतिक उलझन उठ खड़ी हुई। किसानों की माल जमीन छिन गई थी। उसके लिए किसानों को सत्याग्रह करना पड़ा, अन्त में जमनालालजी ने इस मामले को अपने हाथ में लिया और

महाराणा तथा उनके मुसाहिवे-आला से मिलकर एक समझौता कराया। जमनालालजी ने इन पंक्तियों के लेखक को समझौते की जानकारी देने के लिए विजोलियां भेजा। उस समय ठिकाने की ओर से उग्र दमन हो रहा था। विजोलियां की सीमा में दाखिल होने पर लेखक के साथ ठिकाने के कर्मचारियों ने अमानुषिक मारपीट की और उसे अपनी हद से वाहर निकाल दिया। जव जमनालालजी का यह सव मालूम हुआ तो उन्हें वड़ा दुख हुआ और उन्होंने लेखक को लिखा कि यह मारपीट उसके साथ नहीं, वल्कि स्वयं उनके साथ हुई, ऐसा वह अनुभव करते हैं।

अजमेर के निकट हट्टण्डी में गांधी आश्रम की स्थापना और सस्ता साहित्य मण्डल के गठन के पीछे मुख्य रूप से जमनालालजी का ही हाथ था।

जमनालालजी गांधीजी के इस विचार से सहमत थे कि पहले अंग्रेजी राज को हटाया जाए। उसके वाद राजा-महाराजाओं की समस्या अपने आप हल हो जायेगी। देशी रियासतों में राजनीतिक संघर्षों में शक्ति लगाना वे शक्ति का अपव्यय समझते थे। किन्तु समय आया जव कांग्रेस को देशी राज्यों की जनता को अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए अपने संगठनों के द्वारा संघर्ष करने की स्वतंत्रता देनी पड़ी। खुद जमनालालजी ने अपनी जन्मभूमि जयपुर में उत्तरदायी शासन की स्थापना और नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रजामण्डल के संघर्ष का नेतृत्व किया और सत्याग्रह तक का आश्रय लिया और अपने ध्येय में वहुत कुछ सफलता प्राप्त की। यह सव उन्होंने जयपुरी होने के नाते किया और इस संघर्ष में उन्हें गांधीजी का निरन्तर मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ। जयपुर प्रजामण्डल ने नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए जो अहिंसक संघर्ष जमनालालजी के नेतृत्व में किया और उसमें गांधीजी का जो योग रहा, उसका जिक्र हम अलग अध्याय में करेंगे।

जितने भी धर्म हैं, सब-के-सव ऊंचे हैं। धर्म में कसर नहीं हैं। कसर है तो उसके आदमियों में।

१७

मूक सेवक छोटेलालजी

छोटेलालजी जैन देश को राजस्थान की देन है। वह जयपुर रियासत के रहने वाले थे। उन्होंने जैसा साधनामय जीवन बिताया, वैसा कोई विरला ही बिता सकता है। उन्होंने अपना जीवन देश और मानवता के लिए समर्पित कर दिया था। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वालों को आत्म-विज्ञापन का रोग लग जाता है, किन्तु वह इस बीमारी से सर्वथा अछूते रहे। अपने को उन्होंने कभी प्रकाशित और प्रचारित नहीं किया। शुरू में उनका झुकाव क्रान्तिकारी प्रवृति की ओर हुआ। वह राजस्थान के तत्कालीन नेता अर्जुन-लालजी सेठी के सम्पर्क में आए और स्वयं नवयुवक मंडली के नेता बन गये। दिल्ली में लार्ड हार्डिग पर बम फैंका गया था। इस काण्ड के सिलसिले में अनेक व्यक्ति पकड़े गये थे। उनमें छोटेलालजी भी थे। उनके विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं हुआ और वह दिल्ली षड़यन्त्र केस से बरी कर दिये गये।

छोटेलालजी ने गांधीजी और उनकी दक्षिणी अफ्रीका की हलचलों के बारे में पढ़ा था। गांधीजी भारत लौट कर आये तो वह उनकी ओर आकर्षित हुए। गांधीजी के सम्पर्क में आने पर उनके आतंकवादी विचार बदल गये और उन्होंने गांधीजी के साथ रहकर देश की सेवा करने का संकल्प किया।

गांधीजी को उन्होंने अपनी, त्याग, परिश्रमशीलता और सूझ-बूझ से मुग्ध कर लिया था । ३१ अगस्त, १९३७ को जब ४५ वर्ष की अवस्था में उनकी दु:खजनक मृत्यु हुई तो गांधीजी ने अपंग अनुभव किया । छोटेलालजी के अनेक गुणों की उन्होंने मुक्त कंठ से प्रशंसा की । छोटेलालजी ज्वर से पीड़ित हुए थे, किन्तु अस्वस्थता की दशा में भी कोई उनकी सेवा करें यह उन्हें सहन नहीं हुआ । उन्होंने रात्रि के समय मगनवाड़ी, वर्धा के कुए में कूद कर अपना शरीर त्याग दिया ।

छोटेलालजी की मृत्यु पर गांधीजी ने 'हरिजन सेवक' में जो उद्गार प्रकट किये वे उनकी महत्ता पर भील प्रकार प्रकाश डालते हैं । उन्होंने लिखा था :—

"मूक सेवा में स्वर्गीय मगनलाल गांधी के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाले आश्रमवासी श्री छोटेलालजी जैन का आत्मघात, इन शब्दों को लिखते हुए अन्दर से मुझे काट रहा है । छोटेलालजी की मूक सेवा का वर्णन भाषाबद्ध नहीं हो सकता । ऐसा करना मेरी शक्ति से बाहर है । छोटेलाल का कोई परिचय देता तो वह भागते थे । आश्रम में आने के बाद छोटेलाल का कभी किसी दिन अपने सम्बन्धियों के पास जाने या आश्रम में उनके रिश्तेदारों के आने का मुझे स्मरण नहीं आता ।

"मेरे सौभाग्य से मुझे कुछ ऐसे योग्य साथी मिले हैं जिनके बिना मैं अपने को अपंग अनुभव करता हूँ । छोटेलाल मेरे ऐसे ही साथी थे । उनकी बुद्धि तीव्र थी । उन्हें कोई भी काम सौंपने में मुझे हिचकिचाहट नहीं होती थी । वह भाषा-शास्त्री भी थे । राजपूताना निवासी होने से उनकी मातृभाषा हिन्दी थी । पर वे गुजराती, मराठी, बंगला, तमिल, संस्कृत और अंग्रेजी भी जानते थे । नई भाषा सीखने या नया काम हाथ में लेने की उनकी जैसी शक्ति मैंने और किसी में नहीं देखी । आश्रम के स्थापनाकाल से ही छोटेलाल ने उससे अपना सम्बन्ध जोड़ लिया था ।

"रसोई बनाना, पाखाना साफ करना, कातना, बुनना, हिसाब-किताब रखना, चिट्ठी-पत्री लिखना, आदि सब कामों को वह स्वाभाविक रीति से करते । ये सब काम उन्हें शोभते थे । मगनलाल के ग्रन्थ 'बुनाई शास्त्र' में छोटेलाल का हिस्सा मगनलाल जितना ही था, यह कहा जा सकता है । चाहे जैसे जोखिम का काम उन्हें सौंपा जाए, उसे वह प्रयत्नपूर्वक करते और जब तक वह पूर्ण नहीं हो जाता, उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी । अविश्रांत रीति

से काम करते हुए भी छोटेलाल दूसरा काम लेने को हमेशा तैयार रहते थे उनके शब्दकोष में 'थकान' के लिए कोई स्थान नहीं था। सेवा करना और दूसरों से सेवा कार्य लेना यह उनका मंत्र था। ग्राम-उद्योग संघ स्थापित हुआ तो घानी का काम दाखिल करने वाले छोटेलाल, धान दलने वाले छोटेलाल और मधु मक्खियां पालने वाले भी छोटेलाल। जिस प्रकार छोटेलाल के बिना मैं अपंग जैसा हो गया हूँ, ऐसी ही स्थिति आज उनकी मधु मक्खियों की भी होगी।

"छोटेलाल मधु मक्खियों के पीछे जैसे दावाने हो गये थे। उनकी शोध में उन्हें हल्के प्रकार के मियादी बुखार ने पकड़ लिया। वह उनके प्राणों का ग्राहक निकला। मालूम होता है उन्हें छह-सात दिन भी अपनी सेवा कराना असह्य लगा। अतः ३१ अगस्त की रात को ११ और २ बजे के बीच सबको सोता हुआ छोड़कर मगनवाड़ी के कुए में कूद पड़े। दूसरे दिन उनकी लाश ही हाथ लगी।

"इस आत्मघात के लिए छोटेलाल को दोष देने की मुझे हिम्मत नहीं। छोटेलाल तो वीर पुरुष थे। उनका नाम सन् १६१५ के दिल्ली षडयंत्र केस में आया था। पर वह उसमें बरी हो गये थे। किसी अफसर को मारकर खुद फांसी के तख्ते पर चढ़ने का स्वप्न वह उन दिनों देखते थे। इतने में मेरे लेखों के पक्ष में आ फंसे। दक्षिण अफ्रीका के मेरे जीवन से उन्होंने परिचय प्राप्त कर लिया था। अपनी तीव्र हिंसा बुद्धि को उन्होंने बदल दिया और अहिंसा के पुजारी बन गये। जिस तरह सांप केंचुली उतार देता है, उसी तरह उन्होंने अपने हिंसक जीवन की खोल उतार कर फेंक दी। इतना होते हुए भी वह अपने मन से क्रोध को नहीं जीत सके। उन्होंने अपने भीतर गहरी पैठी हिंसा को अपनी बलि दे दी। इसके सिवा दूसरा अर्थ मैं इस आत्मघात का नहीं लगा सकता।

"छोटेलाल मुझे देनदार बना कर चल बसे। उनसे मैं अनेक आशायें रखता था। उनकी अपूर्णता मैं सहन नहीं कर सकता था, इसलिए छोटेलाल ने मेरे वाग्बाण जितने सहन किये, इतने तो शायद मैंने एक दो को ही कराये होंगे। ऐसे वचन सुनाने का मुझे क्या अधिकार था? मुझे तो उन्हें हिन्दू-मुसलमान की लड़ाई में या हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता रूपी कचरा निकाल बाहर करने में या गौमाता की सेवा में होम कर उनका लहना चुकाना था। ऐसा करने की शक्ति रखने वालों में छोटेलाल एक ऊंचा स्थान रखते थे।

"पर छोटेलाल की मृत्यु का रोना रोकर अब क्या करूं ? रामराज्य रूपी स्वराज्य लेने के लिए ऐसे अनेक मूक योद्धाओं की आवश्यकता होगी। छोटेलाल के जीवन के इस छोटे से टुकड़े का परिचय पाकर ही उन्हें आगे आना चाहिए।"

छोटेलालजी का यह परिचय तो प्रेरणादायी है ही, उसमें यदि कोई कसर रह गई थी तो उसे महादेव भाई ने पूरा कर दिया। उन्होंने लिखा था:—

"छोटेलालजी के साथ मेरा सम्बन्ध २० साल से था। तभी से जब से मैं गांधीजी की सेवा में आया अनेक साथियों के पत्र आये हैं और वे उनके प्राण-त्याग का कारण जानना चाहते हैं। लोग कहते हैं कि बापूजी के पूछे बिना वह कुछ नहीं करते थे तो प्राण-त्याग करने के पहले उन्होंने उनसे भी नहीं पूछा ? यह सच है कि उन्होंने नहीं पूछा और यह बापूजी का और हम सब लोगों का दुर्भाग्य ही है।

"मौन छोटेलालजी का एक अनमोल गुण था, किन्तु इस गुण के अन्दर एक प्रकार की भयंकरता रहती है। २० वर्ष एक साथ रहते हुए भी दो ही महिने पहले मुझे इस बात का पता लग गया कि छोटेलालजी कभी विवाहित भी थे, फिर विधुर हुए और उनके माता पिता दूसरी बार उनका विवाह करने जा रहे थे कि उनके पास से पिण्ड छुड़ा कर भाग निकले और फिर गृह बंधन से छूटे सो छूटे। अपने सगे सम्बन्धियों के विषय में तभी उन्होंने बताया। उनकी असहिष्णुता को मैंने देखा। वह उनके मौन को भयानक बना देती थी। इस असहिष्णुता ने ही तो कहीं उन्हें मृत्यु की भेंट नहीं करा दिया ?

"कोई तीन महिने की बात है कि गांधीजी ने उनसे मेरी थोड़ी मदद करने के लिए कहा। उनके पास समय हो या न हो, नया काम लेने से उन्होंने कभी इन्कार तो किया ही नहीं। इन्हीं तीन महिनों में मैं उनके प्रगाढ़ सम्पर्क में आया। विनोद की झलक मैंने अक्सर उनमें देखी। मधुमक्खी पालन का काम उन्होंने ले रखा था। बार बार आकर तद्विषयक शब्दों के गुजराती पर्याय मुझसे पूछते और इस विषय की पुस्तकें मांगते। मृत्यु शय्या पर पड़ने से एक दिन पहले पुस्तकों की एक लम्बी सूची दे गये। ये पुस्तकें विलायत से अब आ रही होंगी, पर उन्हें देखने के लिए वह नहीं रहे। तीन दिन के बुखार को उन्होंने कुछ गिना ही नहीं, थर्मामीटर तो लगाने ही नहीं देते थे। सवेरे की प्रार्थना में मूसलाधार पानी पड़ रहा हो और चाहे जितना कीचड़ हो, हाजिर होने से कभी नहीं चूकते। सारी गीता उन्हें कण्ठस्थ थी, पर कभी

कहीं पाठ में गड़बड़ी हो जाए, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता था। कहते आपके साथ पाठ करने से भूल नहीं होती इसलिए आपके साथ बैठकर पाठ करना अच्छा लगता है। इस बुखार में भी उठकर एक दिन प्रार्थना में आये। मैं नाराज हुआ तो बोले, 'मुझे बुखार है ही नहीं।' शाम को जबर्दस्ती थर्मामीटर लगाकर देखा तो १०२ डिग्री बुखार था। आग्रहपूर्वक उन्हें उनकी कुटिया से निकाला और अपने पास लाये। पांच सात दिन उनकी सेवा का लाभ उठा पाये कि वह चले गये।

"छोटेलालजी की कुटिया कैसी थी? चार फुट चौड़ा और सात फुट लम्बा छोटा सा छप्पर। जब बारिश नहीं होती तो इसी में वह सोते, रोटी बनाते और लिखने पढ़ने का काम करते। छप्पर से पानी टपक रहा हो और हम अपने पास आकर सोने का आग्रह करते तो कहते कि दूसरे पास होते हैं तो मुझे नींद नहीं आती। कोई आवाज होते ही जाग पड़ता हूं।

"जिस दिन उन्हें आग्रह के साथ उनकी कुटिया मे ले आये तो उसके एक दिन पहले खूब वर्षा हुई थी। उन्होंने मान लिया कि उन्हें बुखार नहीं है। मधु मक्खियां उड़ी तो उन्हें पकड़ने के लिए मूसलाधार पानी में दौड़े। बुखार में ही एक दिन मुझ से कहा कि पुस्तकों के अलावा मधुमक्खी पालन के कुछ दूसरे साधनों की भी जरूरत होगी; मैंने कहा अच्छे हो जाइये, जो आपको चाहिए, सब मंगवा दूंगा।

"तीसरे दिन मुझसे कहने लगे—'मेरी यह बीमारी प्राण लेकर छोड़ेगी। अब मैं उठने का नहीं।' सिविल सर्जन ने तीन बार आकर देखा। उससे कहा—'गांव में मधुमक्खी पकड़ने गया था, वहां बड़ी प्यास लगी और जैसा पानी मिला, वैसा ही पी लिया, शायद उसी का परिणाम है।' मधुमक्खी के पीछे ऐसे दीवाने हो गये थे कि चालीस चालीस मील जंगल में चले जाते और उसे जब पकड़ लाते तब कहीं उन्हें चैन पड़ता। उनकी मृत्यु के बाद पुलिस इन्सपेक्टर आया, उसने भी बताया कि छोटेलालजी ने कहा था कि अगर कहीं मधुमक्खी का छत्ता दिखाई दे तो उन्हें बतायें।

"उनका मधुमक्खी का ही विषय नहीं था। बापू के लिए बकरी नहीं है, यह सुना कि साइकिल उठाई और चल दिये। पन्द्रह मील दूर के गांव से तुरन्त एक बकरी ले आये। हांफते हुए मेरे पास आकर कहते हैं, 'महादेव भाई बकरी ले आया हूं बकरी क्या है, देवी है, जरा देखो तो।' मैंने कहा 'अरे भाई, यह डाक जा रही है, इसे पूरी न करूं"? 'नहीं' आप जरा देख तो

लो, नहीं तो बकरी सेवाग्राम चली ।' सचमुच बकरी देवी जैसी थी । उसका छवि का हुबहू वर्णन भी छोटेलालजी ने ही किया । 'वाह कैसा सुन्दर चमड़ा है । मानों ओवर कोट । ईश्वर ने क्या ही सुन्दर सूरत बनाई है । इतनी दूर से इस अपरिचित जगह में आई है । पर जरा भी नहीं बोलती । कैसी शान्त मूर्ति है ।' गाय पर भी इनका इतना ही प्रेम था । अच्छी नस्ल वाली गाय लाती होती तो उसे भी छोटेलालजी ही लाते ।

"एक दिन तेल के चार डिब्बे लाये और कहने लगे 'दुर्गा बहन, इन चारों तेलों का उपयोग करके देखो और फिर बताना इनमें से कौन सा अच्छा है । मुझे तेल की परीक्षा करनी है ।' खुद तो शायद ही कभी तेल शहद जैसी चीजों को छूते थे । पांच रुपये माहवार से ज्यादा उनका खर्च नहीं था ।' मेरे तब कुल जमा उनके सवा सात रुपये पड़े हुए थे । वे भी किसी को सौंप गये थे और कह गये थे : 'यह पैसा और किताबें अपने पास रखना, मैं अब उठने का नहीं ।'

"न उठने का निश्चय उन्हें कैसे होगा, कह नहीं सकते । जिस आदमा ने कभी अंगूर जैसी वस्तु मांग कर नहीं खाई, उसने एक दिन अंगूर भी मांगे । वार्ली वाटर के सम्बन्ध में कहते थे 'यह तो बड़ा अच्छा लगता है । बुखार में हमारे देश के लोग इसी पानी को क्यों नहीं पीते ?'

"दोपहर को गांधीजी को लिवाने मैं सेवाग्राम गया । गांधीजी आने को तैयार थे । मैंने कहा 'छोटेलालजी की तबियत आज ठीक है ।' गांधीजी ने उनके नाम एक विनोद भरा पत्र लिखा और अगले दिन सुबह आने का वचन दिया । पर छोटेलालजी तो उसके पहले चले गये ।

"छोटेलालजी की डायरी में विनोबाजी का पत्र मिला । यह उनके किसी पत्र का जवाब था । उससे मालूम होता है कि छोटेलालजी को कौन से प्रश्न व्याकुल किये रहते थे । विनोबाजी ने लिखा था :—

'जगत में दुख है, यह बात सच है, पर इसीलिए मरने से मतलब सध जायेगा, ऐसा नहीं है । मर कर यदि इन दुखों को दूर किया जा सकता हो तो हम खुशी से मर जायें । हमें तो जितना बन सके उतना पुरुषार्थ करके इन दुखों के साथ झगड़ते रहना है । जीना किस लिए ? इस प्रश्न का उत्तर केवल इतना ही है, पुरुषार्थ करने के लिए । खुद दुख सहन करके दूसरों के दुखों को दूर करने के प्रयत्न का महान आनन्द लूटने के लिए जगत दुखमय है, यह

वात जिसके ध्यान में आ गई है, वह संसार में लिप्त न होकर कार्य में तल्लीन रहता है और परमानन्द का भागी होता है। संसार को वढ़ाने का अर्थ है, जगत की दुखमयता को वढ़ाना। इसलिए वैराग्य से, किन्तु उत्साह से प्रेमपूर्वक सेवा करते रहना और खुद न मर कर अहंकार को मार कर निरंहकार जीवन व्यतीत करना जागृत पुरुष का लक्ष्य है।'

"क्रोध रूपी शत्रु से छोटेलाल जी वरावर लड़ते रहते थे। उनकी डायरी के एक-एक शब्द में उनकी आत्म शुद्धि की रटन है।

"लकड़ी जैसी दुर्वल और चिकनी काया पर सिर्फ लंगोटी जैसी धोती रहती थी। इसके अलावा शायद ही कोई वस्त्र उनके शरीर पर रहता था। मेरे जैसा ऐसा वेश रखे तो उसे दंभ कहा जाए। पर उन्हें धोती ही शोभा देती थी। परिग्रह उनके पास से भागता था। २० वर्ष के निष्कलंक सेवा जीवन में यदि गांधीजी की उन पर फटकार पड़ी है तो उसका कारण उनकी असहिष्णुता या क्रोध होगा। दूसरा कोई दोष उनमें ढूंढना कठिन था। उनकी अथक परिश्रम शक्ति, चाहे काली अंधेरी रात हो चाहे संकट की भयंकर घड़ियां हों, उनकी कठिन से कठिन काम करने की तत्परता, उनकी गहरी समझदारी और बुद्धिमता, यह सब होते हुए उन्हें यह मार्ग कैसे सूझा यह प्रश्न ठीक नहीं। उनके प्राण-त्याग से उनके इन गुणों पर पानी नहीं फिर जाता। उससे यह प्रकट होता है कि वह सम्पूर्ण नहीं थे। पर इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में सम्पूर्णता तक पहुंचाने वाले गुण उनमें थे, इसमें सन्देह नहीं।"

महादेव भाई के इस अतरंग विवेचन के वाद छोटेलालजी के वारे में और कुछ कहने की जरूरत नहीं रह जाती। छोटेलालजी जैसे मूक सेवक को आज तो दीपक लेकर खोजना होगा। उनका जीवन सेवकों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। गांधीजी का प्रभाव लोगों को कितना ऊंचा उठा देता था यह अच्छा नमूना है। हम उनकी स्मृति में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि ही भेंट कर सकते हैं और ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं कि उनके जैसे सद्‌गुण वह हमें भी प्रदान करें।

१८

बूँन्दी का देशभक्त परिवार

देशी रियासतें अपनी निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता के लिए प्रसिद्ध थीं। यदि राजा किसी पर खुश होता तो उसे आसमान पर चढ़ा देता और सब तरह से निहाल कर देता। किन्तु जितना जल्दी वह खुश होता था, उतना ही ज़ल्दी नाराज़ भी हो सकता था और एक बार नाराज़ होने पर उसकी चल-अचल सम्पत्ति छीन ली जाती, उसे पकड़ कर जेल में डाल दिया जाता या रियासत से निर्वासित कर दिया जाता। राजा तो फिर सुनवाई करने ही क्यों लगा, और ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि रियासतों के भीतरी मामलों में हस्त-क्षेप न करने की अपनी नीति का बहाना बना कर चुप रहते। किन्तु अगर ब्रिटिश सरकार किसी राजा को स्वतन्त्र प्रकृति का समझती तो कुशासन के नाम पर उसकी गर्दन पर सवार हो जाती। और उसके सारे अधिकार छीन लेती।

श्री नित्यानन्द नागर और उनके परिवार की कहानी तत्कालीन रियासती शासन की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता पर अच्छा प्रकाश डालती है। उनके पिता श्री मेघवाहन बून्दी राज्य के २० वर्ष दीवान रहे। उनको जागीर दी गई, और वे खासी चल-अचल सम्पत्ति के स्वामी बन सके। स्वयं श्री नित्यानन्द को राज्य का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। किन्तु मेघवाहनजी किसी कारण अंग्रेज अधिकारियों के कोप भाजन बने और उन्हें

अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ा। उन्हें राज्य से निर्वासित कर दिया गया। नित्यानन्दजी ने भी अपने पद से त्याग पत्र दे दिया।

नित्यानन्दजी को राष्ट्रीयता की हवा लगी। वरड़ के इलाके में रियासती जुल्मों और शोषण के खिलाफ किसानों का आन्दोलन हुआ तो उसके साथ सहानुभूति दिखाई। सन् १६२१ में अहमदाबाद कांग्रेस के अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए। नित्यानन्दजी की राष्ट्रीय गतिविधियां रियासती हुकूमत की आंखों में बुरी तरह खटकीं। उन्हें ६ जुलाई १६२७ को बिना कोई कारण बताये बून्दी रियासत से निर्वासित कर दिया गया। उनकी लाख-पौने लाख की सम्पत्ति भी उनसे छीन ली गई। श्री नागर ने रियासत की इस नादिरशाही के विरुद्ध अंग्रेज अधिकारियों के दरवाजे खटखटाये, किन्तु उन्हें कोई न्याय नहीं मिला। गांधीजी की यह राय थी कि रियासतों के भीतर अंग्रेजों के हस्तक्षेप की मांग न की जाय और राजाओं से ही बातचीत के द्वारा या लड़-झगड़ कर न्याय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। गांधीजी की इस नीति के अनुसार नित्यानन्दजी ने अंग्रेजों के द्वार खटखटाना बन्द कर दिया। गांधीजी के विश्वस्त साथी श्री मणिलाल कोठारी ने रियासत के दीवान के साथ इस विषय में बातचीत की। दीवान ने स्वीकार किया कि नित्यानन्दजी के साथ अन्याय हुआ है, किन्तु अब यह मामला राज्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है और इसलिए सीधे कुछ नहीं किया जा सकता। दीवान ने निर्वासन आज्ञा ढीली करके अपनी सम्पत्ति की वापसी के लिए कानूनी कार्यवाई करने की सुविधा नित्यानंद जी को प्रदान की। अंत में वह बूंदी रियासत की प्रीवी कौंसिल से अपने हक में फैसला कराने में सफल हुए और २५ वर्ष बाद उनकी छीनी हुई कोठी सन् १६४५ में उन्हें वापस लौटा दी गई।

नित्यानंदजी २६ वर्ष तक बूंदी रियासत से निर्वासित रहे। उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व में लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम में आगे बढ़कर हिस्सा लिया। सन् १६३० में उन्होंने राजपूताना और मध्य भारत के प्रथम सत्याग्रही के रूप में नमक कानून तोड़ा उन्हें एक वर्ष का कारावास दण्ड मिला। सन् १६३२ के आंदोलन में वह दो वर्ष के लिए और सन् १६४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह में एक वर्ष के लिए जेल गये। सन् १६४२ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन शुरू हुआ तो उन्हें चार वर्ष तक बूंदी के किले में नजरबंद रखा गया।

नित्यानंदजी के सुपुत्र श्री ऋषिदत्त मेहता और उनकी पुत्र-वधू सौ० सत्यभामा ने भी स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया और कष्ट सहन किये।

श्री ऋषिदत्त सन् १९३० और सन् १९३२ में दो वार अजमेर में जेल गये। वे व्यावर और अजमेर से 'राजस्थान' नामक हिन्दी का साप्ताहिक पत्र निकालते थे। सौ० सत्यभामा भी अपने दो दूध-पीते बच्चों को लेकर जेल गईं।

अजमेर सरकार ने श्री ऋषिदत्त को अजमेर से निर्वासित कर दिया था। अतः सन् १९४४ में वह कोटा जाकर रहने लगे। उधर वून्दी रियासत ने भी उन पर रियासत के भीतर दाखिल न होने की रोक लगा दी। वून्दी में उनका घर था और अजमेर तथा वून्दी की सरकारों ने उन्हें खाना-वदोश वना दिया था। यह सरासर अन्याय था। इस सम्वन्ध में श्री ऋषिदत्त ने गांधीजी के साथ पत्र-व्यवहार किया और उनसे मार्ग दर्शन मांगा। गांधीजी ने उन्हें सलाह दी कि वून्दी रियासत की निर्वासित आज्ञा की अवहेलना करना उनका नैतिक धर्म हो जाता है और वह राज्य को पूर्व नोटिस देकर उसकी अवहेलना कर सकते हैं। यह सन् १९४६ की वात है। गांधीजी की सलाह के अनुसार श्री ऋषिदत्त ने वून्दी रियासत को लिखा कि यदि अन्याय पूर्ण निर्वासन आज्ञा वापस नहीं ली गई तो वह उसका उल्लंघन करेंगे। सद्भाग्य से वून्दी सरकार में सुवुद्धि का उदय हुआ तो निश्चित अवधि के पहले ही ऋषिदत्तजी के विरुद्ध निर्वासन आज्ञा रद्द कर दी गई।

वून्दी के नागर समाज में काफी कट्टरता थी। श्री नित्यानन्द और उनके परिवार के लोगों ने छुआछूत के परम्परागत विचारों का परित्याग कर दिया था। वह हरिजनों के साथ खान-पान और रहन-सहन में समानता का व्यवहार करते थे। नागर समाज को यह सव सहन नहीं हुआ। उसने श्री नित्यानन्द के परिवार का सामाजिक वहिष्कार कर दिया। जव यह तथ्य गांधीजी की दृष्टि में लाया गया तो उन्होंने कहा कि इसकी क्यों चिन्ता करते हो। मैं स्वयं भी ता जाति वहिष्कृत हूं। गांधीजी चाहते थे कि लोगों को समाज सुधार की खातिर ऐसी कठिनाइयों को खुशी खुशी वरदाश्त करना चाहिये और दृढ़ता के साथ समाज के विचारों को वदलने की कोशिश करनी चाहिए। उनका सोचना सही था और आज हम देख सकते हैं कि समाज के विचारों में कितना परिवर्तन आ गया है और छुआछूत भूतकाल की वस्तु वन गई है।

श्री नित्यानन्द नागर आज इस लोक में नहीं हैं। किन्तु उन्होंने और उनके सारे परिवार ने देश की स्वतंत्रता और समाज सुधार के लिए जो त्याग किया और कष्ट सहन किये, उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस परिवार पर गांधीजी के विचारों और व्यक्तित्व का भारी प्रभाव पड़ा था।

१६

बाबाजी और पथिकजी

सन् १६३० में जब नमक कानून तोड़ा जाने को था, उसके पहले ही अजमेर सरकार ने पथिक और नरसिंहदासजी (बाबाजी) को खतरनाक समझ कर जेल की लम्बी सजा दे डाली थी। इन दोनों नेताओं से जेल में चक्की पिसवाई जाती थी। उन्हें राजनीतिक कैदी नहीं माना गया और न किसी ऊंची श्रेणी में ही रखा गया। बाबाजी को जेल अधिकारियों को सलाम न करने के आरोप में काल कोठरी की सजा दी गई थी। अफवाह थी कि उन्हें बेंतों की सजा भी दी जायेगी। बाबाजी ने जेल अधिकारियों से साफ कह दिया कि चाहे मेरी खाल कुत्तों से नोंचवा डालो, पर मैं सलाम नहीं करूंगा। जब यह समाचार हरिभाऊजी को प्राप्त हुए तो उन्होंने गांधीजी को उनकी जानकारी दी और अपना यह विचार प्रकट किया कि यदि बाबाजी को बेंतों की सजा दी गई और वह भी जेल में हुए तो इस अमानुषिक सजा के विरोध में जेल अधिकारियों को सलाम नहीं करेंगे।

गांधीजी ने इस पर २४ अप्रेल सन् १६३० के 'नव जीवन' में ये पंक्तियां लिखी थीं:—

"यदि हरिभाऊजी को मिली हुई खबर सच है तो जेल में भी सत्याग्रह करने का सामान मौजूद है। आम तौर कैदी का जेलर को सलाम

करना ही अच्छा है । परन्तु यदि कोई सत्याग्रही सलाम न करे तो उसके साथ जबर्दस्ती कभी न की जानी चाहिए । अतः जब सलाम कराने के लिए किसी के साथ जबर्दस्ती की जाय तो दूसरों का भी धर्म हो सकता है कि वे भी सलाम न करें ।

"आश्चर्य यह है कि कई जगहों में सत्याग्रह कैदियों को जो रियायतें दी गई है वे इन कैदियों को नहीं मिली हैं । मेरे विचार से तो किसी भी सत्याग्रही कैदी को अन्य कैदियों से अलग न माना जाना चाहिए । परन्तु यदि एक सत्याग्रही के साथ खास वर्ताव किया जाता है तो दूसरों के साथ भी वैसी ही वर्ताव किया जाना चाहिए । कांग्रेस के नजदीक तो पथिकजी और नरसिंहदासजी का वही स्थान हैं जो राष्ट्रपति का । परन्तु कोई इस सल्तनत से न्यायबुद्धि की, इन्साफ की अपेक्षा कैसे रख सकता है ?"

जिसका चित्त ईश्वर या पवित्र कार्य में लगा है, उसे अस्पष्ट लगने वाली चीजें अधिकाधिक स्पष्ट होने लगती हैं ।

२०

साधु वेश का परिवर्तन

ब्यावर के स्थानकवासी जैन साधु श्री चैतन्य मुनि (चुन्नीलालजी महाराज) जन सेवा करना और साधु वेश छोड़ देना चाहते थे। इस बारे में उन्होंने अक्टूबर सन् १९३३ में एक पत्र द्वारा गांधीजी से परामर्श मांगा था। गांधी जी ने जैन मुनि जी के लिए यह सलाह भेजी थी:—

"यदि अपने अन्दर स्वतन्त्र स्फुरणा न हो और जैन मुनि केवल मेरे परामर्श पर निर्भर करते हों तो मैं उन्हें वेश बदलने की सलाह नहीं दूंगा। कारण वेश में कोई दोष नहीं है। दोष तो उसके दुरुपयोग में है। जैन मुनि जी पूर्ण अभ्यासी होकर निर्भयतापूर्वक धर्म मार्ग दिखाकर उसी के अनुसार चलें तो बहुत सेवा कर सकते हैं। उन्हें एकान्त पराक्रम से संस्कृत और मागधी भाषा का गहरा अध्ययन करना चाहिए। जैन मुनि के वेशांग में इसे प्रथम स्थान दिया गया है, पर अब तो वे इसका भाग्य से ही पालन करते हैं। जैन शास्त्र में अस्पृश्यता और वर्तमान वर्ण धर्म को निश्चय ही स्थान नहीं है। यह बात जैन मुनि को दृढ़तापूवक कहनी चाहिए और दूसरों से कहने के पहले उन्हें स्वयं इस बात को हृदयंगम कर लेना चाहिए। जैन मुनि के लिए किसी को पढ़ाने में कोई बाधा नहीं है। थोड़े से हरिजन

बालकों को इकट्ठा करके वे उन्हें शिक्षा दें। उन्हें प्रमाणित हो चुका हो कि हिन्दू धर्म से जैन धर्म भिन्न नहीं है, तो उन्हें इसका प्रतिपादन करना चाहिए। ऐसा करते हुए यदि उनका बहिष्कार कर दिया जाय तो उसे वह प्रेमपूर्वक सहन कर लें और अपना सेवा धर्म बराबर जारी रखें। मैं समझता हूँ, उनके लिए यह काफी होगा।"

अपनी हरिजन यात्रा के सिलसिले में गांधी जी जब ६ जुलाई १९३४ को ब्यावर पहुंचे तो जैन मुनि चुन्नीलाल जी महाराज की उनसे प्रत्यक्ष भेंट और बातचीत हुई। गांधी जी ने इस अवसर पर कहा था:—

"यदि सेवा के लिए वेश परिवर्तन करना है तो उचित नहीं, क्योंकि यदि एक राजा मेहनत करना चाहता है और लोग यह कह कर विरोध करते हैं कि राजा के लिए मजदूरी करना उचित नहीं है तो वह राजा अपने वेश को छोड़कर मजदूरी करे, इसके बदले यह अधिक हितकर होगा कि वह अपने वेश में ही काम करे। इसी प्रकार साधुओं का तो धर्म ही सेवा करना है। जब अपने खान-पान के लिए कुछ प्रवृत्ति करते हैं तो सेवा के लिए प्रवृत्ति करना और भी आवश्यक है और इसमें कोई दोष नहीं है।

मुनि जी ने कहा कि वह सेवा की खातिर अपना वेश बदला नहीं चाहते। वह साम्प्रदायिक वेशों को दलबन्दियों का चिह्न मानते हैं। ये विभिन्न जैन सम्प्रदायों के वेश शुद्ध जैनत्व के पोषक नहीं हैं, बल्कि संकुचितता के द्योतक हैं। जैन निर्ग्रन्थ के नियम उपनियम तो अति उत्कृष्ट हैं, किन्तु जैन मुनि ने कहा कि उनका पालन उनसे नहीं होता, भिक्षादि में सदोष अन्न लेना पड़ता है जिससे दम्भ का सेवन होता है। अतः जितना पालन हो सके, उतना ही लोगों को दिखाना चाहिए और उसके योग्य ही नाम रखना उचित होगा। इस दृष्टि से जैन मुनि ने कहा कि वह अपने को कुछ अंशों में जैन ब्रह्मचारी के योग्य मानते हैं और इस लिए वेश परिवर्तन इष्ट समझते हैं।

गांधीजी ने इस पर अपनी यह राय दी: "दम्भ छोड़ने की वस्तु है और जिस पद की योग्यता न हो उसे छोड़कर योग्यतानुसार पद रखने के लिए किया हुआ वेश परिवर्तन धर्मानुकूल होगा।"

श्री चैतन्य मुनि ने अन्त में जैन साधु का वेश त्याग दिया था।

२१

पधारिए कर्नल साहब

कर्नल प्रतापसिंह ईडर रियासत के राज परिवार से संबंधित थे । फौजी आदमी थे । जोधपुर के महाराजा की नाबालिगी के समय उनके संरक्षक और रियासत के प्रशासक थे । ब्रिटिश सरकार के प्रति बड़ी भक्ति दिखाते थे । देश में असहयोग आंदोलन तेजी से चल रहा था । सन् १९२१ में दिसम्बर मास के अन्त में अहमदाबाद में कांग्रेस का सालाना जलसा होने वाला था । इस प्रकार की अफवाहें फैली हुई थीं कि कर्नल प्रतपसिंह अपनी सैनिक टुकड़ी लेकर अहमदाबाद आयेंगे और कांग्रेसियों को भूनकर रख देंगे । इन अफवाहों पर गांधीजी ने ११ दिसम्बर १९२१ के 'नव जीवन' में ये पंक्तियां लिखी थीं :—

"कोई एक हफ्ते पहले से मैं सुन रहा हूँ कि कांग्रेस अधिवेशन के समय सरकार अहमदाबाद का कब्जा कर्नल प्रतापसिंह तथा उनके सिपाहियों को सौंप देगी और कर्नल प्रतापसिंह ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों को दण्ड देने का काम अपने सिर लिया है । मैं इस अफवाह को बिल्कुल झूठ मानता हूँ । सरकार इतनी डरपोक नहीं, बिल्कुल इतनी नीच नहीं और इतनी बेवकूफ भी नहीं । सरकार के पास कांग्रेस के प्रतिनिधियों को दबाने के पूरे साधन हैं । मैं यह नहीं मानता कि सरकार कर्नल प्रतापसिंह की मदद पर अपना काम चलाना चाहती है । पर ऐसा होते हुए भी मैं यह सुन रहा हूँ कि बेचारे सीधे-सादे मजदूर लोग अशान्त हो गये हैं और डर गये हैं । ऐसी अफवाहें किसी को न सुननी चाहिएं । किसी भी प्रकार के डर का अंदेशा होगा तो कांग्रेस की तरफ गे सूचना मिलेगी । मनचाही अफवाह से घबरा जाना भीरुता का चिन्ह है और भीरू

लोग न तो स्वराज्य ही ले सकते हैं और न उसे कायम ही रख सकते हैं। फिर यह नास्तिकता का चिन्ह है। अतः यह समझकर कि जो ईश्वर को मंजूर होगा सो होगा, हमें शान्त क्यों न रहना चाहिए ?

"पर मान लीजिये कर्नल प्रतापसिंहजी अपने दलबल को लेकर यहां पधारें तो डर किस बात का ? वे भी हमारे ही हैं। उनके सिपाही भी हमारे ही हैं। हमें उनके आगमन को सहन करना चाहिए, उनका स्वागत करना चाहिए और उनके सिपाहियों की गोलियां भी बर्दाश्त करनी चाहिएं। हम उन्हें गोलियां चलाने का मौका ही क्यों दें ? क्या वे रास्ते चलते हुए को छेड़ेंगे ? छेड़ें तो छेड़ते रहें, हमें अपने रास्ते जाने से काम। क्या हमारी खादी की टोपी उतरवायेंगे ? यदि उतारें तो हम टोपी न छोड़ें, मार का स्वागत करलें। इतने पर भी उतारें तो दूसरी टोपी पहन कर निकलें और अधिक मार खायें। अन्त को वे थक जायेंगे। जिन्हें मार खाने की शक्ति न हो वे ऐसे रास्ते न जाएं, पर सफेद टोपी छोड़ें हरगिज नहीं। जिस प्रकार अमांस भोजी उन देशों को नहीं जाता, जहां मांस खाये बिना गुजर ही नहीं, जैसा कि उत्तर ध्रुव के पास। परन्तु यदि उत्तर ध्रुव तक जा पहुंचा तो चाहे प्राण भले ही चले जायं पर मांस भक्षण नहीं करना। धर्म तो उसी को कहना चाहिए जिसका पालन मरणांत तक किया जाय, नहीं तो उसे या तो सुविधा या विनोद कहना चाहिए।

"यदि हमने गोरे सिपाहियों के डर को छोड़ देने का निश्चय किया हो तो फिर हमें कर्नल प्रतापसिंह के गेहुंए रंग के सिपाहियों का डर क्यों रखना चाहिए ?

"डर रखने से तो हमारी अशांति, हमारे बैर भाव की सूचना मिलती है। जिसे हम दुश्मन मानेंगे वह तो जरूर ही हमारा दुश्मन हो जायेगा। यदि हम दुश्मन को भी अपना मित्र मानकर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे तो वह समय पाकर जरूर ही मित्र हो जायगा। मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा ही बन जाता है। करें तो मित्रता और पावें दुश्मनी, यह कभी हो ही नहीं सकता। हमारा असहयोग तो शत्रु को भी मित्रता के द्वारा जीतने का साधन है।

"हमें दुश्मन को प्रेम के बल जीतना है। सो, चाहे गोरी सेना आवे या काली, उसके साथ हमारा व्यवहार एक ही सा होना चाहिए। अतएव यद्यपि मेरी यह धारणा है कि कर्नल प्रतापसिंहजी हमें दन्ड देने के लिए आने वाले नहीं, तथापि मान लीजिये वे आवें अथवा और कर्नल अपनी टुकडी लेकर आवें तो हम कह सकते हैं 'पधारिये कर्नल साहिब।'

२२

जोधपुर रेलवे के पाखाने

गांधीजी बराबर रेलों के तीसरे दर्जे में सफर करते थे। अतः उन्हें तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को होने वाली असुविधाओं का प्रत्यक्ष ज्ञान था। उन्हें करांची जाने के लिए भूतपूर्व जोधपुर रियासत की रेलगाड़ी में भी सफर करना पड़ा। उन्होंने १४ फरवरी १९२९ के 'नवजीवन' में इस रेलवे के पाखानों का जिक्र करते हुए लिखा था:—

"जोधपुर लाइन की गाड़ियों में जैसे खराब पाखाने होते हैं, वैसे तो मैंने कहीं नहीं देखे। जोधपुर लाइन के पाखाने भीतर से बन्द नहीं किये जा सकते। उनमें न हवा की गुंजाइश होती है न उजाला ही आ पाता है। मौलाना शौकतअली के समान मोटा ताजा आदमी तो उनमें शायद ही घुस सके। इन पाखानों में मैले को बहाने के छेद इतने छोटे होते हैं कि बहुत खबरदारी रखने वाला आदमी ही आसपास की बैठक को खराब करने से बचा सकता है। इस दृष्टि से जोधपुर लाइन की गाडियां तैयार करने वालों के दोष की तो हद ही हो गई है। लेकिन जो मुसाफिर कई सालों से इस हालत को निभाते आ रहे हैं, उन्हें क्या कहा जाए? दुनिया तो यही कहेगी कि ऐसे लोगों को ऐसे ही पाखाने मिलते रहें। जब रेलवे के मालिक बिना

पाखानों के भी बचा सकते हैं तो वे फिर क्यों फिजूल पैसा बर्बाद करें ? मैं मानता हूं कि इस तरह की दलील झूठी होती है। फिर भी जो मुसाफिर दूर की जा सकने वाली तकलीफों को भी सहन कर लेते हैं, उनके बारे में लोग क्या सोचेंगे ?"
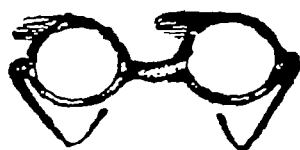
कितना ही दुःखद विषय क्यों न हो, उसकी चर्चा करते समय कठोर भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

२३

मेहतरों का जल-कष्ट

राजपूताना हरिजन सेवक संघ के मंत्री श्री रामनारायण चौधरी ने पश्चिमी राजस्थान में मेहतरों के जल-कष्ट की ओर गांधीजी का ध्यान आकर्षित किया था उन्होंने लिखा था कि मेहतरों को कुओं पर नहीं चढ़ने दिया जाता और कुओं पर बने ऐसे हौजों से पानी भरना पड़ता है, जहां पशु पानी पीते हैं, रजस्वला स्त्रियां कपड़े धोती हैं और लोग शौच जाने के बाद आबदस्त लेते हैं।

इस पर गांधीजी ने १४ अप्रेल १९३३ के 'हरिजन सेवक' में लिखा था:—

"मेहतरों का जल कष्ट निवारण का काम केवल 'हरिजन सेवक' में चर्चा कर देने मात्र से नहीं होगा। ऐसे मेहतर कितने हैं और कहां हैं, इसका पूरा पता सेवकों को लगाना होगा। जहां-जहां पानी का यह कष्ट है, उस प्रदेश के उदार धनिकों से नये कुओं का निर्माण अथवा और कोई उचित प्रबन्ध कराना होगा। इसी के साथ-साथ मेहतर भी अपनी स्थिति में सुधार करें, ऐसा मार्ग उन्हें दिखाना होगा। उन लोगों के रहन सहन में क्या सुधार हो सकता है, यह भी सेवकों को देखना होगा, अर्थात् प्रत्येक का परिचय

आवश्यक है। यह सब कार्य करने में सच्चे सेवकों की और उनकी कार्य दक्षता की आवश्यकता है।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि राजपूताना हरिजन सेवक संघ के प्रयत्न से मेहतरों और अन्य हरिजनों के जल-कष्ट निवारण की दिशा में राजस्थान में काफी काम हुआ। कुछ अलग कुए बने, कुछ पुराने कुए उनके लिए खुले और उन्हें पानी मिलने का और कोई संतोषजनक प्रबंध हुआ। उदार मानवता प्रेमी धनिकों ने इस काम में अच्छा सहयोग दिया।

चंद आदमियो में धन केन्द्रित होना और लाखों का बेकार होना, महान् सामाजिक अपराध या रोग है।

२४

अज्ञान का नमूना

बात दिसम्बर सन् १९३४ की है। रींगस में जयपुर राज्य युवक सम्मेलन का आयोजन किया गया था और उसके साथ एक खादी प्रदर्शिनी की दुकान भी लगाई गई थी। इस दुकान में कपड़ा बेचने के लिए एक हरिजन लड़का ऊपर बरामदे में बैठ गया था। इस पर यहां के सवर्ण हिन्दू बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने घोषणा की कि गांव के किसी व्यक्ति को सम्मेलन और खादी प्रदर्शिनी में नहीं जाना चाहिए, अगर कोई जायेगा तो उसे जाति बहिष्कृत कर दिया जाएगा। यह भी कहा गया कि कन्या पाठशाला में लोग अपनी लड़कियों को पढ़ने न भेजें, और हरिजन पाठशाला के अध्यापक को अपने घर न आने दें। कुछ युवकों ने फिर भी सम्मेलन में भाग लिया तो उन पर एक-एक रुपया जुर्माना किया गया। युवकों ने जुर्माना नहीं दिया।

जब इन घटनाओं की जानकारी गांधीजी को दी गई तो उन्होंने हरिजन सेवक में लिखा :—

"सवर्णों के इस बर्ताव में घोर अज्ञान के सिवाय और कुछ दिखाई नहीं देता। यह ऊंच-नीच का भाव दूर नहीं हुआ तो धर्म का नाश ही समझिये। सवर्णों के बहिष्कार से लोग डरे नहीं हैं, यह एक शुभ चिन्ह मालूम होता है, जिन्होंने

वहिष्कार किया है उन पर किसी प्रकार का क्रोध न किया जाए। साथ ही इस वहिष्कार से डर कर कोई अपना कर्त्तव्य न छोड़े। वहिष्कार करने वालों में अगर कोई प्रतिष्ठित लोग हों तो उनसे वार्तालाप भी किया जाए। संभव है इस वहिष्कार का कारण कुछ और हो।"

राजस्थान में अस्पृश्यता और ऊंच-नीच तथा सामाजिक कट्टरता की जो भावना व्यापक रूप से फैली हुई थी, रींगस की यह घटना उसका एक अच्छा उदाहरण थी। गांधीजी ने सुधारकों को सत्यग्रहियों के अनुरूप ही सलाह दी कि उन्हें विनय को न छोड़ते हुए निर्भय होकर अपने आग्रह पर डटे रहना चाहिए।

दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति है लोकमत, और वह सत्य और अहिंसा से ही पैदा हो सकती है।

२५

अफीम खाने का दुर्व्यसन

राजपूताना में अफीम खाने का दुर्व्यसन फैला हुआ था। इस बारे में एक भाई ने गांधीजी को यह पत्र लिखा था :—

"राजपूताने (मारवाड़) में लोग अफीम के पक्के व्यसनी होते हैं, इस बात का पता आपको है या नहीं, मैं नहीं जानता। शादी हो, गमी हो या उत्सव समारम्भ हो, मेहमानों को अफीम देनी ही पड़ती है। इसके लिए ज़र और जायदाद रहन और गिरवी रखना पड़े तो परवाह नहीं, मगर अफीम तो देनी ही चाहिए। इधर एक आदमी के लिए रोज़ की डेढ़ या दो तोला और कभी कभी इससे भी ज्यादा अफीम तो मामूली सी चीज़ मानी जाती है। पांच-पांच तोले तक अफीम खाने वालों को भी मैं जानता हूँ। पिछले दिनों जब मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ, तो मैं अपने देश गया। एक ब्राह्मण मित्र मातमपुर्सी के लिए आए। सबसे पहले उनके सामने अफीम पेश की गई जो आम तौर पर एक खास डिब्बी में रखी जाती है। डिब्बी में तीन तोला अफीम थी। ब्राह्मण मित्र ने कहा रुकिये, मैं ले लूंगा। उन्होंने तुरंत ही तीनों तोला अफीम अपनी हथेली पर रख ली और गट से निगल गये। मैं तो यह देख कर दंग ही रह गया। तिस पर भी मेरे वे मित्र कहने लगे कि अभी उनका मन 'धापा' नहीं। मैंने पूछा : 'कितनी अफीम हो तो आप धापें ?'

वह बोले, 'चार तोला।' अगर इन अफीमचियों को समय पर अफीम न मिले तो यह मांस के लोंदों की तरह निकम्मे बन जाते । अफीम का यह व्यसन हमारे समाज को घुन की तरह कुरेद कर खा रहा है।"

इस पर गांधीजी ने अपना अभिप्राय इस प्रकार प्रकट कया था :—

"दीनबन्धु एण्डरूज और पियर्सन ने इन अफीमचियों के लिए बहुत मेहनत की थी। शराबियों की हमने जितनी चिंता की है, उसकी आधी भी अफीमचियों की नहीं की। समाज को शराब का प्रभाव जितना स्पष्ट दिखाई पड़ता है उतना अफीम का नहीं। लेकिन इन दोनों में पसन्द करने की कोई बात ही नहीं। अफीम के गुलामों की बुद्धि पथरा जाती है। वे जीते जागते यन्त्र बन जाते और सिवा अफीम के दूसरी किसी बात में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती। उनकी इस समस्या को कैसे हल किया जाये, यह सचमुच एक बहुत ही कठिन सवाल है। जब तक हमारे पास अच्छे अनुभवी और मंजे हुए सेवकों की अपार सेवा न हो, तब तक समाज के इन असहाय लोगों को प्रभावित करना सम्भव नहीं है। यदि डाक्टरी पेशे में पड़े हुए लोग इस सामाजिक रोग के विषय में छानबीन करके इसे नष्ट करने के उपाय ढूंढ निकालें तो उनकी मदद बहुत कीमती हो सकती है।"

सेवाग्राम ४-५-४२ ('हरिजन' से)

मो० क० गांधी

आलोचना किसी भी जनतंत्रीय सरकार का भोजन है, मगर वह रचनात्मक व समझदारी-भरी होनी चाहिए।

२६

बहनों की हिमायत

बहनों के प्रति गांधीजी के हृदय में मां के समान ममता थी। वह जानते थे कि पुरुषों के हाथों बहनों को बहुत सहन करना पड़ा है। अतः किसी भी बहन की कष्ट कथा सुनकर गांधीजी का हृदय पिघल जाता था और वह उसे हिम्मत और दिलासा देने के लिए दौड़ पड़ते थे। राजस्थान की एक बहन ने गांधीजी को उनकी एक अभागिनी पुत्री की हैसियत से अपनी व्यथा लिख भेजी। इस बहन के पत्र को गांधीजी ने 'नवजीवन' में अक्षरशः प्रकाशित किया और उस पर अपनी टिप्पणी भी की। उन्होंने लिखा : "जो हाल इस बहिन का वही भारतवर्ष में बहुत सी कन्याओं का होता है। बेचारी कन्या कुछ-कुछ जानने लगती है और खेलने या पठन–पाठन के योग्य होती है कि इतने में स्वार्थी और धर्मान्ध माता–पिता उसे संसार सागर में ढकेल देते हैं। कन्या की स्वीकृति के बिना हुआ विवाह धर्म-विवाह कभी नहीं माना जा सकता। धर्म-विवाह में कन्या को यह ज्ञान होना चाहिए कि विवाह कहां किया जाना है, विवाह के लिए उसकी सम्मति ली जानी चाहिए और विवाह में पहले यथासम्भव कन्या को, जिस नवयुवक के साथ उसका अचल सम्बन्ध होने वाला है, उसे देखने का मौका मिलना चाहिए। वे कन्यायें, जो बुरी रूढियों को ठुकरा कर नया मार्ग ग्रहण करती हैं और मेरी धर्मपुत्री

बनना चाहती है, उन्हें चाहिए कि वे कभी विनय, विवेक, सत्य और संयम न छोड़ें, क्योंकि स्वेच्छाचार से और विनयादि की मर्यादा को भंग करने से दुखी होंगी। मैं लज्जित होऊंगा और वे दूसरों के लिए कभी मार्गदर्शक न बन सकेंगी। ऐसी कन्याओं में सीता के समान मर्यादा, नम्रता, पवित्रता और द्रोपदी के समान वीरता और तेजस्विता अत्यावश्यक है। सुकन्याओं को याद रखना चाहिए कि उन्हें भारतवर्ष में रामराज्य स्थापित करने में पुरुषों के साथ-साथ काम करना है और स्त्रियों की दुखद स्थिति को सुधारना तो उन्हीं का विशेष धर्म है।"

इस वहन ने अपने पत्र में जो तथ्य दिये थे, उनके बारे में विवाद उठ खड़ा हुआ और इन तथ्यों को चुनौती दी गई। इस पर गांधीजी ने इस मामले की जांच-पड़ताल का काम श्री हरिभाऊ के सुपुर्द किया था। उन्होंने जांच–पड़ताल के वाद गांधीजी को सूचित किया कि दोनों पक्षों ने सच्ची वात पर कुछ न कुछ पर्दा डाला है। गांधीजी ने इस प्रकरण को समाप्त करते हुए एक और टिप्पणी 'नवजीवन' में लिखी। उन्होंने लिखा कि राजस्थानी वहन का पत्र प्रकाशित करके उन्होंने सत्य की ओर दोनों पक्षों पक्षों की सेवा की है। "पुरुष वर्ग वहुत दफा स्त्रियों के साथ घोर अन्याय करता है और वहुत सी स्त्रियों का दुख उनकी जिन्दगी के साथ ही मिटता है। यदि वहन ने असत्य लिखा है तो उसने अपनी ही जाति को ही हानि पहुंचाई है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।" गांधीजी ने अन्त में लिखा कि वहन को उनका सहारा तभी मिल सकता है जव वह सत्यवती हो। उसकी रक्षा केवल सत्य, सतीत्व और दृढ़ता से ही हो सकती है।

इस पत्र से यह निष्कर्ष निकल सकता है कि गांधीजी की सहज सहानुभूति स्त्री जाति के साथ थी, किन्तु सत्य के पुजारी के नाते वह किसी पक्ष के साथ अन्याय न होने के लिए भी सावधान रहते थे।

२७

बाल विधवायें

रामगढ़ (जयपुर) से एक भाई ने गांधीजी को एक बाल विधवा की करुण कथा लिख कर भेजी थी। उसने लिखा था :—

"यहां के अग्रवाल समाज में एक ऐसी मृत्यु हो गई है, जिससे सारे शहर में सनसनी फैली हुई है, यानि एक ऐसे युवक का देहान्त हो गया, जिसका विवाह हुआ अभी केवल दो महीने हुए थे। बालिका अभी अपने ससुराल गई थी और न उसे अभी इतना ज्ञान ही है कि वह कुछ समझ सके। वह बिल्कुल निर्बोध है और केवल १२ वर्ष की है। वह यह जानती ही नहीं कि विवाह क्या है। इस तरह की बालिका को समाज ने विधवा करके बैठा दिया है। लोग कहते हैं, उसके भाग्य में यही लिखा था। यह उसके पूर्व जन्म के पापों का फल है। उसे कौन रोके। न लड़की का पिता जीवित है न लड़के का ही। इस तरह लड़की एक दृष्टि से अनाथ है। लड़की की बूढ़ी माता और दादी जीवित है। समाज के भय से भला उसकी माता विवाह का तो विचार कैसे कर सकती है। इस तरह दोनों ओर भीषण शोक छाया हुआ है, मगर उन्हें धैर्य दिलाने का कोई मार्ग नहीं सूझता।

"मारवाड़ी समाज में इस तरह की और भी कई तरह की बालिकायें मिलेंगी। वे भी इसी की तरह समाज को श्राप दे रही हैं और यदि निकट

भविष्य में समाज न चेता तो उसका सर्वनाश अवश्य होगा। आप मारवाड़ी समाज को इसके लिए चेतावनी दें तो बहुत कुछ असर हो सकता है। अवश्य ही बहुत के नवयुवकों में आपके वाक्य नवजीवन का संचार करते है। अत: आप इसके लिए 'हिन्दी नवजीवन' में कुछ अवश्य ही लिखें।

इस पर गांधीजी ने सुधारकों को सलाह दी कि वे सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आन्दोलन करें। वृद्ध-विवाह और बाल-वैधव्य दोनों जुड़ी हुई बुराइयां है और गांधीजी ने लिखा कि उनके विरुद्ध सत्याग्रह भी किया जा सकता है, और गांधीजी ने लिखा :—

"ऐसी दारुण कथायें भारतवर्ष में बहुत सुन पड़ती हैं और विशेषता यह है कि ऐसी घटनायें धनिक जातियों में ही अधिक होती है, क्योंकि धनिकों में वृद्ध लोगों को भी शादी करने की इच्छा होती हैं और जो लड़की विधवा हो जाती है उसे विधवा बनाये रखने में ही वे बड़प्पन मानते है। धर्म की तो यहां बात ही नहीं है। इसी कारण ऐसी घटनायें मारवाड़ी, भाटिया इत्यादि वर्गों में अधिक होती रहती हैं। इस व्याधि की एक ही औषधि है। प्रत्येक जाति में इन बुराइयों के खिलाफ विनयपूर्ण आन्दोलन शुरु किये जायं और उनके द्वारा सारी जाति में जागृति फैलाई जाय। जब समाज जागृत हो जायेगा तब न कोई वृद्ध पुरुष विवाह करने कि धृष्टता करेगा और न कोई बालिका विधवा मानी जायगी। साथ ही जब एक बार लोकमत तैयार हो जायगा, तब दैव को अथवा पूर्व जन्म के पापों के फल को दोष देकर अथवा उन्हें निमित्त बना कर कोई बाल-वैधव्य का समर्थन नहीं करेगा। जब एक नवयुवक विधुर हो जाता है, तब उसे पूर्व जन्म के दोष के बहाने विवाह करने से कोई नहीं रोकता। इस लिए सुधारकों को मेरी सलाह है कि वे निराश न हों बल्कि अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहें और आत्म–विश्वास रख कर आगे बढ़ते चले जाएं। हां, यह बात अवश्य ही याद रखनी चाहिए कि अकेले व्याख्यानों द्वारा यह काम नहीं हो सकता। सत्याग्रह तक पहुंचने की आवश्यकता होगी। सत्याग्रह रूपी सूर्य के सामने बाल-वैधव्य रूपी यह अंधेरा कभी ठहर नहीं सकेगा, क्योंकि सत्याग्रही के शब्द-कोष में निष्फलता शब्द ही नहीं है।"

२८

साम्प्रदायिक सहिष्णुता

जैनों में अनेक सम्प्रदाय हैं। उनमें प्रमुख श्वेताम्बर और दिगम्बर हैं। ऋषभदेव जैनों के आदि तीर्थंकर हुए हैं। राजस्थान में ऋषभदेव का एक प्रसिद्ध पुराना मन्दिर है। एक समय वह भूतपूर्व उदयपुर रियासत के अन्तर्गत था। इस मंदिर में तीर्थंकर की पूजा-उपासना को लेकर श्वेताम्बरों और दिगम्बरों में गम्भीर झगड़ा उठ खड़ा हुआ और दोनों पक्षों ने एक दूसरे के विरुद्ध समाचार-पत्रों में काफी कीचड़ उछाला। जब इस झगड़े की ओर गांधीजी का ध्यान आकर्षित किया गया तो उन्होंने खेद प्रकट किया और जैनों को याद दिलाया कि वे स्याद्वाद को मानने वाले हैं और स्याद्वाद एकांगी नहीं होता, वह तो अपने अलावा दूसरों के सत्य को भी मानता है। अतः गांधीजी ने २३ जून १९२७ के 'नवजीवन' में 'धर्म के नाम पर डाकेजनी' शीर्षक से एक लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने श्वेताम्बरों और दिगम्बरों से साफ साफ कहा कि उन्हें सहिष्णुता से काम लेना चाहिए। वितण्डावाद का सच्चे धर्म के साथ कोई वास्ता नहीं है। दोनों पक्षों को शुद्ध होना चाहिए और अपने अधार्मिक आचरण के लिए प्रायश्चित करना चाहिए। गांधीजी ने अन्त में कहा कि श्वेताम्बरों और दिगम्बरों के झगड़े का फैसला अखबारों या अदालतों में कभी नहीं होगा। गांधीजी का वह बोधप्रद लेख, जिससे दूसरे धर्मों के लोग भी बहुत कुछ सीख सकते हैं, हम यहां देते हैं :—

"उदयपुर राज्य में श्वेताम्बरों और दिगम्बरों के बीच जो झगड़े हुए हैं, उनके विषय में एक भाई मेरे पास अखबारों की कतरनें भेजते हुए मुझे सूचित करते हैं कि मैं उन्हे पढ़कर उनके विषय में अपने विचार जाहिर करूं। एक तो इस बीमारी में इतने अखबार पूरी तरह पढ़ने के लिए मुझे समय नहीं मिलता और दूसरे, यदि पढ़ने के लिए शक्ति और समय भी हो, तो मैं केवल अखबार पढ़कर किसी बात पर अपनी राय कायम नहीं करता और मेरा खयाल है न किसी को इस तरह राय कायम करना ही चाहिए। इसलिए मैं नहीं जानता कि दोनों पक्षों में दोषी कौन है। किन्तु अखबारों को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर मेरे दिल में जो विचार आये उन्हें मैं पाठकों के सामने पेश कर देता हूँ।

"लेख लिखने वालों की भाषा पक्षपात सूचक है। प्रत्येक दूसरे पक्ष को दोषी और अपने आपको निर्दोष समझता है।

"इन झगड़ों और उन पर लिखे हुए लेखों में तथा हिन्दू-मुसलमानों के दंगों और उनके विषय में लिखे गये लेखों में कोई तात्विक भेद मुझे नहीं दिखाई दिया। हिन्दू–मुसलमानों के झगड़ों में अधिक विष है, अधिक दुश्मनी है। पर यह भेद केवल भाषा का, परिमाण का है।

"असल बात तो यह है कि हम धर्म को ही भूल गये हैं। हर एक अपनी ही बात को कायम रखना चाहता है। यह जानने की किसी को इच्छा तक नहीं है कि धर्म क्या है, वह कहां है, उसे कैसे पहचाना जा सकता है तथा उसकी रक्षा किस तरह हो सकती है।

"पर जैनों से तो इससे अधिक अच्छी बातों की आशा की जानी चाहिए। वे तो स्याद्वाद के पुजारी हैं, दया धर्म के इजारेदार हैं। उनमें सहिष्णुता होनी चाहिए अर्थात मतभेद रखने वाले प्रतिपक्षी के प्रति उनसे तो उदारता की आशा की जाती है। उनको यह मानना चाहिए कि उन्हें स्वयं अपना सत्य जितना प्रिय है उतना ही प्रिय प्रतिपक्षी को भी उसका सत्य जरूर होगा। जहां विरोधी भूल करता हुआ दिखाई दे, वहां भी रोष को छोड़कर दयाभाव से उन्हें काम लेना चाहिए।

"परन्तु इन लेखों को पढ़ने पर मुझे यों आभास होने लगा मानो स्याद्वाद और दया-धर्म तो केवल जैन पोथीघरों तथा जैन मन्दिरों की पोथियों में ही शोभा देता हो। इसका तो मुझे जहां-जहां अनुभव होता रहता है। अगर कहीं दया-धर्म होता है तो उसकी सीमा च्यूंटियों को 'चून' और मछलियों

को बचाने में समाप्त हो जाती है। और यदि इस धर्म का पालन करते हुए मनुष्य के साथ कहीं क्रूरता हो रही हो, तो वह धर्म समझी जाती है।

"रायचन्द भाई तो कहते थे जैन धर्म वनियों के यहां गया, उसका हिसाव भी वनियों का ही हो गया है। ज्ञान और वीरता, जो दया के लक्षण होने चाहिए, उनका प्रायः लोप हो गया और दया तथा भीरुता एकार्थवादी होकर दया का पतन हो गया।

"धर्म और धन तो एक दूसरे के जानी दुश्मन ठहरे। परन्तु फिर भी जैन मन्दिरों में लक्ष्मी देवी जा वसी। अर्थात् धार्मिक सिद्धान्तों का निर्णय तपस्या से नहीं, वल्कि अदालतों में वकीलों की दलीलों से होने लगा। फलतः यह हालत हो गई है कि जो अधिक धन देता है वही धर्म का निर्णय अपने अनुकूल करा के ले जाता है।

"शायद इस चित्र में कुछ अतिशयोक्ति दिखाई दे, पर अत्युक्ति जरा भी नहीं है। मैं जैनों को जानता हूं। वैष्णव सम्प्रदाय और वैष्णवों से मेरा जितना परिचय है, लगभग उतना ही मेरा परिचय जैन सिद्धान्तों और जैनों से भी है। कितने ही लोग मुझे द्वेष-भाव से जैन समझते हैं, तो कितने ही प्रेमपूर्वक चाहते हैं कि मैं जैन हो जाऊं और कई मेरा जैनों का पक्षपात देखकर मुझ से खुश भी होते है। मैं जैनों के ग्रंथों से वहुत कुछ सीखा हूं। वहुत से जैन मित्रों का सहवास मेरे लिए वड़ा फायदेमन्द सावित हुआ है। इसीलिए उपर्युक्त वातें कह कर उन लोगों को जागृत करने की मुझे इच्छा हुई, जिन्हें जैन धर्म प्रिय है।

श्वेताम्वरों और दिगम्वरों में दुश्मनी हो ही क्यों? दोनों के सिद्धान्त तो एक ही हैं। थोड़ासा भेद है, वह तो ऐसा नहीं जो असह्य हो, वल्कि ऐसा है, जिससे दोनों शांति और समाधान पूर्वक अपने-अपने धर्म का पालन कर सकते हैं, जैसे कि द्वैत और अद्वैत।

"जैनों में साधु और साध्वियां वहुत होती हैं। उन्हें समय भी वहुत मिलता है। वे सच्ची तपश्चर्या क्यों न करें? क्यों वे शुद्ध ज्ञान को प्राप्त न करें? वे क्यों अपना अनुभूत ज्ञान समाज को न दें?

"जैन युवक अपने वड़े-बूढों के समान धर्मोपार्जन में फंसे हुए दिखाई देते हैं। गृहस्थाश्रमी रहते हुए भी वे तपस्वी जैसे वनकर उदार चित्त, स्वच्छ और दयामूर्ति क्यों नहीं हो जाते?

"मुझ से पालीताना के विषय में भी राय मांगी गई थी। अब मुझ से उदयपुर के दयनीय उपद्रवों पर मत मांगा गया है। यह मत चाहने वाले मित्र भी जवान है। इस बार मैंने ऐसा मत दे दिया है, जिसकी उन्होंने आशा भी नहीं की होगी।

"मैं जैन और हिन्दू धर्म को अलग-अलग नहीं समझता। स्याद्वाद की सहायता से ही मैं हिन्दू अर्थात् वैदिक धर्म और जैन धर्म का ऐक्य-साधन कर सकता हूं। बल्कि उसकी सहायता से मैंने तो अपने लिए कभी से समस्त धर्मों का ऐक्य-साधन कर लिया है। श्वेताम्बर और दिगम्बर के झगड़ों का न्याय अखबारों और अदालतों से नहीं प्राप्त हो सकता। वह तभी प्राप्त हो सकता है। जब दोनों अथवा अकेला ही दोनों के लिए प्रायश्चित करे और शुद्ध हो जाय। जिससे यह भी न बने वह धर्म का नाम छोड़कर नम्रतापूर्वक मौन धारण करले।"

आलोचना किसी भी जनतंत्रीय सरकार का भोजन है, मगर वह रचनात्मक और समझदारी-भरी होनी चाहिए।

२६

पिलानी का शिक्षा-केन्द्र

विडला कुटुम्ब की ओर से पिलानी में एक शिक्षा-केन्द्र चल रहा है। उसके संचालकों थी इच्छा थी कि गांधीजी स्वयं पिलानी आकर इस केन्द्र को देखें। गांधीजी के लिए ऐसा करना तो सम्भव नहीं हुआ किन्तु उन्होंने १५ जुलाई १९४० को उसके विषय में इस प्रकार लिखा था :—

विड़ला कुटुम्ब की ओर से पिलानी (राजपूताना) में विड़ला कालेज नाम की एक संस्था चल रही है। उसे देखने के लिए मुझसे बहुत बार कहा गया है और वहां जाने की मेरी तीव्र इच्छा रही है, मगर वहां तक जाने का समय मैं निकाल नहीं सका। ठक्कर बापा उसे देख आये हैं। उन्होंने मुझे उसका सुन्दर वर्णन भेजा और वहां जाने का आग्रह भी किया था। अभी हाल ही में घनश्यामदासजी ने वहां के वर्णन की एक छोटीसी किताब प्रकाशित कराई है। इस पुस्तिका को मैंने देखा है। इसका हेतु इस साहस का परिचय कराने का है। इसलिए उसमें जितनी कला डाली जा सकती थी, डाली गई है। कागज सुन्दर है, भाषा आकर्षक है, चित्रों का चुनाव भी सरस है, चित्रों को अच्छी तरह यथा-स्थान लगाया गया है। इसलिए पाठकों का मन सहज ही उसे पढ़ने को खिंच जाता है। यह किताब एक-दो महीना

तो महादेव के पास पड़ी रही। मुझे जरा फुर्सत मिले तो मुझे देने का उसका विचार था। शिमला जाते हुए रास्ते में 'महादेव' ने उसे मुझे देने को हिम्मत की। अपने चालू काम से खाली होकर मैंने इस किताब को हाथ में लिया। किताब का आकार स्कूल के लड़कों की नोट-बुक का सा है। उसके सैंतालीस पन्ने पूरे करके ही मैंने दूसरा काम हाथ में लिया। जो लोग शिक्षा के काम में दिलचस्पी रखते हैं उन्हें पिलानी कालेज के मन्त्री को लिखकर किताब मंगा लेनी चाहिए।

इस साहस का संक्षिप्त इतिहास नीचे देता हूं।

"यह संस्था बिड़ला पाठशाला के नाम से एक मामूली से मकान में चालीस वर्ष पहले स्थापित हुई थी। उस पाठशाला ने आज विशाल जमीन पर भव्य भवन का रूप धारण कर लिया है। उसमें आज इन्टरमीजिएट कालेज है। ३३ शिक्षकों इत्यादि के मकान हैं और ५ छात्रालय हैं, जिनमें २६५ विद्यार्थी रहते हैं। इनमें २७ हरिजन विद्यार्थी भी हैं।

१८ खेल के मैदान हैं।

१ पुस्तकालय है जिसमें ३५०८ हिन्दी की और ६७७२ अंग्रेजी की पुस्तकें हैं।

१ हाईस्कूल है जिसमें ७६१ विद्यार्थी पढ़ते हैं।

१ कालेज है जिसमें १६५ विद्यार्थी हैं।

१ कन्या पाठशाला है, इसमें १५७ लड़कियां पढ़ती हैं।

इसके अतिरिक्त संस्था की ओर से १२८ देहाती स्कूल चल रहे हैं। इनमें ४६३६ लड़के और २०० लड़कियां पढ़ती हैं। विद्यार्थियों के लिए कसरत वगैरह अनिवार्य हैं। संगीत भी सिखाया जाता है। विद्यार्थियों को धन्धे भी सिखाये जाते हैं। खेती और दुग्धालय भी अच्छे पाये पर चल रहे हैं। फिर दरजी का काम, रंगाई, छपाई, जिल्दसाजी, वढई, कातने, बुनने, दरियां बनाने और चमड़े का काम भी सिखाया जाता है। खास-खास किस्मों की गायें, भेड़ें और बकरियां लाई गई हैं। नई तालीम का प्रयोग भी शुरु किया गया है। एक भी चीज संचालकों के ध्यान से बाहर नहीं रही। प्रार्थना, मानसिक और औद्योगिक विकास, पौष्टिक आहार और आरोग्य रक्षण, सब कुछ यहां व्यवस्थित रीति से चलता है। विद्यार्थी को भोजन ऐसा दिया जाता

है कि उसका स्वास्थ्य अच्छा रहे। विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच कौटुम्बिक रहन-सहन रखने का प्रयत्न किया जाता है।

इस संस्था का जन्म सेठ शिवनारायणजी के दो पौत्र, रामेश्वर दयाल और घनश्यामदास की पढ़ने की इच्छा में से हुआ। सेठजी को यह अच्छा नहीं लगा कि केवल उनके पौत्र ही पढ़ें और गांव के दूसरे लड़कों को इसका लाभ न मिले। ५ रु० मासिक का उन्होंने एक शिक्षक रखा और बिड़ला पाठशाला खोल दी। जिस महावृक्ष का मैंने उपर वर्णन किया है वह इसी बीज में से निकल कर इतना बड़ा हुआ है। स्वार्थ के साथ परोपकार का मेल साधना बिड़ला बन्धुओं के स्वभाव में उतरा है। शिक्षण, आरोग्य आदि में अधिक से अधिक दिलचस्पी सेठ घनश्यामदास ने ली और पिलानी की विशाल शिक्षण संस्था में घनश्यामदासजी ने जो रस लिया, अपनी बुद्धि लगाई और ध्यान दिया उसके लिए संस्था उनकी आभारी है। सर मारिस ग्यावर वगैरह इस संस्था देख आये हैं और उन्होंने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इस कालेज को सब तरह से आदर्श कालेज बनाने का घनश्यामदासजी का वर्षों का प्रयास चल रहा है। पर चूंकि पिलानी एक देशी रियासत के अन्तर्गत है, इसलिए सब धीमे-धीमे होता है। आशा है कि ऐसी अच्छी शिक्षण संस्था को जयपुर राज्य पूरा प्रोत्साहन देगा और कालेज को पूर्ण बनाने की इजाजत भी तुरन्त दे देगा। मेरा मत है कि इतनी व्यवस्था और ध्यान से चलने वाली संस्थायें हिन्दुस्तान में थोड़ी ही हैं।

आधुनिक कालेजों की अगर आवश्यकता स्वीकार की जाये तो बिड़ला कालेज में जितनी चीजों का मेल किया गया है, दूसरी जगह वह शायद ही देखने में आयेगा।

गांधीजी के यह लिखने के बाद तो पिलानी शिक्षा-केन्द्र का कहीं अधिक विकास हुआ है और एक प्रकार से उसकी कायापलट ही हो गई है। शिक्षा के क्षेत्र में, और विशेषकर तकनीकी शिक्षा में निजी प्रयास का यह एक उत्तम नमूना कहा जा सकता है और अब तो उसे राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार, दोनों की सहायता प्राप्त हो रही है।

३०

समाचार-पत्रों पर अंकुश

हम लोगों ने रियासतों में गांधीजी की रीति-नीति के अनुसार काम करने के लिए 'राजस्थान सेवक मण्डल' नामक आजीवन सेवकों की एक संस्था स्थापित की थी। उसके मुखपत्र के रूप में 'नवज्योति' नामक एक साप्ताहिक पत्र अजमेर से निकालते थे। बात उस समय की है जब द्वितीय महायुद्ध हो गया था और सरकार ने भारत रक्षा कानून के द्वारा व्यापक अधिकार अपने हाथ में ले लिये थे। मैं उस समय नवज्योति का सम्पादक था। उसके १३ मई १९४० के अंक में श्री नटवरलाल चतुर्वेदी 'स्नेही' की एक कविता प्रकाशित हुई थी जो इस प्रकार थी :—

कवि से

क्यों लिखे कवि, करुण रस में, तरुण जीवन की कथा ?

हो सका वन्दी पवन भी तीन कालों में कभी ?
सिंधु का तूफान आया क्षुद्र नालों में कभी ?
सह सका है क्या कभी यौवन गुलामी भार को ?
छोड़ देते प्राण के भय वीर क्या अधिकार को ?

नराणांच नराधिप के गा रहा गुण क्यों वृथा ?
क्यों लिखे कवि, करुण रस में, तरुण जीवन की कथा ?

अब चली अन्याय की तममय निशा अवसान को,
निगल जाएंगी प्रपीड़ित प्राण आहें पाप को।
अब तलक जो अस्थि पंजर में टिके ये प्राण थे,
राख में छिपे हुये प्रतिकार के अंगार थे।

बढ़ चला यौवन पवन सा अब तलक जो मौन था
क्यों लिखे कवि, करुण रस में, तरुण जीवन की कथा ?

झुलसते हैं पय मुखी शिशु, भूख ज्वाला में यहां,
माता के सूखे स्तनों में शेष है अब पय कहां ?
लुढ़कते हैं पत्थरों में, पत्थरों से वे यहां,
श्वान को भी प्राप्य रवड़ी, गादियां कोमल कहां।

अब न मानवता सहेगी, अधिक मानव की व्यथा
क्यों लिखे कवि, करुण रस में, तरुण जीवन की कथा ?

पाप का प्रतिकार करने आह ज्वालायें उठीं,
निगलने अन्याय को ये व्याल मालायें उठीं।
जलियान वाले दृश्य फिर आऐं घर-घर में भले,
पर न भारत रह सके, परदेशियों के पद तले।

मृत्यु में ही सफल जीवन, यही यौवन की प्रथा
क्यों लिखे कवि, करुण रस में, तरुण जीवन की कथा।

शूलियों पर हैं परखते देश प्रेमी वीरता,
प्राण के ही मूल्य पर विकती सदा स्वाधीनता।
दीप के जब प्यार में तजता पतंगा प्राण को,
क्यों न हों हम देश हित तत्पर सदा वलिदान को ?

सृजित हो तव तूलिका से धधकती यौवन कथा
अब न लिख कवि, करुण रस में, तरुण जीवन की कथा।

'नवज्योति' देश की स्वाधीनता का कट्टर समर्थन करती थी और चाहती थी कि देश के नौजवान गुलामी की जंजीरों को तोड़ फैंकने के लिए उठ खड़े हों। उपरोक्त कविता का प्रकाशन भी उसी भावना और अभिप्राय से हुआ था। अंग्रेज सरकार की भृकुटी 'नवज्योति' पर सदा तनी रहती थी। कविता प्रकाशित होते ही अजमेर-मेरवाड़ा के प्रान्तीय प्रेस सलाहकार का पत्र मिला कि इस कविता में देश के नौजवानों को सरकार के विरुद्ध खुला विद्रोह करने के लिए आमंत्रण दिया गया है और अधिकारी उसे ब्रिटिश भारत की रक्षा के लिए न केवल आपत्तिजनक वल्कि अत्यन्त बाधक समझते हैं। यह कहा गया कि इस प्रकार की सामग्री का प्रकाशन भारत रक्षा कानून की धारा ३४ के अन्तर्गत अपराध है। और इसलिए सात दिन के भीतर कारण बताया जाए कि उक्त धारा के अनुसार सम्पादक के विरुद्ध क्यों न कार्यवाही की जाए।

मैंने इस बारे में पूज्य गांधीजी को पत्र लिखा और उनकी सलाह मांगी कि मुझे क्या करना चाहिए। मैंने लिखा कि अधिकारी ऐसी सामान्य रचनाओं पर रोक लगा कर स्वतन्त्रता की भावना का दमन करना चाहते हैं।

गांधीजी ने सेवाग्राम—वर्धा से. ३१-५-४८ को इस विषय में निम्न पत्र भेजा जो स्वयं उनके हाथ से लिखा हुआ था।

भाई शोभालाल,

मेरा कुछ खयाल है कविता के वारे में मैंने दुर्गाप्रसाद को लिखा था। आदमी को वहकानेवाली तो है। हां, यह वात सही है कि ऐसा तो सब लिखते हैं। जहां अमलदार दवाना चाहता है वहां ऐसे ही करेगा।

वापू का आशीर्वाद

मैं इस विषय में अधिकारियों से मिला था और उन्हें समझाया कि कविता केवल स्वतन्त्रता की हिमायत करती है। स्वतंत्रता की हिमायत पर सरकार को आपत्ति नहीं करनी चाहिए। अधिकारियों में सद्बुद्धि का उदय हुआ और उन्होंने इस प्रकरण को समाप्त कर दिया और मेरे विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया।

शोभालाल गुप्त

द्वितीय खंड

संस्मरणात्मक लेख

मेरे पिता, पथ-प्रदर्शक और गुरु

हरिभाऊ उपाध्याय

वापू के सहवास और सम्पर्क में २७ वर्ष रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । सवसे पहले सन् १९१५ में लखनऊ कांग्रेस में मैंने वापू के दर्शन किये । उनके दर्शन की लालसा में मैंने कई धक्के खाये । प्रथम दर्शन ने ही मेरा हृदय खींच लिया । उनके आत्म-तेज और आत्म-विश्वास का सिक्का मेरे हृदय पर जम गया । इसके वाद वापू के दर्शन कानपुर स्टेशन पर किये । वह चम्पारन सत्याग्रह में भाग लेने के वाद पंजाव मेल से दिल्ली होते हुए गुजरात जा रहे थे । सेकण्ड क्लास के दरवाजे पर एक नंगे सिर, नंगे पैर वाली मूर्ति दिखाई दी । वदन पर एक मोटा कुर्त्ता, कमर पर मोटी, छोटी धोती । चेहरे पर दृढ़ निश्चय और तपस्या का तेज झलक रहा था । जव वापू ने कहा, या तो निलहे गोरों के अत्याचारों का अन्त होगा या ये हड्डियां चम्पारन में गल जायेंगी, तो मेरी आंखों में आंसू भर आये । तीसरी वार इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में वापू के दर्शन हुए । वह सम्मेलन के सभापति वन कर आये थे । अपनी समस्त व्यस्ताओं के वावजूद उन्हें किसी ने थकते नहीं देखा । सम्मेलन की विषय समिति में मैंने देखा कि उनकी ग्रहण शक्ति अद्भुत है । उस समय उनकी जो पैनी दृष्टि मैंने देखी. उससे मुझे उनके महापुरुष होने का निश्चय

हो गया। सम्मेलन में उन्होंने जो उपसंहारात्मक भाषण दिया, उसने सबका मन हर लिया।

मैं इन्दौर से 'मालव मयूर' नामक एक मासिक पत्र निकालना चाहता था, किन्तु राज्य ने इसकी अनुमति न दी। तब खण्डवा से एक साप्ताहिक पत्र निकालने का विचार मन में आया और यह सोचा कि उसमें 'यंग इण्डिया' से लेख और टिप्पणियां लेकर दी जाएं। इस योजना के सिलसिले में मैं बापू के पास बम्बई पहुंचा। उस समय वह गामदेवी के मणिभवन में ठहरे हुए थे। बापू से मिलने पर यह प्रस्ताव आया कि पत्र अहमदाबाद से निकालना चाहिए। इसी सिलसिले में जमनालालजी से भी मुलाकात हुई। मैंने इसे अपना सौभाग्य समझा कि मुझे बापू के आश्रम में, उनके रामराज्य में रहने का अवसर मिलेगा। मैंने भगवान से प्रार्थना की कि मेरी सब कमजोरियों को दूर करना और इस पवित्र आश्रम में रहने योग्य बनाना। मैं बम्बई से सीधा अहमदाबाद चला आया। शुरू में कुछ समय शहर में रहना पड़ा, कारण प्रेस और अखबारों के कार्यालय वहीं थे। किन्तु मन आश्रम की ओर दौड़ता था। आश्रम मेरे लिए उस माता के समान रहा है, जिसने मुझे न केवल नवजीवन दिया, बल्कि अपना अमृतरस पान भी कराया। आश्रम न केवल भारत के लिए, बल्कि दुनियाभर के जिज्ञासुओं के लिए प्रेरणा का केन्द्र बना हुआ था।

'हिन्दी नवजीवन' के लिए बापू के 'यंग इण्डिया' व गुजराती 'नवजीवन' के लेखों का जो अनुवाद करना पड़ता था उससे सत्य, अहिंसा, खादी आदि के बारे में बहुत भोजन मुझे मिलने लगा। इसी समय मेरी बुद्धि ने अहिंसा धर्म सदा के लिए ग्रहण कर लिया। मैं अपने को अहिंसात्मक सेवा का एक सिपाही मानने लगा। जिन दिनों 'हिन्दी नवजीवन' निकला, युवराज के स्वागत बहिष्कार का आन्दोलन चल रहा था। उस समय कानून तोड़ने की बारी आ गई थी। मैंने स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखाना चाहा। किन्तु बापू ने कहा, तुम्हें 'हिन्दी नवजीवन' का काम करते करते पकड़े जाना है। सिपाही का काम अपनी ड्यूटी पर जमे रहना है। बापू का यह वचन सदा के लिए मेरे हृदय पर अंकित हो गया। जब 'हिन्दी नवजीवन' का पहला अंक निकला तो उसे लेकर बापू के पास गया और कहा "आपकी पसन्द के माफिक निकला है या नहीं, यह जानने आया हूं।" बापू ने उत्तर दिया "अच्छा, रख जाओ देख कर बताऊंगा।" दूसरा अंक निकलने पर उसे लेकर मैं फिर गया, "यह दूसरा अंक निकल गया। पहला आपने देख लिया होगा। आप कुछ

बतायें तो।" उन्होंने हंस कर कहा, "लेकिन मैं अभी तक पहला अंक भी नहीं देख पाया हूं। अब तो मुझे शायद ही समय मिले। लेकिन तुम अपना काम उत्साह से करते रहो। जब कोई बात सूझेगी तो बता दूंगा। तब तक तुम ऐसा ही समझो कि तुम्हारा काम मुझे पसन्द है।" छः सात महिने बाद बापू गिरफ्तार होकर साबरमती जेल पहुंच गये। उनको छः वर्ष की लम्बी कैद की सजा हो गयी। इसके बाद 'हिन्दी नवजीवन' के सम्पादक की जगह मेरा नाम जाने लगा।

जमनालालजी मेरे काम और आचार व्यवहार से प्रभावित हुए और उन्होंने सोचा कि मुझे राजस्थान में जाकर बापू की रीति-नीति अनुसार काम करना चाहिए। मुझे भी कोरे लेख लिखते-लिखते अपनी लेखनी खोखली मालूम पड़ने लगी। प्रत्यक्ष काम करने की इच्छा मन में जागृत हुई। खादी के बारे में मैंने 'नवजीवन' में जो लेख लिखे, उनसे चरखा संघ के मंत्री श्री शंकरलाल बैंकर ने भी सोचा कि खादी-प्रचार के लिए मैं राजस्थान में उपयोगी सिद्ध हो सकूंगा। 'नवजीवन' प्रेस के व्यवस्थापक श्री स्वामी आनन्द को मेरे अहमदाबाद छोड़ने पर आपत्ति थी, किन्तु मैंने समझा बुझा कर उन्हें राजी कर लिया। बापू की अनुमति भी मिल गई। मैं सन् १९२६ की जनवरी में अजमेर चला आया और तब से बराबर राजस्थान में अपनी योग्यता के अनुसार सेवा कार्य करता आ रहा हूँ।

मेरे राजस्थान में आने के पहले सस्ता साहित्य मण्डल की स्थापना हो चुकी थी। अजमेर में उसका कार्यालय रखना स्थिर हुआ। साधारण देखभाल मेरे जिम्मे हुई। इधर चर्खा संघ की राजस्थान शाखा को अधिक संगठित करने की दृष्टि से श्री देशपाण्डे उसके मन्त्री बन कर आ चुके थे। मेरी नियुक्ति इसी शाखा के प्रचार मंत्री के रूप में हुई। सन् १९२६ की बात है। बापू का एक पत्र मुझे मिला जिसमें उन्होंने खादी केन्द्र के एक कार्यकर्त्ता के बारे में शिकायतों की जांच का काम मुझे सौंपा। शिकायतें नैतिक स्वरूप की थीं। मामला कठिन था। मैं और देशपाण्डेजी दोनों खादी केन्द्र में पहुंचे। खादी कार्यकर्त्ता से मीठे ढंग से बातचीत की। उन्होंने सब बातें सच सच बयान कर दी। मैंने उन्हें समझाया कि खादी का काम कोरा व्यापारिक काम नहीं है और यह काम बापू के पवित्र नाम पर चलता है, हमें उसे उज्ज्वल रखना होगा, अतः आप इस केन्द्र का चार्ज देशपाण्डेजी को सौंप दीजिए, और पहले आत्म शुद्धि का उपाय कीजिए। उन्होंने मेरे समझाने पर चार्ज दे दिया। मैं इसे अहिंसात्मक कार्य-शैली की विजय मानता हूँ। इस केन्द्र का जो वातावरण

विगड़ गया था, उसे ठीक करने में दो-तीन महीने लगे। खुद मुझे एक दो महीने लगातार रहना पड़ा। इसमें भी इन लोगों की अहिंसावृत्ति बहुत काम आई। हमने महसूस किया कि गांववालों की भावनाओं को आघात पहुंचा है। खान-पान, आचार-विचार में उस कार्यकर्त्ता ने कोई मयार्दा नहीं रक्खी थी। गांववालों ने ऐलान करा दिया था कि कोई खादीवालों को कुए पर पानी न भरने दे। हमने अपना दृष्टिकोण उन्हें समझाना शुरू किया। और गीता की कथा भी शुरू की। अन्त में वातावरण हमारे अनुकूल हो गया। हरिजनों की बस्ती में एक पाठशाला भी खादी आश्रम की ओर से खोली गई, जिसमें धीरे-धीरे सवर्णों के बालक भी आने लगे। अछूत सहायक मण्डल कायम किया गया जिसके मंत्री देशपाण्डेजी और अध्यक्ष मुझे बनाया गया था। राजस्थान में यह पहला संगठित प्रयास अस्पृश्यता मिटाने का था।

इसी साल, यानि सन् १९२६ में, इन्दौर के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। तमाम मिलों के कोई दस, बारह हजार मजदूर हड़ताल पर थे। बोनस के सवाल को लेकर हड़ताल शुरू हुई। बाद में काम के घन्टों का सवाल भी जोड़ दिया गया। मजदूरों को १३–१४ घण्टे प्रतिदिन काम करना पड़ता था। मजदूरों के कुछ प्रतिनिधि अहमदाबाद पहुँचे। मजदूर महाजन संघ की अध्यक्षा श्रीमती अनुसूया बहन से मिले। उन्होंने और श्री शंकरलाल बैंकर ने बापू से परामर्श किया और मुझे उनके हवाले से लिखा कि मैं इन्दौर जाकर मजदूरों की मदद करूं। बापू की हिदायत थी कि मैं पहले राज्य के प्रधान मंत्री से मिलूंगा और फिर मजदूरों में काम करूं। मैं इन्दौर पहुँचा तो देखा कि वातावरण उत्तेजनापूर्ण बना हुआ है। व्यापारी लूट-पाट की आशंका से आतंकित थे और राज्य के अधिकारी भी परेशान थे। कुछ मजदूर मिल-मालिक सर हुक्मचन्द के यहां गाली-गुफ्ता कर आए थे और उनके घर के काच तोड़-फोड़ आये थे। मैं सबसे पहले प्रधान मंत्री से मिला और उनकी सद्भावना प्राप्त की। मजदूरों को समझाया कि उन्हें शान्ति का वातावरण उत्पन्न करना चाहिए। मेरी प्रेरणा पर मजदूर नेताओं ने सर हुक्मचन्द के पास जाकर उनसे क्षमा याचना की। इस सबका अच्छा असर पड़ा। लूट-पाट की आशंका नहीं रही। राज्य ने काम के दस घण्टे निश्चित कर दिये। बोनस का प्रश्न भी हल हो गया। किन्तु मालिकों ने एक नया सवाल खड़ा कर दिया कि काम के घण्टे कम होते हैं तो मजदूरी भी घटाई जानी चाहिए। इस प्रश्न को पंच फैसले से निपटाने का प्रस्ताव किया गया, किन्तु मालिकों ने उसे ठुकरा दिया। एक मित्र ने सुझाया कि अगर मिल-मालिक सर हुक्मचन्द को पंच बना दिया जाए तो यह मामला निपट

सकता है। मैं इस सुझाव पर परामर्श लेने के लिए बापू के पास गया। उन्हें भी यह सुझाव अटपटा लगा, किन्तु उन्होंने कहा कि अगर मजदूर इसके लिए राजी हों तो उस पर अमल किया जा सकता है। श्री गुलजारीलाल नन्दा भी मेरे साथ इन्दौर आए। हम लोगों ने सर हुक्मचन्द की मनोभूमिका जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने हमें यकीन दिलाया कि वह मजदूरों के प्रति न्याय करेंगे। हमने मजदूरों को यह प्रस्ताव मान लेने के लिए राजी कर लिया। हुक्मीचन्द ग्रुप के लिए सर हुक्मचन्द व मालवा मिल के लिए श्री द्रविड़, पंच नियत किये गये। दोनों पंचों ने दो महीने बाद यह फैसला दिया कि मजदूरों की मजदूरी में कोई कटौती न की जाय। इस प्रकार मजदूरों की तीनों मांगें मानली गईं। मजदूर संघ भी कायम हो गया। मजदूरों की यह एक सफल हड़ताल रही। इससे सिद्ध हुआ कि बापू की रीति-नीति के अनुसार संगठन, एकता, अनुशासन और अहिंसा के द्वारा मजदूर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

जयपुर राज्य में खादी उत्पत्ति का कार्य होता था। किन्तु बिक्री प्रायः बाहर बम्बई, गुजरात, आदि में होती थी। अतः राजस्थान में खादी बिक्री बढ़ाने के प्रयत्न किये गये। बिजोलियां (मेवाड़ राज्य) में श्री जेठालाल भाई ने वस्त्र-स्वालम्बन का काम चर्खा संघ की ओर से राज्य की ओर से शुरू किया था। सन् १९२७ में राज्य ने बिजोलियां में कुछ कार्यकर्त्तायों को गिरफ्तार कर लिया। उनमें दो खादी कार्यकर्त्ता भी थे। चर्खा संघ की ओर से राज्य को यह आश्वासन दिया गया था कि उसके कार्यकर्ता राजनीति में नहीं पड़ेंगे। सेठ जमनालालजी बजाज चर्खा संघ के अध्यक्ष थे। उन्हें इस मामले में हस्तक्षेप करना पड़ा। वह अधिकारियों से मिलने के बाद बिजोलियां गए। मैं भी उनके साथ गया था। उस यात्रा में बिजोलियां में वस्त्र-स्वावलम्बन का जो कार्य मैंने देखा तो उस पर मुग्ध हो गया। मैंने वस्त्र-स्वावलम्बन बनाम उत्पत्ति-बिक्री नामक एक लेख तैयार करके बापू को भेजा। उसमें वस्त्र स्वावलम्बन की महत्ता और उत्पत्ति-बिक्री वाली खादी की कमियां बतलाई गई थीं। बापू ने कहा, वस्त्र-स्वावलम्बन की महत्ता वाला भाग छापना मुनासिब होगा, उत्पत्ति-बिक्री की कमियों वाला छापने से हानि होगी। लोग वस्त्र-स्वावलम्बन को अपनायेंगे नहीं, उत्पत्ति-बिक्री से अलबत्ता पराङ्मुख हो जायेंगे। आगे चल कर बापू कहने लगे कि उत्पत्ति-बिक्री बन्द हो जाए तो मुझे रंज न होगा। वस्त्र-स्वावलम्बी एक भी व्यक्ति होगा तो मैं उसे लेकर नाचूंगा।

बिजोलियां की एक समस्या और थी। बिजोलियां उदयपुर राज्य का एक ठिकाना था। १५ हजार के लगभग उसकी आबादी रही होगी जिसमें १०

हजार के ऊपर किसान थे। ठिकाना किसानों से लगान के अलावा ८० तरह की लागें वसूल करता था। किसान अरसे से अपनी तकलीफें मिटाने की कोशिशें कर रहे थे किन्तु जब पथिकजी बिजोलियां पहुँचे तो उन्होंने किसानों को संगठित किया। राजस्थान ही नहीं शायद सारे भारत में किसानों को इस प्रकार संगठित करने का यह पहला प्रयास था। चार वर्ष तक किसानों ने लगान नहीं दिया और आन्दोलन तो इससे भी अधिक चला। अन्त में राजपूताना के ए० जी० जी० की मध्यस्थता से फरवरी १९२२ में किसानों और ठिकाने में समझौता हुआ और बहुत सी लाग -बेगार रद्द करदी गई। इस समझौते के अनुसार बिजोलियां में बन्दोबस्त हुआ। किसानों को शिकायत हुई कि नये बन्दोबस्त में बिना सिंचाई की जमीन पर लगान बढ़ा दिया गया है। किसानों को इसके अलावा कुछ दूसरी शिकायतें भी थीं। जब उनकी सुनवाई नहीं हुई तो किसानों ने विरोध-स्वरूप पथिकजी की सलाह पर माल ज़मीन का इस्तीफा दे दिया। माल जमीन कुल ८० हजार बीघा थी। उसमें से ६० हजार बीघा जमीन का इस्तीफा दिया गया और इस्तीफा देने वाले किसानों की संख्या ३८९५ थी। राज्य ने इस्तीफे मन्जूर कर लिये और बहुत सी जमीन दूसरों को पट्टे पर दे दीं। इस पर किसानों में बड़ा असन्तोष था।

एक ओर राज्य के तत्कालीन रेवेन्यु मेम्बर मि० ट्रैंच ने जमनालालजी से अनुरोध किया कि वह इस झगड़े में दिलचस्पी लेकर उसे निपटा दें। उधर किसानों ने भी उनकी सहायता मांगी। पथिकजी ने पंचायत के सलाहकार पद से इस्तीफा दे दिया। जमनालालजी की सलाह पर पंचायत ने मुझे अपना सलाहकार नियुक्त किया। तब मैंने जमनालालजी के पथ प्रदर्शन में समझौते के प्रयत्न शुरू किये। मैं रेवेन्यु मिनिस्टर मि० ट्रैंच से मिला और समझौते की बातचीत चलाई। अन्त में एक समझौता हुआ, जिसमें और बातों के अलावा यह तय पाया कि इस्तीफा-शुदा जो जमीन राज्य के कब्जे में है वह किसानों को तुरन्त लौटा दी जाएगी और जो जमीन पट्टे पर दी जा चुकी है, उसे पट्टेदारों को खानगी तौर पर समझा बुझा कर किसानों को दिलवा दिया जाएगा। इस शर्त को पूरा करने की जिम्मेदारी मि० ट्रैंच ने ली थी। किन्तु यह मामला लम्बा चला। किसानों को उनकी जमीनें नहीं मिलीं। अतः उन्होंने निराश होकर सन् १९३१ में सत्याग्रह का आश्रय लिया। किसानों ने अक्षय तृतीया को उस जमीन पर हल चला दिये जो उनकी पुश्तैनी थी और जिसका पट्टा राज्य ने दूसरों को दे दिया था। राज्य की ओर से घोर दमन हुआ। माणिकलालजी सहित कई कार्यकर्त्ता और किसान जेलों में बन्द किये गये थे तथा

कार्यकर्ताओं और किसानों को बुरी तरह मारा-पीटा और सताया गया। भाई शोभालालजी और अचलेश्वरजी जैसे प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओं को भी मार सहनी पड़ी। जब सत्याग्रह चल रहा था तो मैं बापू के पास बारडोली पहुँचा और सारी स्थिति उनके सामने रखी। बापू ने सलाह दी कि फिलहाल सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाए और वह मालवीयजी या जमनालालजी के द्वारा समझौता कराने का प्रयत्न करेंगे। तदनुसार बिजौलियां का सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। बाद में मालवीयजी ने भी इस मामले में काफी दिलचस्पी ली और राज्य के प्रधान सलाहकार सर सुखदेव प्रसाद और जमनालालजी के बीच एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार जिन किसानों को सत्याग्रह के सिलसिले मे सजायें हुईं थीं, उन्हें अपील करने पर रिहा कर दिया गया और यह तय पाया कि किसानों को उनकी जमीनें लौटा दी जाएंगी। फिर भी जब काफी समय तक किसानों को जमीनें नहीं मिलीं, तो मैंने मन में सोचा कि मुझे इसके लिए अनशन करना चाहिए। जब जमनालालजी ने यह प्रसंग बापू के सामने उपस्थित किया तो बापू ने कहा कि अनशन करने का विचार हरिभाऊ के मन में आया यह तो मुझे अच्छा लगा, परन्तु उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है। पहले किसानों को संगठित करके उनमें अपनी मांग की पूर्ति कराने के लिए बल पैदा करना चाहिए। सत्याग्रही को जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। अन्त में किसानों को उनकी जमीनें वापस मिल गईं। अहिंसा और धीरज,कष्ट-सहन और त्याग द्वारा किसानों को उनका न्यायोचित हक प्राप्त हुआ।

सन् १९३५ में इन्दौर में फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और बापू को उसका सभापति बनाया गया। इस अवसर पर एक लाख रुपये की थैली हिन्दी प्रचार के लिए बापू को भेंट करने का निश्चय हुआ। एक खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। अधिवेशन में कुछ लोग गड़बड़ी करना चाहते थे किन्तु उनकी कुछ नहीं चलने पाई। ग्रामोद्योग प्रदर्शनी में मेरे विरुद्ध एक पर्चा छपा कर बांटा गया। बापू ने यह पर्चा मुझे दिया। किन्तु उसके बारे में मेरे चाहने पर भी उन्होंने मुझसे कोई पूछताछ नहीं की, केवल इतना कहा कि लोग यहां भी मेरे पीछे पड़े हैं। दोनों आयोजन निर्विघ्न पूरे हुए।

अब मैं बापू के बारे में कतिपय विविध संस्मरणों का उल्लेख करूंगा।

बीकानेर के स्वर्गीय महाराजा सर गंगासिंह के समय में श्री खूबराम जी सर्राफ तथा दूसरे कुछ व्यक्तियों पर षडयन्त्र और राजद्रोह का मुकदमा

चल रहा था। मेरे एक मित्र ने एक बचाव कमेटी बनाई थी। मेरी भी उसमें दिलचस्पी थी। मुकदमें ने काफी हलचल मचा रखी थी। खुद पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराजा को इस मामले को निपटा देने की सलाह दी थी। किन्तु महाराजा ने उनको भी दाद नहीं दी। मित्र ने सुझाया कि इस मामले में बापू की मदद लेनी चाहिए। मैं उन्हें लेकर वर्धा गया और बापू से मिला। बापू ने तुरन्त महाराजा को पत्र लिख दिया और हमें सचेत कर दिया कि यह समाचार अखबारों में न छपे। किन्तु किसी तरह मित्र की असावधानी से यह खबर अखबार में छप गई। मुझे बापू से माफी मांगनी पड़ी। बापू मुझ पर बहुत बिगड़े। उन्होंने इस भूल के लिए मुझे जिम्मेदार समझा। जब मैं दुबारा उनसे वर्धा में मिला तो उन्होंने बड़े दुःखी स्वर में मुझसे कहा, "हरिभाऊ तुम्हारे मित्र यह नहीं जानते कि उनका हित किसमें है। अब इस खबर के जाहिर हो जाने से बीकानेर महाराजा अभियुक्तों को छोड़ते होंगे तो भी नहीं छोड़ेंगे। तुमको पता है कि वह पोलिटिकल एजेन्ट को मना कर चुके हैं। अब जो आदमी पोलिटिकल एजेन्ट के कहने से अभियुक्तों को न छोड़ें, वह गांधी के कहने से छोड़ दे तो उसे गद्दी छोड़नी पड़े। पोलिटिकल एजेन्ट उसे खा जाएगा। अब इसका प्रायश्चित यही है कि आगे से तुम यह जानने की कोशिश न करो कि इस विषय में मैं क्या कर रहा हूँ। तुमसे कह कर मैं दुबारा जोखम नहीं उठाना चाहता।" मेरे लिए इससे बड़ा प्रायश्चित या दण्ड दूसरा नहीं हो सकता था।

❀ ❀ ❀ ❀

जोधपुर के एक कार्यकर्त्ता थे। बड़े सच्चे, नेक और व्रत, संयम और श्रद्धा रखने वाले। विवाहित थे। विवाह हुए दो चार साल ही हुए होंगे कि उन्होंने ब्रह्मचर्य से रहने का नियम बना लिया, पर इसमें उन्हें अपनी पत्नी का सहयोग नहीं मिला। उसकी बड़ी बुरी दशा थी। जबरदस्ती के संयम से भीतर ही भीतर उसका मन कुण्ठित रहने लगा। वह भाई बड़ी दुविधा में पड़े। तय पाया कि इस बारे में बापूजी का परामर्श लिया जाए। संयोग से बापू अजमेर स्टेशन से गुजरे। शायद अहमदाबाद जा रहे थे। अजमेर से ब्यावर तक गाड़ी में मैंने उस दम्पत्ति को बापू से बातचीत का अवसर दिला दिया। मैं भी मौजूद था। बापू ने उस भाई से कहा, तुम्हारा ब्रह्मचर्य मुझे 'कच्चा' मालूम देता है। यही कारण है कि उसका असर तुम्हारी पत्नी के मन पर अभी तक नहीं हो पाया है। सच्चे ब्रह्मचर्य का परिणाम आना चाहिए कि जो उसके सम्पर्क में आए, उसका मन विकारों से फिर जाए। तुम्हारी पत्नी चौबीसों घण्टे तुम्हारे साथ रहती है, फिर व्याकुलता से गृहस्थ जीवन चाहती

है तो तुम्हें अपना आग्रह छोड़कर उसे संतोष देना चाहिए। दोनों ने यह सलाह स्वीकार कर ली।

❀ ❀ ❀ ❀

अजमेर के मेरे एक आर्यसमाजी मित्र बापू के बड़े आलोचक थे। बड़े स्पष्टवादी और मुंहफट थे। अक्सर कहा करते थे कि महात्माजी से मेरी भेंट करा दो तो मैं उन्हें खरी-खरी सुनाऊंगा। संयोग से बापू एक दिन अहमदाबाद जाते हुए अजमेर से गुजरे और हम लोग उनके दर्शनार्थ गये। वह मित्र भी आ पहुंचे। मैंने बापू से उनका परिचय कराया और कहा कि यह आपसे कुछ कहना चाहते हैं। बापू सुनने को राजी हो गये। मित्र ने अपनी बौछार शुरू कर दी। गाड़ी के रवाना होने तक वह कहते ही रहे। उनकी बात पूरी नहीं हुई। मैं बापू के साथ आगे तक चला गया। मैंने सोचा कि बापू को बुरा लगा होगा। किन्तु बापू ने मुझसे कहा, "मुझे तो अफसोस है कि ज्यादा वक्त नहीं था, नहीं तो मैं उनकी बातें और सुनता। उन्हें पूरा समय देता।" बापू में इतना धीरज था कि वह विरोधी के विचारों को बड़ी शान्ति के साथ सुन सकते थे।...

❀ ❀ ❀ ❀

जयपुर सत्याग्रह शुरू करने के पहले जमनालालजी ने, जो इसके नेता थे, भाई हीरालालजी और जयपुर राज्य प्रजामण्डल की कार्यकारिणी के सदस्यों से कहा था कि यदि कार्यकारिणी के पांच-छह सदस्य भी जेल जाने को तैयार हों तो वह बापू के आशीर्वाद लेने का प्रयत्न करेंगे। उन दिनों बापू का पड़ाव बारडोली में था। प्रजामण्डल के मित्रों ने जब प्रतिज्ञा की कि वह हर तरह से तैयार हैं तो बापू ने सत्याग्रह के लिए अपने आशीर्वाद दे दिये और उसके संगठन आदि का भार जमनालालजी पर छोड़ दिया।

जयपुर का सत्याग्रह शुरू हुआ उसके नेता जमनालालजी और प्रजामण्डल की कार्यकारिणी के सदस्य जेल में जा चुके थे। इसके अलावा कई सौ स्वयंसेवक गिरफ्तार हो चुके थे। राजकोट में भी सत्याग्रह हुआ था। किन्तु उसे बापू ने स्थगित करा दिया था। बापू राजकोट से दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में हमें उनसे मिलकर जयपुर सत्याग्रह का हाल बताना था। हम सोजत स्टेशन पर उनसे मिले। हमने सुना था कि बापू ने राजकोट का सत्याग्रह इसलिए बन्द करा दिया कि उसमें सत्याग्रह के नियमों का ठीक-ठीक पालन नहीं हो रहा है। हमें डर लगा कि कहीं बापू जयपुर का सत्याग्रह भी स्थगित न करादें। बापू ने पूछा, "तुम्हारा सत्याग्रह तो ठीक ठीक चल रहा है न ? कोई गड़बड़ तो नहीं है। मैंने कहा,"'"बापूजी कह तो नहीं सकते कि सब

ठीक-ठाक चल रहा है, गलतियां तो हो ही रही हैं, पर हम लोग पूरी-पूरी कोशिश कर रहे हैं कि गलतियां रुकें और आगे न होने पायें।" बापू गम्भीर हो गए और राजकोट सत्याग्रह की एक त्रुटि बताने लगे ताकि हम अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझ लें। अन्त में दिल्ली जाकर यह सलाह दी कि जयपुर-सत्याग्रह स्थगित कर दिया जावे। हमने यह आशंका प्रकट की कि इससे लोगों में निरुत्साह फैल जाएगा। बापू ने कहा जयपुर का मामला हल करने के लिए तो यदि अकेले जमनालालजी भी जेल में पड़े रहें तो काफी होगा। उनकी कुर्बानी को भी यह सरकार पचा न सकेगी। फिर बापू ने यह भी बताया कि तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने उन्हें आश्वासन दिया है कि वह इस मामले को निपटा देंगे। अतः उन्हें ऐसा करने के लिए कुछ समय देना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९३४-३५ में बापू हरिजन यात्रा पर निकले थे। इसी सिल-सिले में अजमेर और ब्यावर भी आए। अजमेर में एक मित्र ने प्रस्ताव रखा कि बापू अर्जुनलालजी सेठी के घर पर जाएं। सेठीजी अपने ढंग के स्वतन्त्र व्यक्ति थे। बापू के आलोचक थे। कानपुर कांग्रेस के समय बापू को काफी खरी-खोटी सुनाई थी। बापू ने मेरी राय पूछी कि सेठीजी के यहां जाना चाहिए अथवा नहीं। मैंने कहा कि जाने में कोई हर्ज नहीं, किंतु उससे सेठीजी की वृत्ति में मेरी राय में कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। बापू ने मुझ से पूछा कि तुम साथ चलोगे। सेठीजी उस समय मुझ से खास तौर पर नाराज थे। मैंने साथ जाने की तैयारी प्रकट की। बापू ने कहा, सेठी जी के यहां जाना चाहिए, तुम कहते हो वैसा ही नतीजा निकले तो भी हमें शुभ कार्य करने से हिचकिचाना नहीं चाहिये। बापू सेठीजी के यहां गए तो सेठीजी गद्गद हो गए। हम लोग भी आनन्द विभोर हो उठे।

❀ ❀ ❀

अजमेर की इस यात्रा में बापू को अजमेर के एक पुराने मेजवान ने अपने यहां शाम के भोजन का निमन्त्रण दिया। कुछ लोग बापू को उनके यहां जाने देना नहीं चाहते थे। बापू को मैंने बताया कि इन मित्र के बारे में कुछ शिकायतें सुनी हैं और लोग आपके उनके यहां जाने का विरोध करते हैं। बापू ने उस मित्र से मेरा आमना-सामना करा दिया। मैंने उन मित्र से इन शिकायतों के बारे में पहले बातचीत नहीं की थी क्योंकि मैंने शिकायत के रूप में नहीं, एक कठिन स्थिति को बचाने के उद्देश्य से उनका जिक्र

स्व० अर्जुनलाल सेठी
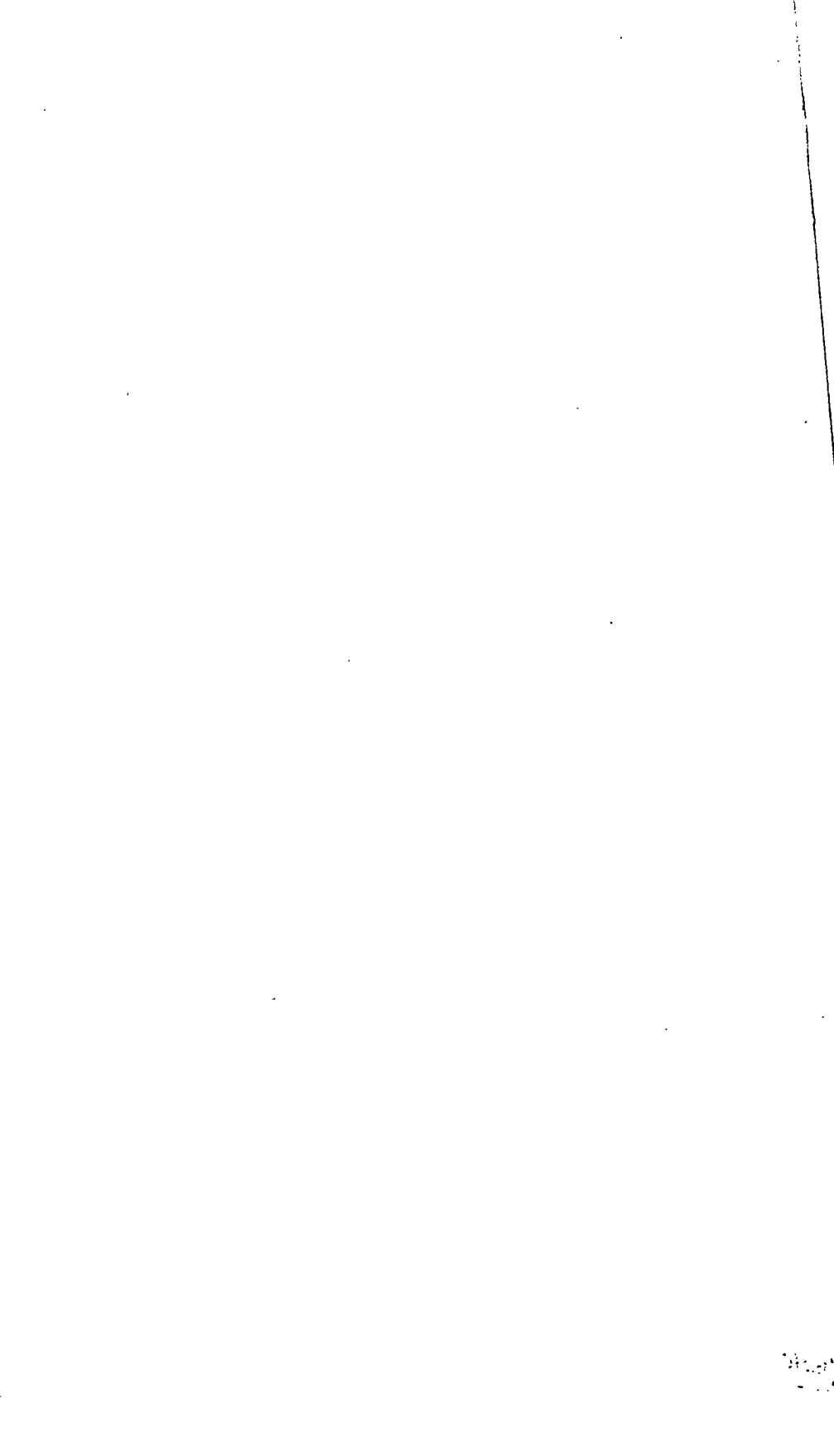
वापू से किया था। इससे मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। वापू के सुझाव पर उन मित्र से चर्चा की और उसकी जो रिपोर्ट वापू को सुनाई, उस पर से वापू ने उस समय उन मित्र के खिलाफ फैसला नहीं दिया। उन्होंने कहा कि जब तक किसी के खिलाफ शिकायतें सच साबित नहीं हो पातीं, तब तक उसे निर्दोष मानना चाहिये। अतः मुझे उनके यहां जाना चाहिए और वापू उन मित्र के यहां गए। मुझे एक अच्छा सबक मिला।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १६२८-२६ में हम लोगों ने कांग्रेस का चुनाव लड़ा था। मतदाताओं के लिए खादी पहनने की शर्त थी। दोनों दलों ने मिलकर १४ हजार सदस्य बनाये थे। प्रतिपक्षियों ने थोड़े से खादी के कपड़े बनवा लिए थे और वारी-वारी से उन्हीं को पहना कर लोगों से वोट दिलवाये। इस आधार पर चुनाव रद्द कर दिया गया। मैंने वापू को इसकी सूचना दी तो उन्होंने फौरन मुझ से पूछा कि तुम्हारे पक्षवालों ने तो कोई गलती नहीं की है। मेरे साथी कुछ घबरा गए, क्योंकि ऐसी खबर लगी थी कि बावजूद हमारी कोशिश के लोगों ने अनियमितता कर डाली थी। जहां तक मुझे याद है अनियमितता तत्कालीन कांग्रेस के विधान या परिपाटी के अनुसार तो नहीं, पर वापू के मापदण्ड से वह अनुचित हो सकती थी। मैंने वापू को लिखा कि आपके स्टेण्डर्ड से हम लोग भी अवश्य कुछ दोषी हैं, कांग्रेस के स्टेण्डर्ड से नहीं गिरे हैं, हमारा सच्चे दिल से यही प्रयत्न है कि आपकी परीक्षा में पास हों। वापू ने हमारी कठिनाई और परेशानी को समझ लिया। हमें लिखा: "चिन्ता करने की जरूरत नहीं, सच्चे दिल से शुद्धि का प्रयत्न करते रहो।"

❀ ❀ ❀ ❀

अजमेर में हमने एक वार खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी की। उसी सिलसिले में किले की एक बुर्ज पर ऊंचा राष्ट्रीय झण्डा फहराया। तत्कालीन कमिश्नर ने प्रदर्शनी के मंत्रियों, कृष्णगोपाल और बालकृष्ण गर्ग, के नाम आदेश भेजा कि झण्डा उतार लिया जाए। उन दिनों सत्याग्रह आंदोलन स्थगित था और वापू का सख्त आदेश था कि उनकी इजाजत के बिना कोई कानून न तोड़ो। हम धर्म-संकट में पड़े। दो घण्टे के समय में वापू की इजाजत प्राप्त नहीं की जा सकती थी। इधर इस अपमान-जनक हुक्म को कोई मानने को तैयार नहीं था। अन्त में हमने यही निर्णय किया कि झण्डा न उतारा जाए। फलस्वरूप आदेश की अवहेलना करने के जुर्म में प्रदर्शनी के

मंत्रियों को चार-चार महीना कड़ी कैद की सजा दी गई। जब मामला बापू के सामने गया तो उन्होंने कहा: "तुम लोगों ने अनुशासन को तो भंग किया है किन्तु तुम्हारी परिस्थिति तो मैंने समझ लिया। गलती तुमने सही दिशा में की है।" बापू ने 'हरिजन' में हमारे पक्ष का ही समर्थन किया।

बापू के और भी बहुत संस्मरण हो सकते हैं। बापू को मैं पिता, गुरु और नेता, तीनों मानता था। उनसे मेरा जीवन काफी प्रभावित हुआ और जब तक वह जीवित रहे मैं उनके मार्ग-दर्शन में सेवाकार्य करता रहा। अब उनकी शिक्षायें और आदर्श मेरा मार्ग-दर्शन करते हैं।

स्थितप्रज्ञ के श्लोक गानेवाले को शांतिपूर्वक काम करने की आदत डालनी ही चाहिए।

२

महानतम महापुरुष गांधीजी

रामनारायण चौधरी

मैं महात्मा गांधी को संसार का सबसे बडा महापुरुष मानता हूँ। क्योंकि उन्होंने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है और अहिंसा को सामूहिक समस्याओं के हल का कारगर तरीका साबित करके दिखाया है। मेरे जीवन पर उन्हीं का सबसे ज्यादा असर हुआ है। उनके विचारों ने मेरे सारे परिवार को ही अनुप्राणित किया है। हम गांधीवाद को ही अपना धर्म मानते हैं।

मेरा प्रथम परिचय गांधीजी से १९१७ में परोक्ष रूप से ही हुआ। मेरे सहपाठी और क्रांतिकारी दल के साथी छोटेलालजी जैन उनके साथ चम्पारन में काम करने लगे थे। उनके द्वारा गांधीजी ने मुझे भी बुलाया। उसी समय सेठ जमनालालजी का वर्धा के लिए बुलावा आगया। गांधीजी को मालूम हुआ तो उन्होंने मुझे वर्धा जाने की सलाह दी और मैं वहां चला गया।

प्रत्यक्ष दर्शन मुझे उनके पहली बार १९१३ में हुए। वह कलकत्ते की कांग्रेस में जा रहे थे। रेल के तीसरे दर्जे में सफर कर रहे थे। जमनालाल

जी, जाजूजी और मैं भी उसी गाडी में सवार हो गये। नंगा सिर, मोटी खादी का कुर्ता और धोती पहने, रांग की डंडी का चश्मा लगाये, कुछ पढ़ रहे थे। जाजूजी ने उनसे पूछा, "जो काम आपने अफ्रीका में किया वह यहां नही हो सकता ?" उत्तर अंग्रेजी में यह था, "Given the cause and the leader, the same can be done here." (कारण और नेता मिल जायं तो वही यहां भी हो सकता है)। मुझे यह मंत्र सा लगा।

कलकत्ते में वापूजी माहेश्वरी विद्यालय में ठहराये गये थे . सौभाग्य से उनकी सेवा में मुझ को तैनात किया गया। लेकिन वह तो सव काम खुद ही करते थे। मुझे कुछ भी नहीं करने दिया। कांग्रेस के अधिवेशन में वह नंगे-पैरों मोटी खादी के लम्वे अंगरखे और काठियावाड़ी पगड़ में मंच पर आये और हिन्दी में वोले। उनके स्वदेशी लिवास, सादे रहन-सहन और राष्ट्रभाषा प्रेम का मुझ पर गहरा असर हुआ।

मेरी दूसरी मुलाकात गांधीजी से १९१८ में जमनालालजी की वम्वई की दुकान पर हुई। सेठजी वीमार थे। उन्हीं को देखने आये थे। उस समय उन्होंने टोपी लगाना शुरु कर दिया था। इसी अवसर पर मुझे उनके साथ पूना तक रेल यात्रा करने और २४ घण्टे साथ रहने का मौा मिलका। वह चिंचवड़ के अनाथाश्रम में किसी समारोह का सभापतित्व करने गये थे। इस प्रसंग पर मुझे उनकी सहृदयता, रोगियों के प्रति कोमल भावना, सफाई और वक्त की पावन्दी के पदार्थ-पाठ मिले।

हम तीसरी वार १९१० की नागपुर कांग्रेस में मिले। मैं पथिकजी के साथ गया था। वापू ने देखते ही पहचान लिया। पथिकजी ने पूछा: "महात्माजी, हम विजोलियां के अपने छोटे से काम में लगे रहें या आपके असहयोग यज्ञ में हाथ वटायें।" "नहीं, आपको स्वधर्म का ही पालन करते रहना चाहिए। वह भी इसी यज्ञ की एक आहुति है। परन्तु आपके सत्याग्रह में योग देने का वचन मैंने पहले दिया था, असहयोग मैंने वाद में शुरु किया है। वताइये उस वचन का पालन पहले करूं या यह नया काम जारी रखूं ?" वापू के इस उत्तर से हम पानी-पानी हो गये। वचन पालन की इतनी उत्कट थी उनकी भावना।

❀ ❀ ❀ ❀

नागपुर अधिवेशन में वापू ने कांग्रेस के विधान में कांग्रेस का ध्येय व्रिटिश भारत से वढ़ाकर देशी राज्यों सहित समूचे भारत के लिए स्वराज्य

तय कराया, रियासती जनता को कांग्रेस में प्रतिनिधित्व दिलवाया और अजमेर मेरवाड़ा, राजपूताना और मध्यभारत को अलग प्रान्तीय इकाई बनवाया। इससे मुझे परम संतोप हुआ क्योंकि कुछ ही दिन पहले मैं राजस्थान सेवा संघ नामक संस्था में शरीक होकर देशी रजवाडों की प्रजा की आजन्म सेवा का व्रत ले चुका था। मैंने गांधीजी को समस्त राष्ट्र का एक मात्र नेता स्वीकार कर लिया।

❀ ❀ ❀ ❀

विजोलियां सत्याग्रह के नेता पथिकजी बापू के मार्ग-दर्शन का वचन प्राप्त कर चुके थे और उसके सम्बन्ध में प्रत्येक महत्वपूर्ण कदम बापू की सलाह से उठाते थे। ऐसी ही हालत के लिए पथिकजी बापू से मिलने १६२१ के जनवरी या फरवरी मास में दिल्ली गये। मैं साथ था। यह मेरी उनसे चौथी भेंट थी। जागीरदार पर सत्याग्रह का असर पड़ने लगा था। उसकी ओर से समझौते के सन्देश आ रहे थे। बापू की राय से मुझे विजोलियां भेजना निश्चित हुआ। बाहर से जाने वाला मैं पहला राजस्थानी कार्यकर्ता था जो वहां खुले तौर पर गया था। मैं वहां की किसान जनता में अपूर्व उत्साह और संगठन देखकर सर्वत्र वन्देमातरम् की गूंज सुनकर और शांत सत्याग्रह का अद्भुत प्रभाव अनुभव करके सदा के लिए अहिंसा का पुजारी बन गया।

❀ ❀ ❀ ❀

सत्याग्रह आश्रम साबरमती के नियमों का अध्ययन करके हमने अपने नवनिर्मित राजस्थान सेवा संघ में भी व्यक्तिगत सम्पत्ति न रखने का नियम रखा था। उस सम्बन्ध में बापू से भी वर्धा में चर्चा हुई। उन्होंने जोर देकर कहा कि धन का मोह रखकर गरीबों की सेवा नहीं हो सकती। मेरी धर्म-पत्नी अंजनादेवी भी साथ थी। हम दोनों ने ही बापू के चरण छूकर जायदाद और जेवर का त्याग कर दिया।

राजस्थान के महारथियों ने जमनालालजी की उदार सहायता से १६२१ में वर्धा से 'राजस्थान केसरी' नामक एक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र निकाला। यह खास तौर पर देशी राज्यों के लिए था। पथिकजी को सम्पादक, मुझे प्रकाशक तथा सहायक सम्पादक बनाया गया। कानूनी जिम्मेदारी उन दिनों प्रकाशक की ही होती थी। एक थानेदार के अत्याचारों का विरोध करने वाले लेख पर मुझे तीन मास की कैद की सजा मिली। मैं बापू का आदमी समझा जाता था और जेल अधिकारी मुझे आदर की दृष्टि से देखते थे। जेल से रिहा होकर मैं अहमदाबाद कांग्रेस के अधिवेशन में पहुंचा। वहीं बापू के भी दर्शन हुए, परन्तु छोटेलालजी की मारफत आश्रम को

अच्छी तरह देख सका । कांग्रेस पर गांधी युग की पूरी छाप थी । मंडप, निवास-स्थान आदि सब जगह खादी और वांस के टट्टों की वहार थी । पाखाने और पेशावघर खाइयां खोदकर वनाये गये थे । स्वच्छता रखने का भार स्वयंसेवकों पर था । हिन्दी भाषा की प्रधानता थी । यह सब और आश्रम में सावरमती का तट, वृक्षों की छाया, सादे मकान, सम्मिलित भोजनालय, खेती, गोशाला, कताई-वुनाई, राष्ट्रीय शिक्षा, स्त्री-पुरुष का समानता, मर्यादा और स्वतन्त्रता तथा सात्विक जीवन देखकर मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ । मैं किसी दिन आश्रम जीवन का आनन्द लेने की लालसा के साथ लौटा ।

❀ ❀ ❀ ❀

गांधीजी के देशव्यापी अहिंसक आन्दोलन का असर रियासतों के भीतरी भागों तक पहुंचा । मैंने मेवाड़ के दुर्गम स्थलों में चिरपरिचित प्रजा-जनों में जागृति पाई । और चोर-डाकुओं तक पर गांधीवालों के वन्देमातरम् अभिवादन का असर देखा । जगह–जगह राजस्थान भर में वेगार, लागवाग और दूसरे रियासती एवम् जागीरी जुल्मों के खिलाफ लोग उठ खड़े हुए । वेगार विरोधी आंदोलन सवसे तीव्र और व्यापक था । इस राक्षसी प्रथा को दीनवन्धु एण्ड्रूज ने आधुनिक गुलामी का नाम दिया और उसके उन्मूलन के लिए अपना निश्चय घोषित किया । राजस्थान सेवा संघ ने उन्हें पूरा सहयोग देने की पेशकश की । उन्हें निमंत्रण देने के लिए मुझे शांति निकेतन भेजा गया । उन्होंने हमारी दावत कवूल की । वापू ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया । मगर दुर्भाग्यवश वह राजस्थान नहीं आ सके ।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९२४ की वात होगी । विजोलियां, सत्याग्रह का समझौता हो चुका था और मैं वहां रचनात्मक कामों का संगठन करने के लिए गया हुआ था । शिक्षा-प्रसार, समाज सुधार, नशा-निषेध, अस्पृश्यता निवारण, आदि का कार्यक्रम था । लेकिन जागीरदार के सुरक्षित जंगल में पाले हुए सूअर खेती को वहुत हानि पहुंचाते । किसान परेशान थे । इन वन्य-पशुओं को मारने का सवाल उठा तो मैंने वापू को पत्र लिख कर उनकी राय मांगी । उन्होंने उत्तर दिया था कि मानव जीवन की रक्षा के लिए खेती को नुकसान पहुंचाने वाले प्राणियों को मारना अनिवार्य हिंसा है । वस्तुतः वापू व्यावहारिक आदर्शवादी थे ।

❀ ❀ ❀ ❀

२६ फरवरी १९२६ को जमनालालजी की लड़की कमला का अहमदावाद में विवाह हुआ । मैं भी निमंत्रित था । वापू ने आशीर्वाद दिया

और एक प्रकार से नई विवाह-पद्धति जारी करदी। इसमें लड़के-लड़की को पहले उनके संरक्षक देखकर पसन्द करते हैं। फिर उन दोनों को मर्यादा के भीतर मिलकर वातचीत करने का मौका दिया जाता है। उन्हीं पर अन्तिम निर्णय छोड़ा जाता है। दोनों की स्वीकृति के वाद केवल सप्तपदी का संस्कार होता है और सारा काम घण्टे भर में निपट जाता है। वर-वधू एक दूसरे के गले में माला पहना देते हैं और वुजुर्गों के पैर छूते हैं। और कोई रस्म नहीं होती। वाद में तो वापू ने अपने आशीर्वाद की यह शर्त भी रखी थी कि विवाह अर्न्तजातीय, अन्तरप्रान्तीय, विधवा-विवाह अथवा हरिजन कन्या या वर से होना चाहिए।

१९२८ में पथिकजी मेवाड़ की लम्बी जेल यात्रा से लौटे थे। इस वीच वह गांधीजी की विचारधारा से प्रभावित हुए थे। हम लोगों ने उन्हें वापूजी से चर्चा करने की सलाह दी। तदनुसार वे सावरमती गये किन्तु उनकी चर्चा का कोई परिणाम नहीं निकला। लेकिन मेरी आत्मा प्रवल वेग से गांधीजी की ओर आकृष्ट हुई और १९२९ में मैं गांधीजी की सेवा में पहुंच गया। उस समय मैं व्यावर से 'यंग राजस्थान' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक निकाल रहा था। मैं कोई एक मास तक महात्माजी के निकट सान्निध्य में रहा। उनके आदेशानुसार उनके कमरे में वैठा तकली चलाता रहता, उनकी गतिविधियां देखा करता, उनके संभाषण सुना करता और अवकाश में उनसे अपनी शंकाओं का समाधान किया करता। इस सत्संग ने मुझे विचारों में पूरी तरह गांधीवादी वना दिया।

इस अर्से में कई तरह के अनुभव हुए। उनके चिकित्सा-शस्त्रागार में उपवास, एनीमा, स्पंज, गंधक और कुनेन, ये पॉच ही अमोघ अस्त्र थे। जिनसे वे सौ रोगों को अच्छा कर लेते थे। कचरे की उनकी व्यवस्था थी: Anything out of place is dirt. (कोई वस्तु अपने स्थान पर न हो तो वही कूड़ा है)। आराम के लिए उनका नुस्खा यह था: Change of occupation is rest. (काम वदल लो, विश्राम मिल जायगा)। वक्त की पावन्दी के पक्ष में वह दृष्टांत देते थे कि रेल का सिग्नल-मैन एक मिनट की गड़वड़ कर दे तो गाड़ियां लड़ जायं। झगड़ों के निपटारे के लिए वह फैसले का उपाय ही उत्तम मानते थे। छोटे काम का भी वड़ा परिणाम निकालने की तरकीव उन्होंने यह वताई कि अंगीकृत कार्य में मन, वुद्धि और शरीर की पूरी ताकत लगादी जाय, जैसे अच्छे गवैये स्वर तो अपने

चूते का पकड़ते हैं मगर गाने में सारा जोर लगा देते हैं तो उनके गाने में मिठास और लोच पैदा हो ही जाती है ।

एक दिन मैंने बापू से पूछा कि 'हिन्द स्वराज्य' जैसी निर्दोष पुस्तक को भी बीकानेर के महाराजा गंगासिंहजी ने अपने राज्य में क्यों वर्जित करार दे दिया है, तो उन्होंने पुस्तक की अंग्रेजी प्रति मंगवाकर मेरे सामने एक अंश रखकर कहा, "आश्चर्य तो यह है कि ऐसे अंशों के होते हुए निषेधाज्ञा बहुत पहले ही क्यों नहीं निकाली गई ?" वह अंश यह था : "You will admit, that people under several Indian Princes are being ground down. The latter mercilessly crush them. Their tyranny is greater than that of the English, and if you want tyranny in India, then we shall never agree. My patriotism does not teach me that I am to allow people to be crushed under the heel of the Indian Princes, if only the English retire. If I had the power, I should resist the tyranny of Indian Princes just as much as that of the English."

(आप स्वीकार करेंगे कि कई भारतीय राजाओं की प्रजा को कुचला जा रहा है राजा उनका निर्दय दमन करते हैं । उनका जुल्म अंग्रेजों के जुल्म से ज्यादा है । और अगर आप इस तरह का जुल्म हिन्दुस्तान में चाहते हो तो हम कभी सहमत नहीं होंगे । मेरा देशप्रेम मुझे यह नहीं सिखाता कि केवल अंग्रेज चले जायं तो मैं लोगों को राजाओं के पैरों तले कुचला जाने दूं । मुझ में शक्ति हो तो मैं राजाओं के अत्याचार का उतना ही विरोध करूंगा जितना अंग्रेजों का) । इस अंश को देखकर मेरी श्रद्धा बापू के प्रति और बढ़ गई । इतना सही खयाल था उनका देशी राज्यों के मामले में शुरू से ।

आलोचना और प्रचार के प्रश्न पर मेरी शंकाओं का समाधान करते बापू ने कहा : "मैं विपक्षी को गिराने के लिए असत्य का आश्रय नहीं लेता, बल्कि उसके पक्ष का खण्डन करने में भी उसकी सच्चाई और गुणों का उल्लेख कर देता हूं । सत्य और न्याय की खातिर तो यह जरूरी है ही, व्यावहारिक दृष्टि से भी लाभदायक है । इससे विरोधी के विरोध की तीव्रता कम होती है और शालीन तथा निष्पक्ष लोकमत की नजरों में हम ऊंचे उठते हैं ।" यह सर्व विदित है कि गांधीजी अंग्रेजों की आलोचना करते थे तब उनकी देशभक्ति, सफाई, वक्त की पाबन्दी, बहादुरी, आदि खूबियों का बखान करके उनके राज्य को रावण का राज्य बताते थे । यह प्रचार कितना कारगर होता था !

❀ ❀ ❀ ❀

देशी राज्यों में राजनीतिक कार्य की आवश्यकता की ओर जब मैंने एक दिन बापू का ध्यान दिलाया था तो बोले : "तुम समय देने को तैयार हो तो मैं एक संस्था खड़ी कर सकता हूँ। मैंने तुरन्त हां भरी तो थोड़ी देर में एक छोटासा विधान भी अंग्रेजी में तैयार कर दिया। किन्तु कतिपय कारणों से संस्था नहीं बन पाई। संस्था का विधान यह था :—

THE PRINCES & PEOPLE'S SERVICE SOCIETY

Object

The object of the Society shall be the service of the Princes and people of Indian States.

Means

(1) Where there is no prohibition from the State concerned, to undertake constructive work such as promoting Khadi, prohibition, social reform, removing untouchability eommunalism, etc.

(2) Where there is no prohibition from the State concerned, to make courteous submission to the Princes regarding people's grievances.

(3) To conduct in a friendly spirit newspapers or magazines for the promotion of the object of the Society.

(4) To discover the best basis of relations between the princes and their people and the best system of government in accordance thereto and to cultivate public opinion on it.

Note:—This society does not share the opinion that the existence of the States is, by their very nature, contrary to the growth of the spirit of full democracy. The Society believes that their existence need not be inconsistent with the growth of such spirit.

Limitations

(1) To refrain from criticising the acts and policy of one Prince in the teritories of another.

(2) To refrain from desiring or seeking the interference of the British Power in the affairs of the Indian State on any occasion whatsoever.

(3) No member of the Society shall ever depart from the path of truth and non-violence.

(4) In all matters of difference and doubts and, in the determination of new policies, reference shall be made to Gandhiji for his final decision.

राजा प्रजा सेवक समिति

उद्देश्य

भारत के देशी राज्यों की राजा प्रजा की सेवा करना इस समिति का उद्देश्य होगा।

साधन

(१) जहां राज्य की ओर से निषेध न हो वहां खादी प्रसार, नशा निषेध, समाज सुधार, अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता निवारण आदि रचनात्मक काम करना।

(२) जहां राज्य की ओर से निषेध न हो, वहां प्रजा के कष्टों को विनयपूर्वक राजा के सामने रखना।

(३) समिति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए मित्र-भाव से पत्र-पत्रिकायें चलाना।

(४) राजा-प्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों का सर्वोत्तम आधार और उसके अनुसार शासन की सर्वोत्तम प्रणाली की खोज करना और उसके पक्ष में लोकमत तैयार करना।

नोटः—यह समिति इस राय से सहमत नहीं है कि राज्यों का अस्तित्व लोक सत्ता की भावना के विकास के विरुद्ध है। समिति की मान्यता है कि उनका अस्तित्व इस प्रकार की भावना के विरुद्ध ही हो, यह आवश्यक नहीं है।

मर्यादायें

(१) एक राज्य की सीमा में दूसरे राज्यों के कार्यों और नीति की आलोचना न की जायगी।

(२) किसी भी अवस्था में राज्यों के मामलों ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप न चाहा और न मांगा जायगा।

(३) समिति का कोई सदस्य सत्य और अहिंसा के मार्ग से कभी नहीं हटेगा।

(४) मतभेद और शंका के सब मामलों में और नयी नीतियों के निश्चित करने में गांधीजी से पूछकर उनका अन्तिम निर्णय लिया जायगा।

❀ ❀ ❀ ❀

यंग राजस्थान प्रेस में इन्दौर के शासन के विरुद्ध एक गुमनाम पर्चा छपा था और उस पर प्रेस का नाम नहीं दिया गया था। यह कानून की दृष्टि से अपराध था। गांधीजी के संसर्ग से मेरे विचारों में परिवर्तन आ चुका था, अतः मैंने सोचा कि इस अपराध को अधिकारियों के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए। बापू ने इस विचार को पसन्द किया और यह तय पाया कि ब्यावर जाते ही जिला मजिस्ट्रेट को ऐसी सूचना दे दी जाय तदनुसार एक पत्र द्वारा यह सूचना दी गई। उस समय अजमेर मेरवाड़ा के जिला मजिस्ट्रेट गिब्सन नाम के अंग्रेज थे। पुलिस के बहुत चाहने पर भी उन्होंने मुझ पर इस बारे में मुकदमा चलाने की अनुमति नहीं दी। राजा प्रजा सेवक समिति की योजना पार नहीं पड़ी तो बापू ने मुझे सलाह दी कि कोरा अखबार चलाकर मुझे अपनी शक्ति व्यर्थ बर्बाद नहीं करना चाहिए। अखबार किसी कार्य का साधन हो सकता है। अपने में कोई कार्य या साधन नहीं है। अतः 'यंग राजस्थान' बन्द करके मुझे उनके पास चला आना चाहिए। मैंने बापू की सलाह को शिरोधार्य किया। 'यंग राजस्थान' के आखिरी अंक में जो अग्रलेख लिखा गया था उसका मस्विदा बापू ने ही तैयार किया था। वह अंग्रेजी में यूं था :—

FAREWELL

With this issue the 'Young Rajasthan' ceases publication. While making this announcement, I cannot feel entirely happy and I believe my sorrow will be shared by many readers. But

it is a decision born of considerable thought and valuable advice.

I must admit that the paper has not become self-supporting. My views about work in Indian States have undergone a substantial change. Perhaps a paper, for doing work in accordance with the revised ideas, is not absolutely necessary. I feel that much more substantial work is possible by greater restraint and even silence. What is needed is constructive work. This requires constant labour rather than newspaper propaganda. Moreover, I have realised that there are too many papers in the limited area and for the one subject of Indian States. I, therefore, feel that I shall better advance the goal by disappearing from journalism at least for one year. Gandhiji's method has for some time attracted me. In order to study it more fully and at closer quarters, I have decided with his permission to pass one year at least in the Sabarmati Ashram doing such work as he may entrust me with. I assure the readers and my many friends that I hope by this renunciation to become a better instrument of service.

My deep thanks are due to the patient readers. Those who have paid their suscriptions in advance are entitled to a proportionate refund, if they desire.

26-12-29. Ramnarain Chaudhry.

'यंग राजस्थान' के बन्द करने का निर्णय काफी विचार और कीमती सलाह का परिणाम हैं। अखबार स्वावलम्बी नहीं बन पाया। देशी राज्यों के कार्य सम्बन्धी मेरे विचारों में बहुत परिवर्तन हुआ है। शायद बदले हुए विचारों के अनुसार काम करने के लिए आवश्यकता भी नहीं है। मैं अनुभव करता हूँ कि अधिक संयम से अधिक ठोस काम हो सकता है। आवश्यकता रचनात्मक काम की है। इसके लिए अखबारी प्रचार के बजाय सतत परिश्रम की ज्यादा जरूरत है। इसके अलावा मैंने अनुभव किया है कि एक सीमित क्षेत्र में और देशी राज्यों के बारे में बहुत सारे अखबार निकलते हैं। इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि कम से कम एक

साल के लिए मैं पत्रकार जगत से ओझल होकर उद्देश्य की अधिक अच्छी पूर्ति करूंगा। कुछ समय से मैं गांधीजी की रीति-नीति की ओर आकर्षित हुआ हूँ। उसका अधिक पूरी तरह और निकट से अध्ययन करने के लिए मैंने उनकी अनुमति से कम से कम एक वर्ष सत्याग्रह आश्रम में विताने का निश्चय किया है और अनेक मित्रों को विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे आशा है इस त्याग से मैं सेवा का ज्यादा अच्छा माध्यम वन सकूंगा।

वापू की सलाह के अनुसार सव ग्राहकों को लिखा गया कि वे चाहें तो उनका वचा हुआ चन्दे का रुपया लौटा दिया जायगा और जिन्होंने मांग की उन्हें वह भेज दिया गया।

'यंग राजस्थान' वन्द हो गया और १० जनवरी १९३० को मैं और भाई शोभालालजी गुप्त सपरिवार सावरमती आश्रम में पहुंच गये।

❀ ❀ ❀ ❀

सावरमती आश्रम में उस समय लगभग दो सौ स्त्री-पुरुष थे। नियम पालन इतना सख्ती से होता था कि एक महीने में तीन भूलें हो जाने पर आश्रम छोड़ना पड़ता था। आठ घण्टे अपना काम, आठ घण्टे सेवा कार्य और आठ घण्टे आराम होता। नौकर नहीं थे। प्रार्थना सुवह-शाम सर्वधर्म समभाव के अनुरूप सामूहिक होती थी। भोजनालय सम्मिलित था और मसाले, शक्कर और तली हुई चीजें वर्जित थीं। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य और खादी पहनने, छुआछूत न रखने और जेवर न पहिनने, रोजनामचा लिखने के नियम अनिवार्य थे। टट्टी-सफाई का काम वारी-वारी से किया जाता था। मैं कोई पांच महीने रहा।

मुझे कताई-बुनाई सीखने, बहनों व वच्चों को हिन्दी पढ़ाने और वापू के दफ्तर एवं हिन्दी 'नवजीवन' का कुछ काम दिया गया। शरीर श्रम में मुझे झाड़ू लगाने का काम दिया गया। स्थान वताया गया, वापू की सैर का मार्ग। मैंने पहले ही दिन उसे पूजा समझकर किया। आश्रम में दैनिक डायरी लिखने का नियम था। मेरी डायरी देखकर वापू ने सार्वजनिक रूप में अच्छी वताई और सवको उसे पढ़ जाने की सलाह दी।

वापू नियम और समय के पालन में कितने चौकस थे, इसका उदाहरण एक रोज शाम की प्रार्थना में मिला। घण्टी वजने पर उनका पैर प्रार्थना भूमि के भीतर और दूसरा वाहर था। वे अन्दर आ तो गये परन्तु प्रवचन

में बोले: "मैंने आज नियम भंग किया है परन्तु बहुसंख्यक श्रोताओं को निराश न करने के खयाल से आगया हूं।"

आश्रम के चारों ओर चोरों का खतरा रहता था। इसलिए आश्रमवासी बारी से चार-चार की टोलियों में पहरा लगाते थे। एक दिन मेरी बारी आई तो एक चोर आ पहुंचा। हमने उसे पकड़ कर रात को तो बन्द कर दिया और सुबह बापू के सामने पेश किया। उन्होंने पहला प्रश्न यही किया कि इसे नाश्ता कराया या नहीं। हमने चोर को बापू के डर के मारे अच्छा सा नाश्ता कराया। बापू ने चोर को पूछा: "भाई, ऐसा काम क्यों करते हो ?" वह बोला: "साहेब दोनों स्त्री पुरुष मेहनत मजदूरी करते हैं परन्तु छः आदमियों का पेट नहीं भरता।" बापू ने जरा विनोद में पूछा: "तो तुमने आश्रम पर ही कृपा क्यों की।" वह भी रंगत में आया और कहने लगा: "यही सोचकर कि आप पुलिस में नहीं देंगे। बापू ने यह समझा कर कि काम की कमी हो तो आश्रम सारें परिवार को काम दे सकता है, चोर को तो विदा किया परन्तु शाम की प्रार्थना में आश्रमवासियों को अपरिग्रह का महत्व समझाते हुए कम से कम सामान रखने का उपदेश दिया ताकि चोर को आकर्षण ही न हो।

❀ ❀ ❀ ❀

जेल से छूटने पर १९३१ में गांधी सेवा संघ के अध्यक्ष के नाते जमनालालजी मुझे संघ का सदस्य बनाना चाहते थे। लेकिन मेरा व्रत देशी राज्यों में कार्य करने का था और संघ के विधान में इसकी गुंजाइश नहीं थी। ऐसी गुंजाइश करना अध्यक्ष के लिए पक्षपात की बात होती। अन्त में उन्होंने बापू से सलाह ली तो उन्होंने मेरे साथ रियायत करने की राय दी। १९३२ में हरिजन सेवक संघ बना। ठक्कर बापा उसके महामन्त्री नियुक्त हुए। वह राजस्थान शाखा स्थापित करने अजमेर आये और मुझे मन्त्री बनाया। उस समय राजस्थान राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक कट्टरता का गढ़ था। हर क्षेत्र में ऊंच नीच की भावना का बोलबाला था। शासन सत्तायें पूरी निरंकुश थीं। सार्वजनिक प्रवृत्तियां संदेह की नजर से देखी जाती थीं। अंग्रेज राजाओं को बहकाते कि कांग्रेस वाले हरिजन सेवा की आड़ में बद-अमनी फैलाना चाहते हैं। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रांत में हरिजन सेवा का काम खूब फैला। देशी राज्यों में काम करने के बारे में बापू की मर्यादाओं का खयाल रखने से रास्ते की रुकावटें दूर होती गईं। बापू के व्यक्तित्व का महान प्रभाव काम कर रहा था।

राजपूताना हरिजन सेवक संघ का एक बड़ा और मौलिक कार्य यह था कि अजमेर के पास नारेली गांव में कार्यकर्ताओं के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित हुआ। इसमें १०० से अधिक हरिजन सेवक छः मास की तालीम पाकर निकले और प्रान्त के कोने-कोने में फैल गये। देश में यह पहला प्रशिक्षण केन्द्र था।

१९३४ में बापू ने हरिजन कार्य के लिए देश का दौरा किया। दक्षिण से शुरुआत की। मैं भी लगभग एक मास तक साथ रहा। प्रचुर अनुभव प्राप्त हुए। बहुत सीखने को मिला।

राजपूताना हरिजन सेवक संघ के एक प्रमुख नेता ने चन्दा लिख तो दिया मगर संघ को दिया नहीं। अनेक तकाजों का कोई नतीजा नहीं निकला। बापू से सलाह मांगी तो उन्होंने तुरन्त कहा, उनसे कह दो कि या तो तीन दिन में अपना वायदा पूरा करें या इस्तीफा दे दें। मैंने वैसा ही किया और चन्दा जमा हो गया। बापू ने जरा भी परवाह नहीं की कि नेता की नाराजगी से काम में हानि होगी।

प्रान्तीय हरिजन सेवक संघ के कार्यालय से कुछ कार्यकर्ताओं ने एक रात ताला तोड़कर करीब पांच सौ रुपया चुरा लिया। कथित क्रांतिकारी काम के लिए धन जुटाने की धुन में उन्हें यह गर्हित काम करने में संकोच नहीं हुआ। बापू से इस बारे में सलाह मांगी तो निर्देश दिया कि इस घटना की पुलिस को सूचना न दी जाए, उसे पता चल जाए और वह पूछ-ताछ करे तो जो बात जैसी और जितनी मालूम हो बता दी जाए। अपनी ओर से जिन पर शक हो उनसे पूछा जाय। वे अपना अपराध स्वीकार करलें और रुपया लौटा दें तो उन्हें क्षमा कर दिया जाए और ऐसा न करें तो इस हानि को सहन कर लिया जाय। आखिर अन्तिम बात ही हुई। इस घटना से पता चला कि अपराध-चिकित्सा में गांधीजी मनोवैज्ञानिक तरीका अपनाने के पक्षपाती थे और राज्य शक्ति का सहारा लेना पसन्द नहीं करते थे।

❀ ❀ ❀ ❀

हरिजन यात्रा के सिलसिले में बापू अजमेर आये, उनके साथ स्वामी लालनाथ की मण्डली भी उनका विरोध करने के लिए आई। यह सनातनियों की मण्डली थी। बापू इस मण्डली का विशेष ध्यान रखते थे और साथियों और जनता को उसके प्रति सहनशील रहने की सीख देते थे। दुर्भाग्य से सावधानी के बावजूद इस मण्डली के लोगों के साथ अजमेर में मारपीट

हो गई। इस पर बापू को आघात पहुंचा। उन्होंने स्वामी लालनाथ की मरहम-पट्टी करवाई और उन्हें मंच पर बुलाकर तथा उनकी चोट दिखाकर जनता को लज्जित किया। उन्होंने स्वामी लालनाथ को अपने विरोधी विचार प्रकट करने का अवसर भी दिया। इस घटना के प्रायश्चित स्वरूप बापू ने सात दिन का उपवास किया।

❀ ❀ ❀ ❀

कुछ भाइयों ने बापू से शिकायत की कि राजपूताना में हरिजन सेवा के काम को बहुत बढ़ा चढ़ाकर बताया जाता है। बापू ने इस शिकायत का मुझ से जिक्र किया। तीसरे पहर सार्वजनिक रूप में राजस्थान के कोने-कोने से हरिजन सेवक समितियों के मंत्रियों और कार्यकर्ताओं ने अपनी छोटी-छोटी थैलियां बापू को भेंट की। बापू को इस पर न केवल शंका का समाधान हुआ बल्कि उन्होंने राजपूताना के काम के प्रति संतोष भी प्रकट किया। साथ ही सफलता पर फूलने के बजाय नम्र बनने का उपदेश दिया।

❀ ❀ ❀ ❀

असहयोग काल में गांधीजी जब अजमेर आते तो यहां के कांग्रेसी नेता गौरीशंकरजी भार्गव के यहां ठहरते थे। हरिजन यात्रा के सिलसिले में बापू अजमेर आये तो स्वागत समिति ने उन्हें ठहराने का दूसरी जगह इन्तजाम किया। गौरीशंकरजी ने बापू को उलहना दिया और कम से कम एक बार अपने घर आने का अनुरोध किया। अजमेर के कुछ कार्यकर्ता भार्गव जी के व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी शिकायतों के कारण यह नहीं चाहते थे कि बापू उनके यहां जाएं। बापू ने मेरी राय मांगी तो मैंने जाने के पक्ष में सिफारिश की। शिकायतों को साबित भी नहीं किया जा सका। तब बापू ने कहा सुनी-सुनाई बातों पर वे किसी को दोषी नहीं मान सकते। वह गौरीशंकर जी भार्गव के घर गये और भार्गव परिवार ने अपने को धन्य माना।

❀ ❀ ❀ ❀

पं० अर्जुनलाल सेठी ने भी बापू को अपने यहां आमन्त्रित किया। कुछ कार्यकर्ताओं ने कहा कि सेठीजी गांधीजी के विरुद्ध प्रचार करते रहते हैं और गांधीजी के उनके यहां जाने का दुरुपयोग करेंगे। मुझसे बापू ने पूछा तो मैंने सेठीजी के यहां जाने की राय दी। अन्त में बापू ने कहा कि मैं जानता हूं वह मेरे विरोधी हैं। किन्तु यह कोई कारण नहीं है कि उनके विनय पूर्ण निमंत्रण को स्वीकार न करूं। बापू सेठीजी के यहां गए तो सेठीजी ने उनके चरण छूकर उनकी आरती उतारी, हरिजन सेवा के लिए थैली भेंट की और कांग्रेस कार्य के प्रति अपनी उदासीनता छोड़कर उसमें दिलचस्पी लेने लगे। सेठीजी उस समय मदार गेट के पास एक मकान में रहते थे। बापू ने अपनी उदारता से अपने एक विरोधी का दिल जीत लिया।

❀ ❀ ❀ ❀

अजमेर के निकट हमने एक आश्रम शुरु किया। वापू ने उसके वारे में विस्तार से पूछताछ की। जब मैंने कहा कि हम फल और शाक-भाजी अजमेर से मंगवाते हैं तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा: "मेरे ख़याल से फल तुम्हें वहीं जो मिल लेने चाहिए। शाक-भाजी तो वहीं की खानी चाहिए। तुम्हारी जरूरत की चीज यहां पैदा नहीं होती हों तो गांव वालों से पैदा करवाना शुरु करो या स्वयं पैदा करो।" वापू चाहते थे कि कार्यकर्ता खाने पहनने के वारे में स्वावलम्बी वन जायं।

❀ ❀ ❀ ❀

१६ और २७ जून सन् १९३६ में राजपूताना के हरिजन सेवकों का एक सम्मेलन अजमेर के पास सेवा आश्रम नारेली में हुआ। इस सम्मेलन के लिए वापू ने यह संदेश भेजा:—

"इस समय हिन्दू धर्म की परीक्षा हो रही है। वे ही सच्चे सेवक हो सकते हैं, जिनमें धर्म के प्रति श्रद्धा है, हरिजनों के प्रति प्रेम है, और जो अपने को हरिजन सेवा के लिए समर्पण करने को तैयार हैं।"

❀ ❀ ❀ ❀

शायद मार्च १९३३ की वात है। मैं वापू से मिलने के लिए यरवदा जेल गया तो राजस्थान के हरिजनों की उस समय की स्थिति का विवरण लिखकर ले गया और वापू के चरणों में रख दिया।

वापू ने यह विवरण पढ़कर सिर्फ दो वातें पूछीं। एक तो राजस्थान में हरिजनों के लिए पानी की व्यवस्था के वारे में और दूसरी अजमेर के मैला स्टेशन के वारे में। कहा कि राजपूताना जाकर पानी के वारे में विस्तार से लिखना और कभी अजमेर आऊंगा तो मैला स्टेशन देखूंगा। मैंने अजमेर पहुंचकर वापू को पानी की व्यवस्था का कच्चा चिठ्ठा लिख भेजा। इस समस्या ने उन्हें इतना चिंतित किया कि मेरा पत्र पहुंचने के दिन ही राजाजी से अपनी मुलाकात में उसका उल्लेख किया जिसको महादेव भाई ने अपनी डायरी के तीसरे भाग में उद्धृत किया है। वापू ने कहा :—

"मेरे नाम रामनायण चौधरी का पत्र आया है, जिसमें पश्चिमी राजपूताना के हरिजनों की खराव हालत का वर्णन है। एक भी कुए से वे पानी नहीं भर सकते। जानवरों के हौज में से उन्हें गन्दा पानी लेना पड़ता है। हौज का गन्दा पानी वे कहां तक काम में लेते रहेंगे।"

वापू ने मुझे २–४–३३ को यरवदा मन्दिर से यह पोस्ट कार्ड लिखा:—

भाई रामनारायण,

तुम्हारे खत का मैंने 'हरिजन सेवक' में प्रयोग किया है, देख लेना। दीवान वहादुर हर विलास शारदा और तुम्हारे धनिकों के पास जाकर कुओं के लिए दान लेना चाहिए—नक्शा वनाना चाहिए और कहां-कहां कुओं की आवश्यकता है वताना चाहिए। कितने हरिजन हैं, वे क्या करते हैं इत्यादि खवर का संग्रह रखना चाहिए। कुए का क्या खर्च होता है इत्यादि की खोज करो।

अंजना देवी को आशीर्वाद।

वापू के आशीर्वाद

❀ ❀ ❀ ❀

जव वापू हरिजन यात्रा के सिलसिले में अजमेर आए तो मैला स्टेशन देखने की वात उन्हें याद थी। मैला स्टेशन उन्होंने देखा। जहां महतर पाखाने और मल-मूत्र के कुण्ड में खड़े काम करते थे तो उनका चेहरा मलीन हो गया और उस दृश्य का जव 'हरिजन सेवक' में जिक्र किया तो उसे 'अजमेर का नरक' वताया। यह 'नरक कुण्ड' स्वराज्य प्राप्ति के कई वर्ष वाद भी वना रहा। आखिर जव अजमेर में लोकप्रिय सरकार वनी तो उसने सवसे पहले इस नरक को हटाने का आदेश दिया। राजकुमारी अमृत कौर के सहयोग से यह कुण्ड हरिजनों के लिए स्नान कुण्ड वन गया और २७–७–५४ को श्री मोरारजी भाई ने उसका उद्‌घाटन किया।

❀ ❀ ❀ ❀

हरिजन कार्य के सिलसिले में डूंगरपुर और वांसवाड़ा के क्षेत्र में जाना हुआ तो यहां के भीलों की स्थिति का अध्ययन करने का मौका मिला। वह काफी शोचनीय थी। उनके साथ करीव-करीव अछूतों जैसा व्यवहार होता था। मैंने सुझाव दिया कि भील सेवा को हरिजन सेवा का अंग मानकर कम से कम राजपूताना में उसे हरिजन कोप से सहायता दी जाय। वापू ने पहले तो ठक्कर वापा से वात करने की सलाह दी और ठक्कर वापा ने इस सुझाव का समर्थन किया तो वापू ने भी अपनी मंजूरी दे दी और राजपूताना हरिजन सेवक संघ ने भील सेवा का काम शुरु कर दिया।

❀ ❀ ❀ ❀

एक बार राजपूताना हरिजन सेवक संघ का कुछ रुपया सेवा आश्रम नारेली के मकान बनाने में उधार दे दिया गया। ठक्कर बापा ने इस पर आपत्ति की। मैं इस पर हरिजन सेवक संघ से इस्तीफा देने को तैयार हो गया। मामला बापू तक पहुंचा। बापू ने ठक्कर बापा का समर्थन किया और कहा: "एक संस्था का रुपया उससे पूछे बिना दूसरी को देना गलत है। यह फिसलन का रास्ता है। किसी को अपना रुपया दे देना निरी असावधानी हो सकती है, मगर दूसरे का ले लेना खतरनाक है। अपना त्यागपत्र वापस ले लो और आयन्दा किसी भी संस्था का व्यक्तिगत धन उसकी मंजूरी बिना दूसरों को उधार भी न देने का नियम बना लो।" मैंने अपनी भूल स्वीकार की और सुधार ली।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९३९ से सन् १९४२ के तीन वर्षों में मुझे बापू के सान्निध्य में सेवाग्राम में रहने का सौभाग्य मिला। एक दिन रात के दस बजे बापू ने मुझे बुलाया और एक तार के बारे में मेरी सलाह पूछी। तार माणिक्यलालजी की पत्नी नारायणी बहन का था। माणिक्यलालजी उन दिनों मेवाड़ राज्य के बन्दी थे और बीमार थे। तार में उनके मामले में हस्तक्षेप करने को कहा गया था। मैंने माणिक्यलालजी का परिचय दिया और कहा कि आपको उनकी सहायता करनी चाहिए। अगले दिन बापू ने तार से मेवाड़ के दीवान श्री विजयराघवाचार्य को सलाह दी कि माणिक्यलालजी को छोड़ दिया जाय। उसी दिन मेवाड़ के स्थानापन्न दीवान प्रभास चन्द्र चटर्जी का बापू को तार मिला कि आपका तार श्री विजयराघवाचार्य के पास मद्रास भेज दिया गया है जहां वह छुट्टी पर गये हैं। बापू के हस्तक्षेप पर एक सप्ताह के भीतर माणिक्यलालजी रिहा कर दिये गये।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री जयनारायण व्यास और जोधपुर के तत्कालीन अंग्रेज कर्त्ता-धर्ता के बीच कुछ खटपट चल रही थी। जयनारायणजी का बापू से परिचय नहीं था। वह बापू से परामर्श करने के लिए सेवाग्राम आना चाहते थे। मुझे लिखा तो मैंने भेंट तय करादी। वह आये और दो दिन सेवाग्राम में रहकर बापू से बातचीत की और लौट गये। जाने के पहले बापू को एक कविता भेंट कर गये। बापू ने कविता पढ़कर कहा, "कविता तो अच्छी है, मगर दरिद्र-नारायण की भूख इससे थोड़े ही मिटेगी। मुझे तो जयनारायण एक गुण्डी सूत कात कर देते तो अधिक अच्छा लगता।"

❀ ❀ ❀ ❀

अलवर प्रजा मण्डल के कार्यकर्ताओं ने मेरे द्वारा बापू से मार्ग-दर्शन और सहायता की मांग की। जब मैं इस विषय में बापू से बातचीत कर रहा था तो उसी समय संयोग से विजयलक्ष्मी पंडित वहां आगई। उन्हें देखते ही बापू कहने लगे: "लो यह आगई। तुम्हारा भाग्य अच्छा है। मैं सोच ही रहा था कि अलवर किसे भेजूं।" यह कहकर उन्होंने श्रीमती पंडित को अलवर की समस्या समझाना शुरू कर दिया। उन दिनों अलवर में कर्नल हार्वे नामक एक अंग्रेज प्रशासक थे। श्रीमती पंडित के प्रयास से अलवर की समस्या शीघ्र ही हल हो गई।

❀ ❀ ❀ ❀

राजस्थान सेवा संघ टूट जाने के बाद पथिकजी का बापू से सम्पर्क टूट गया था। पथिकजी को बापू से अपने पुराने सम्पर्क ताजा करने की प्रेरणा हुई। उन्होंने पथिकजी को उनके पत्र के उत्तर में लिखा:—

भाई पथिकजी,

आपका खत आज मिला। मैंने तो आपको आपके आखिर के पत्र का उत्तर भेज दिया था। आश्चर्य है आपको नहीं मिला। मेरे भाव में कुछ भी भेद नहीं हुआ है। होने से मैं छिपा नहीं सकता हूँ। आप जब चाहें इस तरफ आ सकते हैं। मद्रास से एक दिन के फासले पर अक्टोबर के दस दिन तक घूमता रहूँगा। मद्रास में आपको जगह का पता मिल जायगा।

मैंने अब्दुल रशीद (श्रद्धानन्द के हत्यारे) को फांसी से बचाने के लिए सरकार के प्रति कुछ भी नहीं लिखा है। मैंने हिन्दू जनता को उसे माफ कर देने को अवश्य कहा है। आप काकोरी के कैदियों के बारे में मेरे पास से क्या चाहते हैं। किस जनता से मैं कहूं।

आपका

भा० कृ० २ मोहनदास

पथिकजी ने मुझे लिखा कि वह बापू से मिलना चाहते हैं और संभव हो तो उनके साथ काम करने का इरादा भी रखते हैं। मैंने बापू से पथिक जी का संकोच और इरादा बताया तो वह कुछ मुस्कराये और कहने लगे: "इतने सुपरिचित व्यक्ति को इतना संकोच तो नहीं होना चाहिए। परन्तु उन्हें लिख दो कि जब चाहें तब आजायं। हां उन्हें भी सब तरह यहां के काम हाथ से करने और किसी न किसी रचनात्मक कार्य की तालीम लेकर उसमें लगने

की तैयारी रखनी होगी ।" इससे पता चलता है कि बापू अपने से भिन्न विचार के कार्यकर्ताओं को भी अपनी शर्तों पर अपनाने को सदा तैयार रहते थे ।

❀ ❀ ❀ ❀

ठाकुर केसरीसिंह बारहठ राजस्थान के क्रान्तिकारी दल के चार प्रणेताओं में से एक थे । उन्हें आरा हत्या केस में आजन्म कारावास की सज़ा हुई थी । उनके छोटे भाई जोरावरसिंह ने दिल्ली में भारत के लार्ड हार्डिज वायसराय पर चांदनी चौक में बम फेंका था और आजीवन फरार और गुप्त छिपे हुए रहे । ठाकुर साहब के पुत्र श्री प्रतापसिंह को बनारस षडयंत्र केस में लम्बी सज़ा हुई थी, और जेल में ही उनका देहान्त हुआ । ठाकुर साहब का सारा परिवार शहीद परिवार था । जब मैं सेवाग्राम में था तो मेरे मारफत ठाकुर साहब ने बापू के निकट रह कर उन के आदेशानुसार सेवा करने में शेष आयु बिताने की इच्छा प्रकट की । बापू ने इस पर कहा : "केसरीसिंहजी आयेंगे तो मुझे खुशी होगी । उनके उत्कृष्ट जेल जीवन का मुझसे सर तेजबहादुर सप्रू ने भी जिक्र किया था । मगर उन्हें यहां के दैनिक जीवन का पता न हो तो, लिख दो उसका पालन तो सभी के लिए आवश्यक है ।" ठाकुर साहब ने आश्रम के सभी नियमों के पालन की स्वीकृति भेज दी । लेकिन हाथ में तकलीफ होने के कारण कातने में असमर्थता प्रकट की । फिर भी बापू ने उनके आने की स्वीकृति दे दी थी । किन्तु वह आ नहीं पाये । वह बीमार हुए और थोड़े समय बाद चल बसे ।

❀ ❀ ❀ ❀

सेवाग्राम में मुझे मीरां बहन और राजकुमारी अमृतकौर को हिन्दी पढ़ाने, बापू के हिन्दी लेखों की भाषा शुद्ध करने, 'हरिजन' के अंग्रेजी लेखों का अनुवाद करने और आश्रम के पुस्तकालय की व्यवस्था करने का काम दिया गया था । मेरी हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा बापू को पसन्द थी ।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९४२ में बापू ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाया । अजमेर सरकार ने भी मेरे नाम का गिरफ्तारी का वारन्ट निकाल दिया । मुझे मालूम हुआ तो मैं खुद ही सेवाग्राम से अजमेर चला आया और रेलवे स्टेशन पर ही गिरफ्तार कर लिया गया । अजमेर आने से पहले मैंने अपने एक विद्यार्थी को तोड़-फोड़ की पत्र द्वारा सलाह दी थी । वह पत्र यथास्थान नहीं पहुंचा । मैं तोड़-फोड़ के बारे में बापू की मंशा को गलत समझा था । मुझे

जब भूल मालूम हुई तो मैंने वापू की सलाह मांगी। वापू ने अपनी सम्मति भेजी कि मैं अधिकारियों को पत्र लिख कर अपनी भूल स्वीकार कर लूं। वापू का कहना था कि यह स्वीकृति शुद्धि के लिए है, छूटने की वृत्ति उसके पीछे नहीं है। इस पत्र के कारण मुझे नजरवन्दी से सबसे वाद में रिहा किया गया। किन्तु वापू की सलाह से मुझे प्रेरणा मिली।

❀ ❀ ❀ ❀

अजमेर में श्री वालकृष्ण कौल ने, जो वाद में राजस्थान के वित्त मन्त्री रहे, जेल अधिकारियों के विरुद्ध अनशन किया। उनका अनशन लम्बा चला। उनके परिवार वालों ने वापू को लिखा। वापू ने तार द्वारा श्री कौल को अनशन छोड़ देने की सलाह देकर एक देशभक्त की प्राण रक्षा की।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९२८ में विजोलियां के दूसरे सत्याग्रह के सिलसिले में मेवाड़ राज्य ने मुझे अपने इलाके में घुसने की मनाही कर दी थी। यह निषेध आज्ञा सन १९४६ तक जारी रही। मैंने कभी उसे हटवाने की चेष्टा नहीं की परन्तु जब वापू को इसका पता चला तो उन्होंने राजकुमारी अमृतकौर से उदयपुर के दीवान श्री टी. विजयराघवाचार्य को पत्र लिखवाया। फलस्वरूप थोड़े दिनों वाद वह निषेध आज्ञा हटा ली गई। वापू के सद्‌भावपूर्ण संकेत से इस प्रकार अनेक समस्याएं हल हो जाती थीं।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९४५ के अगस्त में मैंने सेवाग्राम छोड़ा। वापू ने विदा होते समय मेरे एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि प्रतिशोध हिंसा का सबसे वड़ा रूप है। उसमें मनुष्य के सुधार का कोई अवकाश नहीं रहता। क्योंकि मनुष्य प्रतिशोध लेने के लिए इरादा पूर्वक हिंसा करता है। वापू के इस सन्देश ने मुझे कई वार प्रति सा से वचाया।

❀ ❀ ❀ ❀

वापू के ३२ वर्ष लम्वे सम्बन्ध के दौरान सबसे सुखद स्मृति मुझे परचुरे शास्त्री वाली है। यह परम विद्वान गलित-कुष्ट से पीड़ित होकर सेवाग्राम आश्रम के पास एक कुटिया में रहते थे। उनकी सेवा हम आश्रमवासी वारी-वारी से करते थे। एक दिन मेरी वारी थी। जून का महीना और दोपहर का समय था। वापू भोजन करके नियमानुसार शास्त्रीजी के घाव धोने आ पहुंचे तो रोगी ने कहा: "मेरी पीड़ा तो आपके दर्शनों से ही मिट जाती है।

आप इस धूप में भोजन के तुरन्त बाद यह कष्ट न किया करें।" बापू हंस कर बोले : "शास्त्री जी आप बड़े स्वार्थी हैं। आप वह तो कराना चाहते हैं जिससे आपको सुख मिले लेकिन जो मेरे लिए आनन्द-दायक है वह नहीं करने देना चाहते।" यह कह कर बापू अपने काम में लग गये। उन्हें देखकर मुझे यह श्लोक याद आ गया :

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनामार्ति नाशनम्।।
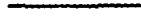
अपनी शुद्ध सेवा के बल पद जो पर और सत्ता हमें मिलती है, वह हमारे हृदय को उच्च बनाती है।

३

गांधीजी के साथ सम्पर्क के २० साल

हीरालाल शास्त्री

गांधीजी का नाम मैंने अपने वचपन में ही सुन लिया था और वाद में 'महात्मा' का दूर-दूर से मुझ पर वहुत प्रभाव होता गया। गांधीजी का काठियावाड़ी पहनावा मुझे अच्छा लगा था और उनकी 'हिन्द स्वराज' नाम की पुस्तिका भी मुझे वहुत पसन्द आई थी। लगभग १८ साल की उम्र में मेरा एक दिन यह अचानक विचार वन गया कि मैं किसी गांव में जाकर वसूंगा और ग्रामवासियों की सेवा करूंगा। आश्चर्य है कि मेरे इस विचार के साथ गांधीजी का या किसी अन्य का कोई सम्वन्ध नहीं था। उक्त विचार मेरा अपना था, पर मुझे कुछ भी याद नहीं है कि मेरा ऐसा विचार क्यों और कैसे वन गया होगा। वुराई के साथ असहयोग करने की गांधीजी की कल्पना मुझे वहुत जंची थी और मैंने वी. ए. के वाद पढ़ाई जारी नहीं रखी उसका एक वड़ा कारण गांधीजी का असहयोग आंदोलन भी था। गांधीजी के कुछ नामी और प्रभावशाली साथियों ने स्वराज पार्टी वनाई, सो मुझे

कभी अच्छा नहीं लगा और निरर्थक खण्डन-मण्डन करने की आदत न होते हुए भी मुझे याद है मैं स्वराज पार्टी की हमेशा काट करता था।

मेरे विचार कई प्रकार से सख्त थे। फिर भी विधि के विधान ने मुझे कुछ समय तक जयपुर राज्य की नौकरी में फंसाये रखा। समय आने पर जब मैंने राज्य की नौकरी छोड़ दी तो मैं अपने लड़कपन में किए गए विचार के अनुसार काम करने की तैयारी में लगा। जमनालालजी बजाज और हरिभाऊजी उपाध्याय की प्रेरणा से मैं घनश्यामदासजी बिड़ला के पास पिलानी पहुंच गया। १९२८ के शुरू में मैं पिलानी से ही हरिभाऊजी के साथ साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) गया, गांधीजी को देखने के लिए। आश्रम में मैंने बहुत कुछ देखा, गांधीजी को भी देखा। पर गांधीजी किसी समारोह में बेहोश हो गए और मैं उन दिनों उनसे मिलकर बातचीत करने से वंचित रह गया। बाद में गांधीजी के पास बार-बार जाता रहा पर मैंने उनसे कोई विशेष पत्र-व्यवहार नहीं किया। फिर भी मेरे पास गांधीजी के हाथ से लिखी हुई बहुत सी सामग्री इकट्ठी हो गई थी। वह सामग्री, जब मैं एक दिन जवाहरलालजी को जयपुर लाने के लिए दिल्ली गया, तांगे में रह गई और मुझे कभी नहीं मिली। मेरी जिन्दगी का सबसे बड़ा नुकसान मैंने उस अमूल्य सामग्री के खोये जाने को माना और आज भी उस नुकसान की याद से मैं तड़प जाता हूं।

१२ मई १९२९ से वनस्थली में 'जीवन कुटीर' नाम की जरा सी संस्था के द्वारा मुख्यत: वस्त्र-स्वावलम्बन का काम शुरू हुआ। जीवन कुटीर के कार्यक्रम के लिए मुझे गांधीजी का आशीर्वाद मिल गया था। वर्धा में जमनालालजी ने मुझ से कहा : "इस प्रकार अकेले गांव में जाकर बसोगे तो तुम दुख पाओगे।" मैंने जमनालालजी से कह दिया : "जब मैं दुख पाऊंगा तो आपके पास आ जाऊंगा। बाकी भविष्य में मेरे दुख पाने की कल्पना से आप अभी से क्यों दुख पा रहे हो ?" उसी दिन उसी समय वहीं पर घनश्याम दासजी ने कहा : "मैं तुम्हें इस काम के लिए रुपया नहीं दूंगा।" मैंने उनसे भी कह दिया कि मैं आपके पास रुपया मांगने आऊं तभी तो आपके रुपया देने न देने की बात आ सकती है। मैं इस काम के लिए रुपया लेने के लिए आपके पास आऊंगा ही नहीं। इससे पहले घनश्यामदासजी से मुझे काफी सहारा मिल चुका था। जो हो, मैंने इस प्रकार से दो बड़े सहायकों से छुट्टी पाली। मेरे पास अपने खुद के आग्रह और आत्म-विश्वास के अलावा गांधीजी

के आशीर्वाद का बल था। जमनालालजी और घनश्यामदासजी से इतनी बात हो जाने के बाद मेरी उसी दिन सीतारामजी सेकसरिया से चर्चा हुई जिनसे मुझे काम-चलाऊ सहायता का आश्वासन मिल गया। तभी से सीतारामजी का, बनने वाली वनस्थली के साथ अपनापन हो गया। बाद में तो जमनालालजी और घनश्यामदासजी भी वनस्थली के काम में बहुत दिलचस्पी लेने लग गए।

जीवन कुटीर वनस्थली के जमाने में, मेरा गांधीजी से काफी सम्पर्क रहा। साल में एक बार, दो बार मैं वर्धा सेवाग्राम पहुँच जाता था, और अपने काम की रिपोर्टें उन्हें देता था और अपनी शंकाओं का समाधान भी कर लेता था। गांधीजी की समय की पाबन्दी कमाल की थी। एक बार उन्होंने मुझे मिलने को बुलाया। प्रातःकाल की प्रार्थना के बाद घूमना शुरू करने के समय बोले इतने बज कर इतने मिनट पर मुझे अमुक जगह खड़े मिलना। मैं गांधीजी की परीक्षा में पास हो गया। गांधीजी को दूसरों का बहुत ध्यान रहता था। एक दिन उन्होंने मुझे अपने साथ भोजन करने को बुला लिया और अपने पास ही बिठाया। बार बार पूछते रहे, तुम्हें क्या चाहिए, आदि और भोजन के बाद जब मैं दूसरों की तरह अपनी थाली उठाने लगा तो गांधीजी ने मुझे नहीं उठाने दी। बोले, तुम इस समय मेहमान हो। गांधीजी की निगाह बहुत पैनी थी और वह बहुत पक्के थे। एक बार मैं अपने गांव में बना हुआ एक बड़ा चाकू गांधीजी को देने के लिए बड़े घमण्ड के साथ ले गया। उन्होंने मेरे सामने ही चाकू को चलाकर देखा तो वह बहुत कच्चा निकला। गांधीजी ने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। उस दिन मुझे जो शर्म आयी उसका मैं क्या बयान करूं? गांधीजी की दृष्टि एक दम वैज्ञानिक थी। पांच आने में बने हुए मामूली चर्खे पर जीवन कुटीर के एक साथी प्रताप ने एक घण्टे में १००० गज सूत कात लिया। गांधीजी को यह बात अच्छी लगी। पर उन्हें पसन्द नहीं आया, इसलिए कि उसकी नाप आदि में कुछ कमी थी। आगे का एक मौका मुझे और याद आता है जब मैं गांधीजी के सामने बेवकूफ बन गया था। सोहनलालजी दूगड़ के यहां एक लड़की का आदर्श विवाह होने वाला था। लादूरामजी जोशी के कहने से मैंने गांधीजी को लिख कर वर-वधू के लिए उनका आशीर्वाद मंगवा लिया। बाद में गांधीजी को मालूम पड़ा कि लड़का-लड़की दोनों की उम्र कम है। मैं वर-वधू की उम्र पूछना भूल ही गया था। मुझे तुरन्त अपनी गलती का माफीनामा लिखकर भेजना पड़ा। गांधीजी ने अपनी कलम से मुझे लिखा: "इतना परिताप अनावश्यक है। हम सावधान रहें। भूल तो सबसे होती है। सोहनलालजी अच्छे तो हैं ही।"

गांधीजी से इतना अधिक सीधा सम्पर्क और जमनालालजी की कार्यकर्त्ताओं को खींचने की आदत पर मुझे गांधी सेवा संघ का सदस्य बनना स्वीकार नहीं हुआ। मुझे आश्रम नाम ठीक नहीं लगता था। आश्रम के अमुक अमुक नियम मुझे अटपटे और न निभने लायक लगते थे। मैं अपने निर्वाह के लिए किसी व्यक्ति या संस्था से भी बंध जाना नहीं चाहता था। अहिंसा का सूक्ष्म सिद्धान्त व्यक्तियों के लिए अच्छा हो सकता था पर जन-समूह के लिए मुझे अहिंसा के बजाय शांति शब्द ही उपयुक्त लगता था। यों हीं ऊपर-ऊपर से किसी प्रतिज्ञा-पत्र पर मैं हस्ताक्षर नहीं कर सकता था। जीवन कुटीर का काम अच्छा और सफल माना गया और संस्था को चर्खा संघ की ओर से आर्थिक सहायता देने की बात चली। मैंने चर्खा संघ की कौंसिल में सरदार वल्लभ भाई पटेल से कह दिया कि आप अहमदाबाद में बैठकर जीवन कुटीर का काम नहीं देख सकते। तब फिर बिना किसी शर्त के जीवन कुटीर के लिए चर्खा संघ की सहायता मंजूर हुई। अपने आश्रमवासियों के मामलों में गांधीजी भले ही उपवास किया करें पर स्वतंत्र कार्यकर्त्ताओं को वह अपने खास बन्धन में लिए बिना आशीर्वाद दे सकते थे।

वनस्थली में लड़कियों की शिक्षा का काम शुरू करने की बात आयी तो गांधीजी ने कहा कि जितनी लड़कियों को रतन (मेरी पत्नी) संभाल सकती है उतनी ही लड़कियां रखो। यही बात विनोबाजी ने कही। पर इस आधार पर संस्था नहीं खड़ी हो सकती थी। प्रजामण्डल का जमाना आया। गांधीजी, वल्लभ भाई और जमनालालजी के प्रत्यक्ष-परोक्ष असर से मैंने जयपुर प्रजामण्डल के काम में पड़ना मंजूर कर लिया। जयपुर सत्याग्रह से कुछ पहले हम लोग गांधीजी से मिलने बारडोली पहुँचे। मुझे दूर से ही देखकर गांधीजी बोले: "यह आ गया लड़वैया।" प्रजामण्डल की ओर से जमनालालजी ने जयपुर राज्य को जो अल्टीमेटम जैसा दिया उसका एक-एक अक्षर स्वयं गांधीजी का लिखा हुआ था। हम लोग न जाने कितनी-कितनी बातें सोचकर गये थे। पर गांधीजी ने सब कुछ नागरिक स्वतन्त्रता तक सीमित कर दिया। बाद में मैं समझा कि गांधीजी का सोचना कितना सही था। जब जयपुर सत्याग्रह प्रायः शिखर पर था, ठीक उसी समय गांधीजी ने आन्दोलन को स्थगित करने का हुक्म दे दिया। रतनजी से किसी बड़े आदमी ने कहा: "गांधीजी कहां सत्याग्रह बन्द करवाना चाहते हैं, तुम लोगों से चल नहीं रहा है।" उस दिन गांधीजी का मौन था, पर रतनजी अड़ गयीं और गांधीजी की कलम से सत्या-

ग्रह स्थगित करने का हुक्म लिखवा कर उस वड़े ग्रादमी को दिखा दिया। गांधीजी का सत्याग्रह का तौर-तरीका विलक्षण था।

एक दिन गांधीजी वोले : "मैंने तुम्हारी संस्था वनस्थली के वारे में वहुत सुना है। मैं जानता हूँ कि तुम्हारी शक्ति का ग्रपव्यय होता है।" मैंने कहा : "यह तो वड़ी सख्त राय ग्रापने जाहिर की है। ग्रापने वनस्थली ग्राने का वादा कर रखा है। मुझे कह रखा है जहां कैलाश यानि वनस्थली होगा वहीं शंकर (यानि गांधीजी) पहुँच जायेंगे। ग्राप एक वार वनस्थली चलो ग्रौर ग्रपने हाथ से जैसा चाहो कायापलट करदो।" ग्राखिर गांधीजी के उक्त शव्द मुझे चुभ गये थे। इसलिए मैंने दुवारा वात छेड़ी, उस समय गांधीजी वोले:—

"मैंने वनस्थली के वारे में ग्रच्छा ही ग्रच्छा सुना है ग्रौर मेरा ग्रभिप्राय भी ग्रच्छा ही है। फिर भी मैं तुम्हारी तरफ से जो ग्रपेक्षा रखता हूँ वह यह नहीं है कि इस प्रकार की संस्था का संचालन तुम करो। घनश्यामदास विड़ला ऐसी कोई संस्था चलायें तो मैं ग्रापत्ति न करूंगा क्योंकि तुम जैसे कार्यकर्त्ताग्रों में उनका शुमार नहीं। उनके पास धन है, उसमें से कुछ वह ऐसे कामों के लिए लगाते हैं। परन्तु तुम्हारे वारे में तो तुमको कई वार देखने से ग्रौर जमनालाल ने तुम्हारे लिए मुझ से जो कुछ कहा था उस पर से मुझ पर ग्रौर ही प्रभाव पड़ा है।"

मैं वोला : "मैंने कभी नहीं सोचा था कि ग्राप इतनी वड़ी ग्रपेक्षा मुझ से रखते हैं। मैं सचमुच इस वोझ से ग्रपने ग्रापको दवा हुग्रा पाता हूँ।"

गांधीजी ने उत्तर दिया : "मैं तुमसे ग्रपेक्षा तो रखता हूँ।"

गांधीजी ने एक वार हमें लिखा था : "वनस्थली मेरे दिल में वसी है।" जो हो, शंकर का कैलाश ग्राना हो जाता तो पता नहीं वनस्थली का क्या होता, ग्रौर गांधीजी जल्दी न चले जाते तो मुझे विश्वास है कि वह मुझे मुख्यमंत्री वनने की भूल से भी वचा लेते।

एक मौके पर मैंने गांधीजी से पूछा : "हमारे यहां राजस्थानी भाषा के लिए कुछ ग्रान्दोलन उठा हुग्रा है इसमें ग्रापका क्या खयाल है?" गांधीजी

बोले : "यह निकम्मी बात है। कल को कच्छीवाले कहने लगेंगे कि उनके यहां कच्छी भाषा अलग होनी चाहिए।"

सबसे अधिक मार्मिक बात गांधीजी से मेरी १५ जनवरी १९४८ के आसपास हुई थी। बात करते करते गांधीजी ने कहा : हीरालाल! वल्लभ भाई और जवाहरलाल मेरी बात नहीं सुनते हैं, अब मैं दूसरा वल्लभ भाई और दूसरा जवाहरलाल कहां से लाऊं ?" इन शब्दों के साथ गांधीजी की आंखों में आंसू छलक आये। वही मेरा गांधीजी का अन्तिम दर्शन था।

जहां वाणी और मन में एकता नहीं, वहां वाणी केवल मिथ्यात्व है, दम्भ है, शब्दजाल है।

४

मेरी प्रेरणा के स्रोत-गांधीजी

शोभालाल गुप्त

गांधीजी मेरे जीवन में कैसे आये और मेरे जीवन की धारा को उन्होंने कैसे मोड़ दिया इसकी भी एक कहानी है।

बिजोलियां का नाम इस पुस्तक में कई जगह आया है। मुझे देशभक्ति की दीक्षा बिजोलियां में मिली, और यह दीक्षा देने वाले थे श्री विजयसिंह पथिक। वह मेरी किशोर अवस्था थी और मैं विद्यार्जन करने के लिए अपने पिता के पास बिजोलियां रहता था। उसी समय पथिकजी बिजोलियां पहुंचे और उन्होंने शिक्षक के रूप में अपने काम की शुरूआत की। मैं शिष्य के रूप में उनके सम्पर्क में आया। देश के प्रति मेरा कुछ कर्त्तव्य है और उसका निर्वाह करने के लिए मुझे तैयार होना चाहिए, इस भावना ने बिजोलियां में मेरे मानस में जन्म लिया। उसके बाद मैं अजमेर चला आया और दयानन्द हाई स्कूल में अध्ययन करने लगा। गांधीजी ने देश में असहयोग का शंख फूंका। असहयोग की आंधी अजमेर में भी चली। श्री चांदकरण शारदा उस समय अजमेर में कांग्रेस के नेता थे। उन्होंने छात्रों से अपील की कि अंग्रेजी राज के नियन्त्रण में चलने वाले स्कूल-कालेज गुलामखाने हैं और

छात्रों को उनसे बाहर निकल आना चाहिए। मैं उस समय सातवीं कक्षा में पढ़ता था। दो चार साथी विद्यार्थियों के साथ मैंने स्कूल छोड़ दिया और उसके साथ मेरी स्कूली शिक्षा का भी सदा के लिये खात्मा हो गया। उसके बाद जो कुछ सीखा, जीवन की पाठशाला में ही सीखा। असहयोग के दिनों में अजमेर में राष्ट्रीय विद्यालय खुला था, किन्तु वह थोड़े समय बाद बंद हो गया।

बिजोलियां का किसान-सत्याग्रह कई वर्ष चला। पथिकजी उसका संचालन करते रहे। बाद में वह वर्धा पहुंचे और सेठ जमनालालजी बजाज की सहायता से उन्होंने रियासती जनता के लिये 'राजस्थान केसरी' नामक हिन्दी साप्ताहिक निकाला। देशी रियासतों की प्रजा की मुक्ति के लिए 'राजस्थान सेवा संघ' नाम की एक संस्था भी संगठित की, किन्तु वर्धा में बैठकर राजस्थान के जन-आन्दोलनों का संचालन असम्भव था। पथिकजी अपने साथियों के साथ अजमेर चले आये और राजस्थान सेवा संघ यहां से काम करने लगा। श्री रामनारायण चौधरी से, जो संघ के मंत्री थे, और हरिभाई किंकर से यहीं पहली बार साक्षात्कार हुआ। मुझे किसी ठिकाने की तलाश थी। पथिकजी से पुरानी जान पहचान थी ही। मैं राजस्थान सेवा संघ का आजीवन सदस्य बन गया और यह संकल्प किया कि अब उम्र भर राजस्थान की पीड़ित जनता की मुक्ति के लिए काम करूंगा। साथियों ने एक नये रंगरूट का स्वागत किया। भाई माणिक्यलालजी वर्मा भी संघ के सदस्य थे और उनसे बिजोलियां की पुरानी जान पहचान थी। राजस्थान की रियासतों में एक के बाद एक जन-आंदोलन उठते गए और राजस्थान सेवा संघ के मुट्ठीभर कार्यकर्त्ता जनता का पथ-प्रदर्शन करने लगे। बिजोलियां के किसान सत्याग्रहियों को गांधीजी ने अपना आशीर्वाद दिया। भील आंदोलन में दिलचस्पी ली और शासकों से अनुरोध किया कि वे भील-नेता मोतीलाल तेजावत को भीलों में समाज सुधार का काम करने का मौका दें।

❀ ❀ ❀ ❀

राजस्थान सेवा संघ में हम रूखा-सूखा खाते और दिन रात काम में जुटे रहते। कार्यकर्त्ताओं का वह एक समता-मूलक परिवार बन गया। कविता की ये पंक्तियां हमारे उस समय के मनोभावों को ठीक से व्यक्त करती हैं :

रेशम समझ कर रेजियों को ही सदा अपनायेंगे।
वे भी न यदि हमको मिलेंगी, भस्म देह रमायेंगे।
सूखे चने खाने पड़ें, पक्वान्न गिनकर खायेंगे।
आसन न होगा, घास पत्ते या पयाल बिछायेंगे।

क्या विघ्न के राक्षस हमें भय का प्रपंच दिखायेंगे।
हम देश हित यमराज से भी मुदित हाथ मिलायेंगे।
तिल तिल अगर कटना पड़े निर्भय खड़े कट जायेंगे।
पर वीर राजस्थान का, हर्गिज न नाम डुबायेंगे।

❀ ❀ ❀ ❀

पथिकजी उदयपुर रियासत के वेगूं ठिकाने में किसानों को नेतृत्व करते हुए पकड़े गये और उन्हें पांच वर्ष उदयपुर रियासत की जेल में रहना पड़ा। मेरे लिये भी कसौटी का प्रसंग शीघ्र ही उपस्थित हुआ। राजस्थान सेवा संघ के मुख पत्र 'तरूण राजस्थान' के मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक की जगह मेरा नाम छपता था। अजमेर के हाकिमों ने मुझे और श्री राम नारायण चौधरी को पत्र में प्रकाशित दो लेखों के बारे में राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर लिया। हाकिमों का कहना था कि असली सम्पादक चौधरी जी है और मैं तो नाम का सम्पादक हूँ। उनका यह कहना कुछ अंश में ठीक था। हम चाहते थे कि मुख्य कार्यकर्त्ता बचे रहें और काम बन्द न हो। अतः सारी कानूनी जिम्मेदारी मैंने अपने सिर पर ओढ़ ली थी। हाकिमों की दलील चली नहीं और सन् १९२४ में पहली बार मुझे एक वर्ष सख्त कैद के रूप में देश सेवा का पुरस्कार मिला। जेल में साधारण कैदी जैसा व्यवहार मिला। जौ की रोटियां खाने को और केवल एक बण्डी और एक जांघिया पहनने को मिला। इस सजा ने देश सेवा के मेरे संकल्प को और मजबूत बनाया।

❀ ❀ ❀ ❀

पथिकजी उदयपुर जेल से छूट कर आये तो सेवा संघ में मतभेद उभरे। वे इतने तीव्र हुए कि सेवा संघ छिन्न-भिन्न हो गया। एक शक्तिशाली कर्मठ लोकसेवी संस्था का यह दुःखद अन्त था। मेरा और पथिकजी का साथ छूट गया और मैंने अपनी किश्ती चौधरीजी के साथ जोड़ दी। ब्यावर से अंग्रेजी का एक साप्ताहिक 'यंग राजस्थान' हमने निकाला। इसी बीच जमनालालजी बजाज के साथ हम लोगों का सम्पर्क बढ़ा। सेवा संघ में शासकों के प्रति लुका-छिपी की नीति चलती थी। गांधीजी खुले विरोध के पक्षपाती थे। जमनालालजी ने सुझाया कि हम लोग कुछ समय गांधीजी के पास रहें और उनके विचारों और रीति-नीति का निकट से अभ्यास करें। उनका खयाल था कि इससे हम अच्छे कार्यकर्त्ता बन सकेंगे और ज्यादा अच्छा काम कर सकेंगे। उनका सोचना ठीक ही था। गांधीजी कार्यकर्त्ताओं की मनोभूमिका में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकते थे। पहले चौधरीजी

साबरमती आश्रम गये और गांधीजी के परामर्श से 'यंग राजस्थान' पत्र को बन्द करने का फैसला किया गया। उसके बाद मैं भी साबरमती आश्रम पहुंच गया। मुझे करीब तीन महीने वहां इस युग के सबसे बड़े महापुरुष गांधीजी के निकट सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। इसके लिए मैं जमनालालजी का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इसकी व्यवस्था की थी। साबरमती आश्रम में रहकर मैंने बहुत कुछ सीखा जो अन्यथा नहीं सीख पाता। मैं एक प्रकार से नये सिरे से सार्वजनिक सेवा के लिए दीक्षित हुआ।

❀ ❀ ❀ ❀

यह सन् १९२९ के आखिर की बात है। कांग्रेस ने लाहौर में रावी नदी के किनारे पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य घोषित किया था और देश उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह की लड़ाई के लिए तैयार हो रहा था। २६ जनवरी १९३० को पहला स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। उस दिन जो प्रतिज्ञा दोहराई गई थी उसमें कहा गया था कि अंग्रेजी राज ने इस देश को न केवल राजनीतिक दृष्टि से गुलाम बनाया है, बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी उसका पतन किया है और इसलिए जब तक इस राज को हम बदल न देंगे, हम चैन से नहीं बैठेंगे। आखिर यह प्रतिज्ञा सन् १९४७ में पूरी हुई। वह देश के इतिहास का घटना-पूर्ण काल था और सत्याग्रह आश्रम गांधीजी के कारण राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र बन गया था। गांधीजी से परामर्श करने बड़े-बड़े नेता आते रहते थे। मोतीलाल नेहरू, मौलाना आजाद, सरदार पटेल, आदि नेताओं को गांधीजी से बातें करते देखा। सत्याग्रह की योजना बनी और यह तय पाया कि गांधीजी आश्रमवासियों के साथ कूच करेंगे और समुद्र-तट पर पहुंचकर नमक कानून तोड़ेंगे। उसके बाद सारे देश में नमक कानून तोड़ा गया। नमक कानून को इसलिए चुना गया कि वह गरीबों पर सबसे अधिक बोझ रूप था। साबरमती आश्रम में गुरुदेव और गांधीजी को निकट से देखने का मौका मिला। यह देखा कि गांधीजी ने गुरुदेव (कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर) का आश्रम में बड़े आदर से स्वागत-सत्कार किया और गुरुदेव ने भी आश्रम-वासियों पर अपने आशीर्वाद की वर्षा कर दी थी।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरा काम था कि मैं प्रतिदिन गांधीजी के समीप जाकर बैठता और जब कभी उन्हें किसी काम की जरूरत होती तो उनके आदेश को पूरा करता। कई दिन उन्होंने कोई काम नहीं बताया। उनसे जो लोग मिलने आते उनकी बातचीत सुनता। कोई पुस्तक या अखबार पढ़ता रहता। मैंने

देखा कि मेरे सुपुर्द कोई काम नहीं है, इसलिए गांधीजी के पास नियत समय से कुछ विलम्ब से पहुँचने लगा। एक दिन बापू की फटकार सुनने को मिल ही गई। बोले: "आग हमेशा नहीं लगा करती, किंतु आग बुझाने के लिए रेत की बाल्टी अपने स्थान पर हर समय तैयार रखनी होती है। आग लगने पर उसे ढूंढने कहां जाएंगे। तुम्हारी जरूरत हो और तुम अपनी जगह पर मौजूद न हो तो कैसे काम चलेगा ?" उनकी इस मीठी फटकार के बाद मैं अपनी जगह पर समय पर पहुंचने लगा और इस बारे में कभी गफलत नहीं की। गांधीजी समय के बड़े पाबन्द थे। प्रार्थना हो या भोजन, समय पर पहुंचते। किसी कारण देर हो जाती तो दौड़ कर पहुंचते। यह आग्रह रखते कि उनकी हर वस्तु यथास्थान रहे कि उसे अंधेरे में भी खोजा जा सके। गांधीजी ने हिन्दी 'नव जीवन' के लिये एक लेख हिन्दी में प्रति सप्ताह लिखना शुरू किया। मुझ से कहा उसकी भाषा देख लिया करो। उनकी भाषा में हेरफेर करना कठिन होता। अन्य लेखों के हिन्दी अनुवादों को भी पढ़ने को कह रखा था। गांधीजी ने लार्ड इर्विन को अल्टिमेटम का पत्र लिखा, जिसमें ११ शर्तें पूरी करने की बात थी। वह पत्र टाइप करने का काम मुझे मिला। टाइप करने में समय तो लगा, किंतु गलतियां दो चार ही थीं। गांधीजी ने मेरे काम को सराहा। मैं गांधीजी की डाक तैयार करने में उनके निजी सेक्रेटरी प्यारेलाल को मदद देता था। गांधीजी मेरे खुश-खत यानी सुन्दर हस्तलेख की प्रशंसा करते थे। उन्होंने आश्रम की बहिनों को हिन्दी सिखाने का काम भी मुझे सौंपा था। स्वच्छता और सफाई का उन्हें पूरा ख्याल रहता था। रास्ते से गुजरते होते और कहीं कागज का टुकड़ा पड़ा नजर आता तो उठाकर कचरे के डिब्बे में डालना न भूलते। एक पिन भी बेकार न जाने देते। आलपीन के बजाय बबूल के कांटे पिन का काम देते और कागज की किफायत की हद थी। कागज के टुकड़ों को इकट्ठा करके उसकी पीठ पर लिखने के लिए रख छोड़ते। उपयोग में आये लिफाफे उलट कर दुबारा उपयोग में लिए जाते। उनकी निगाह में छोटी बात का बड़ी बातों जितना ही महत्व था। मेरी पत्नी श्रीमती विजया देवी भी मेरे साथ गई थी। गर्भवती थी। उसके लिए खाट की व्यवस्था की चिन्ता स्वयं गांधीजी ने की। ऐसी बातों से वह साथियों का दिल जीत लेते थे।

आश्रम में सब अपनी दैनिक डायरियां लिखते थे। उसमें दिन भर के कामों का विवरण लिखना होता था। गांधीजी ने निर्देश दिया कि

डायरी में अपने मनोभाव भी दर्ज किए जाएं। इन डायरियों को गांधीजी स्वयं देखते और आश्रमवासियों का मार्ग-दर्शन करते। वह चाहते थे कि आश्रमवासियों का जीवन उनके सामने खुली किताब रहे। किन्तु मनोभावों का प्रकट करना हमेशा सरल नहीं होता। न जाने मन में कितने विकार पैदा होते हैं। उनको ज्यों का त्यों प्रकट कर दिया जाय यह नग्नता आदमी को असह्य बना सकती है। किंतु सत्य का पुजारी अपने विकारों पर पर्दा भी कैसे डाल सकता है?

❀ ❀ ❀ ❀

उस समय अहिंसा पर मेरी पूरी आस्था नहीं थी। मेरा ख़याल था कि गीता धर्मयुद्ध की इजाजत देती है और मनुष्य अनासक्त हो तो हिंसा उसके लिये बंधनकारक और दोष रूप नहीं हो सकती। मैं सोचता था कि अहिंसा देश की तत्कालीन परिस्थितियों में एक अच्छी नीति है, किंतु जो अहिंसा को नहीं मानते, यदि वे देश की स्वतन्त्रता के लिए हिंसा का आश्रय लें तो कुछ अनुचित नहीं करते। गांधीजी के लिए तो अहिंसा परम धर्म था। वह सारी समस्याओं को अहिंसा के द्वारा हल करना चाहते थे। मैंने अपनी शंकाओं के समाधान के लिए उनसे समय मांगा। उन्होंने खुशी से दिया। सुबह घूमते समय साथ हो लिया। ऐसी शंकायें बहुत लोग उनसे करते। किन्तु वह धीरज से उत्तर देते रहते। मुझ से कहा: "साध्य के साथ साधन भी अच्छा होना चाहिये। बबूल का पेड़ बो कर हम गुलाब के फूल की कैसे आशा कर सकते हैं?" हिंसा-अहिंसा की गुत्थी उस समय मेरी समझ में नहीं आई। मेरी शंकाओं का समाधान नहीं हुआ। आगे चलकर यह सुझाव आया कि मैं गांधी सेवा संघ का सदस्य बन जाऊं, किंतु सदस्य वही बन सकता था जो अहिंसा को धर्म मानता हो। मैं सदस्य नहीं बन सका, क्योंकि उस आर्थिक निश्चिन्तता से मानसिक ईमानदारी ज्यादा कीमती वस्तु प्रतीत हुई। किंतु अब मेरी मनोभूमिका बदल गई है। मैं मानने लगा हूं कि हिंसा ने मानव जाति के विनाश के सामान पैदा कर दिए हैं और वह केवल अहिंसा से ही बच सकती है। अहिंसा के बिना आदर्श समाज कायम नहीं हो सकता। गांधीजी को उनके जीवन काल में जो श्रद्धा मैं नहीं दे पाया, वह उनकी मृत्यु के बाद आज उन्हें दे सकता हूं। आज उनका सत्य और अहिंसा का मार्ग ही मुझे राजमार्ग प्रतीत होता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं डाण्डी कूच में गांधीजी के दल में शामिल नहीं हुआ। किंतु उस प्रेरणाप्रद ऐतिहासिक कूच को मैंने अपनी आंखों से देखा था और वह

दृश्य सदा के लिये मेरे हृदय पर अंकित हो गया। मेरे शामिल न होने का मुख्य कारण था कि मैंने राजस्थान को अपना कार्यक्षेत्र माना हुआ था। साबरमती आश्रम से हटने के कुछ दिन पूर्व जमनालालजी के साथ रहने के बाद अजमेर लौट आया। इस बीच बापू से कराडी में, जो समुद्र तट के निकट थी, थोड़े समय मिलने का अवसर मिला था। अजमेर लौटने पर एक भाषण के सिलसिले में गिरफ्तार हुआ और न्यायाधीश के सामने पेश किया गया तो मैंने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि ब्रिटिश साम्राज्य ताश के पत्तों की तरह लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा। यह निर्भीकता मुझे गांधीजी से ही मिली। न्यायाधीश ने एक वर्ष की सजा दी, किंतु गांधी-इर्विन समझौते के अनुसार आठ-नौ महीनों में ही छूट गया। यह मुक्ति अल्पकालीन सिद्ध हुई। गांधीजी के गोलमेज कांफ्रेंस से लौटने के बाद संघर्ष फिर शुरू हुआ और मैं पहले ही दिन सार्वजनिक सभा में भाषण देने का प्रयत्न करते हुये पकड़ा गया और एक वर्ष के लिए जेल में बन्द कर दिया गया।

जेल से छूटने के बाद अहमदाबाद जाना हुआ। डाक्टर सय्यद महमूद का एक लिखित संदेश लेकर बापू के पास गया था। बापू ने मीठी मुस्कान के साथ स्वागत किया और राजस्थान के विशिष्ट कार्यकर्त्ता के रूप में मेरा परिचय कराया। मेरे ठहरने और भोजन आदि के बारे में पहले पूछताछ की। मैं उनका उत्तर लेकर लौट गया। उनका प्रत्येक सम्पर्क हर बार मन में नया उत्साह भर देता था।

❀ ❀ ❀ ❀

गांधीजी ने इस बीच अस्पृश्यता रूपी कलंक को दूर करने के लिए हरिजन आन्दोलन का सूत्रपात किया। राजस्थान में श्री रामनारायण चौधरी और मेरे अन्य कुछ साथी इस आंदोलन में पहले से भाग ले रहे थे। मुझ से भी जेल से बाहर आने पर यह चाहा गया कि मैं इस आंदोलन में हाथ बटाऊं। राजस्थान की रियासतों में इस आंदोलन के गतिशील होने की सम्भावनाएं नजर आईं। मैंने उसमें योग देना स्वीकार कर लिया। हम लोगों ने राजस्थान की रियासतों में गांधीजी की सत्य और अहिंसा की खुली रीति-नीति के अनुसार काम करने के लिए एक नई संस्था 'राजस्थान सेवक मंडल' के नाम से बनाई और उसने यह मर्यादा स्थिर की कि जहां रियासतों की ओर से आपत्ति नहीं होगी, वहां वह खादी प्रचार, नशा निषेध, अस्पृश्यता निवारण, साम्प्रदायिकता एकता आदि गांधीजी के बताये रचनात्मक काम करेगी, प्रजा की शिकायतों को विनय पूर्वक राजाओं के

सामने रखेगी और राजा-प्रजा में सहयोग का वातावरण पैदा करेगी । देशी रियासतों के लिए इस तरह की संस्था सारे भारत के लिए बनाने का गांधीजी का विचार था, किंतु वह पार नहीं पड़ा तो राजस्थान के सीमित क्षेत्र के लिए यह संस्था बनाई गई। यह भी राजस्थान की आजीवन सेवा करने की प्रतिज्ञा लेने वाले सेवकों की संस्था थी और उसमें राजस्थान सेवा संघ के कई पुराने साथी शामिल हो गए थे। इस संस्था की मर्यादाओं के कारण राजस्थान की कुछ रियासतों में खुले रूप से सार्वजनिक काम करने का मौका मिला। इस संस्था ने डूंगरपुर के आदिवासियों में शिक्षा, खादी और सामाजिक सुधार का अच्छा काम किया। किंतु कार्यकर्त्ताओं की अपनी कमी के कारण यह संस्था कुछ वर्ष चलने के बाद निष्क्रिय हो गई और उसके सदस्य स्वतन्त्र रूप से काम करने लगे ।

❀ ❀ ❀ ❀

रियासतों में एक नई राजनीतिक जागृति के लक्षण प्रकट हो रहे थे। हरिपुरा के अपने अधिवेशन में कांग्रेस ने रियासती लोगों को परामर्श दिया कि वे अपने स्वतन्त्र संगठन कायम करके नागरिक स्वतन्त्रता और उत्तरदायी शासन के लिए प्रयत्न कर सकते हैं। कांग्रेस उन्हें अपना नैतिक समर्थन देगी। किंतु उन्हें अपने अधिकारों की लड़ाई खुद ही लड़नी होगी। इससे रियासती जनता में स्वावलम्बन की भावना जागृत हुई और राजस्थान की अनेक रियासतों में प्रजा ने नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष किया। जयपुर का आंदोलन तो सेठ जमनालालजी बजाज के नेतृत्व में ही चला। उसमें गांधीजी ने सबसे अधिक दिलचस्पी ली। किन्तु आंदोलन चाहे जयपुर में हुआ चाहे जोधपुर या उदयपुर में, गांधीजी ने हमेशा जन पक्ष का प्रबल समर्थन किया और एक अच्छे मित्र के रूप में राजाओं को जनमत का आदर करने का नेक परामर्श दिया। उनकी सलाह पर ही कांग्रेस ने अपने लिए यह मर्यादा स्थिर की थी कि वह प्रत्यक्षरूपेण देशी रियासतों के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगी। कांग्रेस की इस नीति पर यद्यपि रियासती प्रजा को असन्तोष रहा, किंतु समय ने उसकी उपयोगिता सिद्ध की। कांग्रेस अपने लिए लड़ाई के अनेक मोर्चे कायम नहीं कर सकती थी। उसका मुख्य प्रहार-बिन्दु अंग्रेजी राज था और उसका यह सही खयाल था कि मुख्य मोर्चे पर जीत होने के साथ दूसरे मोर्चे अपने आप सर हो जायेंगे । 'एकहि साधे सब सधे' वाली कहावत में उसकी श्रद्धा थी। किंतु कांग्रेस धीरे-धीरे शक्तिशाली हुई और उसने प्रांतों में मन्त्री-पद ग्रहण किए। तब गांधीजी के रुख में भी परिवर्तन हुआ। उन्होंने राजाओं को चेतावनी दी कि रियासतों में प्रजा का दमन होता रहे तो कांग्रेस

शक्ति रहते उसकी केवल दर्शक बन कर नहीं रह सकती । उन्होंने जयपुर के मामले में चेतावनी दी कि यह अखिल भारतीय प्रश्न बन सकती है। उन्होंने जयपुर के अंग्रेज दीवान को हटाने की मांग की। उनकी सलाह पर जन आंदोलन स्थगित किए गए ताकि समझौते के लिए अनुकूल वातावरण बन सके । उन्होंने मध्यस्थता के प्रयास भी किए। वह स्वयं एक देशी रियासत में पैदा हुए थे और रियासती प्रजा की स्थिति का उन्हें व्यक्तिगत अनुभव था। उन्होंने रियासती कार्यकर्त्ताओं को हमेशा सलाह दी कि उन्हें रियासतों में रचनात्मक काम करके प्रजा में शक्ति-संचय करना चाहिए। किंतु अवसर आने पर, उदाहरण के लिए राजकोट में, प्रत्यक्ष हस्तक्षेप किया और राजकोट दरबार से अपना वचन पालन कराने के लिए अनशन तक किया। मेरे ख्याल से रियासती प्रजा की मुक्ति के लिए गांधीजी को उतना ही श्रेय है जितना शेष भारत की मुक्ति के लिए। रियासतों में जो राजनीतिक चेतना पैदा हुई वह गांधीजी के आंदोलन का प्रत्यक्ष परिणाम थी । रियासती कार्यकर्त्ताओं को इन आंदोलनों में प्रत्यक्ष शिक्षण प्राप्त हुआ । राजस्थान के जन आंदोलनों का गांधीजी ने इस प्रकार पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें बल पहुंचाया। गांधीजी चाहते थे कि राजा प्रजा के ट्रस्टी बन कर रहें और प्रजा के प्रथम सेवक बनें। यदि राजाओं ने उनकी सलाहों को माना होता तो उनका भविष्य यह नहीं हुआ होता जो अब हुआ है। किंतु विधि के लेख को कौन मिटा सकता है ? राजा अंग्रेजी सत्ता पर निर्भर थे और जब तक यह सहारा रहा उन्हें अपनी प्रजा की चिन्ता करने की जरूरत ही महसूस नहीं हुई। अंग्रेज शासकों को खुश रख कर वह बेखटके अपना विलासी जीवन जी सकते थे। परिस्थितियां ऐसी थीं कि वे चाहते तो भी शायद अन्यथा नहीं कर सकते थे । जरा प्रगतिशील बनने का प्रयत्न करते तो उन्हें सार्वभौम सत्ता का कोपभाजन बनना पड़ता।

❀ ❀ ❀ ❀

मैंने सन् १९४० में अपने जीवन का अंगीकृत क्षेत्र लम्बे समय के लिए छोड़ दिया। परिस्थितियों ने वैसा करने के लिए मजबूर कर दिया था या यों कहना चाहिए कि मुझ में वह क्षमता न थी कि प्रतिकूलताओं का सामना करके अपने क्षेत्र में जमा रहता। राजस्थान छोड़ने के बाद गांधीजी के सुपुत्र श्री देवदास भाई ने अपने पत्र में जगह दे दी थी। इस पत्र के द्वारा राजस्थान और देश की जो भी सेवा हो सकती थी, अगर उसको सेवा नाम दिया जा सके, तो वह करता रहा । किंतु मुख्य लक्ष्य सेवा नहीं आजीविका कमाना था। इसी बीच गांधीजी ने आजादी की आखिरी लड़ाई 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' आंदोलन का श्रीगणेश किया । उसके सिलसिले में अंग्रेज सरकार ने

राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं और देशभक्तों को सामूहिक रूप से नजरबन्द किया। उसमें मेरी भी गिनती इस श्रेणी में की और मुझे लगभग दो वर्ष अजमेर में नजरबन्द रहना पड़ा। मैंने सोचा कि अपने देश से प्रेम करने की यह कीमत चुका रहा हूं। गांधीजी ने इस आखरी लड़ाई का श्रीगणेश करते हुए रियासतों के प्रजा-संगठनों और कार्यकर्त्ताओं को सलाह दी थी कि वे राजाओं से मांग करें कि वे ब्रिटिश ताज से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लें और अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दें। राजस्थान में मेवाड़ प्रजा मण्डल ने इस सलाह पर अमल किया था और उसके कार्यकर्त्ताओं को बदले में सामूहिक नज़रबन्दी का सामना करना पड़ा।

आखिर १५ अगस्त १९४७ का वह ऐतिहासिक दिन आया जब भारत स्वतन्त्र हुआ। किंतु जिन परिस्थितियों में यह स्वतन्त्रता आई उनसे गांधीजी को और बहुत सारे देशभक्तों को खुशी नहीं हुई। उसके साथ देश के दो टुकड़े हुए और गांधीजी का हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वप्न चकनाचूर हो गया। उस समय मैं दिल्ली में था। मैंने अपनी आंखों से देखा कि भाई भाई के खून का प्यासा बन गया है। गांधी-विचारों पर मेरी श्रद्धा तो थी ही, किंतु जीवन से मोह था और इसलिए हत्यारों और निर्दोष व्यक्तियों के बीच में अपने को खड़ा न कर सका और हत्याओं का दर्शक बन कर रह गया, अन्यथा यह पंक्तियां लिखने की नौबत ही नहीं आती। उसके बाद गांधीजी जब तक जीवित रहे उनसे मिलने की हिम्मत नहीं हुई। उनसे मिलता भी किस मुंह से? क्या अपनी दुर्बलता पर दम्भ का पर्दा डाल कर उनसे मिलता?

सुगंध जमाकर हम सुगंध फैलाते हैं, उसी प्रकार पूजा करके हम सुगंधमय बनते हैं।

५

जयपुर का सत्याग्रह और बापू का मार्ग दर्शन

श्रीमती जानकी देवी बजाज

हरिपुरा कांग्रेत के वाद देशी राज्यों में जन ग्रांदोलन जोर पकड़ने लगा था। राजस्थान की जयपुर रियासत में प्रजा मण्डल का प्रभाव वढ़ने लगा था और रियासती सरकार दमन पर उतारू हो रही थी। उस समय प्रजा मण्डल के अध्यक्ष सेठजी (मेरे स्व० पति श्री जमनालाल वजाज) थे। अ० भा० कांग्रेस के वह उस समय कार्य समिति के सदस्य और कोषाध्यक्ष भी थे। कांग्रेस की ओर से देशी राज्यों में सीधी लड़ाई में भाग लेने का कार्यक्रम नहीं था और सवाल खड़ा हुआ कि राजपूताने की प्रमुख देशी रियासत में जव जन-आन्दोलन खड़ा होता है और जमनालालजी उस संगठन के अध्यक्ष हैं और इधर कांग्रेस के भी प्रभावशाली नेता हैं, तो इनको जयपुर के आन्दोलन का संचालन करना चाहिये या नहीं। गांधीजी के आशीर्वाद से ही जमनालालजी रियासती आंदोलन में जा सकते थे। उनकी स्वयं की इच्छा तो थी ही। उन्हीं दिनों गांधीजी काठियावाड़ की राजकोट रियासत में वहां के तत्कालीन निरंकुश दीवान श्री वीरावाला के खिलाफ सत्याग्रह कर रहे थे, जहां उन्हें इसके लिये

श्रीमती जानकी देवी वजाज

अनशन भी करना पड़ा था। असल में राजकोट नरेश ने सरदार पटेल को दिये वचन को वीरावाला की कुमन्त्रणा से भंग किया था, और इस वचन भंग के विरुद्ध ही बापू जी ने अनशन किया था।

गांधीजी की सलाह से ही जयपुर में भी सत्याग्रह आरम्भ किया गया। उस समय बापू ने कहा था कि अगर अंग्रेज राजस्थान में जमनालालजी को न घुसने दें तो वे सारे राजस्थान का ही अपमान है। जमनालालजी को दो बार जयपुर सरकार ने मोटर में बिठाकर रियासत के बाहर कर दिया। परन्तु जमनालालजी तो तन-मन-धन से इस सत्याग्रह में जुट गये थे। अन्त में जयपुर दरबार की आज्ञा भंग करके जयपुर में दाखिल होने पर ठीकरियां स्टेशन पर उनको जबरदस्ती उतारा गया। मोटर से निकालते समय उनके गाल पर खरोंच आई और बनियान पर खून का दाग भी लगा। उन्हें मोरां-सागर नामक स्थान पर नजरबन्द कर दिया गया। हम लोग उनसे मिलने कभी-कभी जाया करते।

जमनालालजी के जीवन की कष्ट सहिष्णुता की छाप हम सब को प्रभावित करती रहती थी। बापूजी के आशीर्वाद और उनके सहवास का ही यह असर रहा है। जेल जीवन में उन्हें खान पान की पूरी सुविधा होते हुए भी वे बाजरे की मोटी रोटी बिना घी के खाना पसन्द करते थे। उनके घुटने में दर्द था। एक बार बिजली का सेक दिया गया। डाक्टर ने कहा था कि जितना सहन कर सके उतनी ही देर रखें। उन्होंने उसे लगाये ही रखा, यहां तक कि पांव में घाव हो गया। मांस जलने लगा और इसकी गन्ध से डाक्टर ने दौड़ कर पांव सम्भाला। कलकत्ते में जब मोटर दुर्घटना हुई तो भारी चोट आई और बारह टांके लगे। परन्तु उन्होंने बिना क्लोरोफार्म सूंघे हंसते-हंसते टांके लगवाये। यह सब बापू का ही परसाद था।

बापू के आशीर्वाद और सहवास के कारण ही मैं अपने जीवन में निर्भीकता अनुभव करती हूँ। सीकर में गोली चलने के डर से जब जनता भयभीत थी तो मैंने लोगों को घूम-घूम कर निर्भीकता का पाठ पढ़ाया। सीकर की औरतों में भारी आतंक था। मैंने उन्हें भी आश्वस्त किया। कमरे-वाली सेठानी के नाम से उस समय लोग मुझे पहचानते थे।

पू० जमनालालजी की इच्छा थी कि जयपुर सत्याग्रह में मैं वर्धा से महिलाओं का एक बड़ा जत्था लेकर सम्मिलित होऊं। उस समय मेरी कमर

में भारी दर्द रहता था, स्वास्थ्य भी गिरा हुआ था।—परन्तु कमल नयन के डर से कुछ कह नहीं सकी। फिर कमल नयन मुझे बापूजी के पास ले गया, बोला, मां के कमर में दर्द है और काकाजी (जमनालालजी) के बुलावे पर जयपुर सत्याग्रह में जाना चाहती हैं। कुमारी अमृतकौर बापूजी के पास बैठी कुछ लिख रही थीं, बोलीं : 'अभी कमर के दर्द में घूमेगी तो जैसे मेरी कमर का हाल है—वैसा हो जायगा।' बापू ने मेरी ओर देखा—बोले : क्यों जाना चाहती हैं ? मेरी दुविधा भरी शकल देखकर ही बापू ने जमनालालजी को तार करवा दिया कि जानकी देवी, तबियत की खराबी के कारण नहीं आ सकती। मैं अब सोचती हूँ कि उस समय मैं सत्याग्रह में महिलाओं को लेकर पहुंच जाती तो अच्छा होता, पर 'अब पछतायें होत क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत'।

जयपुर आन्दोलन के सिलसिले में बापूजी ने वायसराय से बातचीत की। बाद में बापूजी की सलाह से सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया, और जमनालालजी भी रिहा कर दिये गये। जमनालालजी की बाद में जयपुर के अधिकारियों से बातचीत चली और प्रजा मण्डल से पाबन्दी हटा ली गई। जिस उद्देश्य से यह सत्याग्रह किया गया था वह पूरा हुआ। प्रजामण्डल के अन्य साथी भी रिहा हो गये।

एक बार जयपुर में प्रजा मण्डल व आज़ाद मोरचे के बीच मतभेद हो गया था कि अध्यक्ष किसको बनाया जाय ? किसी तरह दोनों दलों के मध्य समझौता होना कठिन हो रहा था। जमनालालजी से जेल में चर्चा मशविरा करने के लिए जयपुर के हीरालालजी शास्त्री मिलने गये। उन दिनों मैं सीकर थी। उनसे जेल में मिलने के बाद शास्त्रीजी मुझसे मिले और इस कठिनाई के बारे में बताने लगे। मेरे मुंह से सहज ही निकल पड़ा कि यदि इतनी कठिनाई ही है तो मुझे अध्यक्ष के पद पर बिठा दो। शास्त्रीजी को इस समाधान से बड़ी प्रसन्नता हुई कि इस सुझाव को दोनों दल मान सकते हैं और इस प्रकार दोनों दलों में समझौता हो सकेगा। मुझे अध्यक्ष बना दिया गया। सारे शहर में जुलूस निकाला गया। मण्डल का काम भी सुचारू रूप से चलने लगा। लोग कहा करते थे कि हीरालालजी शास्त्री तो एक गाय को ही पकड़ कर ले आये हैं। अब भेद का प्रश्न ही क्या हो सकता है।

६

गांधीजी मानव के रूप में

घनश्यामदास बिड़ला

गांधीजी का मेरा प्रथम सम्पर्क १९१५ के जाड़ों में हुआ। वह दक्षिण अफ्रीका से नये-नये ही आये थे और हम लोगों ने उनका एक वृहत स्वागत करने का आयोजन किया था। मैं उस समय केवल २२ साल का था। गांधीजी की उस समय की शक्ल यह थी– सिर पर काठियावाड़ी साफा, एक लम्बा अंगरखा, गुजराती ढंग की धोती और पांव बिल्कुल नंगे। वह तस्वीर आज भी मेरी आंखों के सामने ज्यों की त्यों नाचती है। हमने कई जगह उनका स्वागत किया। उनके बोलने का ढंग, भाषा और भाव बिल्कुल ही अनोखे मालूम दिये। बोलने में न जोश, न कोई अतिशयोक्ति न कोई नमक मिर्च। सीधी-सादी भाषा।

सन् १९१५ में जो सम्पर्क बना वह अन्त तक चलता ही रहा और इस तरह ३२ साल का गांधीजी का सम्पर्क मुझ पर एक पवित्र छाप छोड़ गया जो मुझे तमाम आयु स्मरण रहेगा। उनका सत्य, उनका सीधापन, उनकी अहिंसा, उनका शिष्टाचार, उनकी आत्मीयता, उनकी व्यवहार-कुशलता, इन सब चीजों का मुझ पर दिन प्रतिदिन असर पड़ता गया और धीरे-धीरे मैं

उनका भक्त बनता गया। जब समालोचक था तब भी मेरी उन पर श्रद्धा थी। जब भक्त बना तो श्रद्धा और भी बढ़ गई। ईश्वर की दया है कि ३२ साल का मेरा एक महान आत्मा का सम्पर्क अन्त तक निभ गया। मेरा यह सद्‌भाग्य है।

गांधीजी को मैंने संत रूप में देखा, राजनीतिक नेता के रूप में देखा और मनुष्य के रूप में भी देखा। मेरा यह भी खयाल है कि अधिक लोग उन्हें संत या नेता के रूप में ही पहचानते हैं। लेकिन जिस रूप ने मुझे मोहित किया वह तो उनका एक मनुष्य का रूप था, न नेता का और न सन्त का। उनकी मृत्यु पर अनेक लोगों ने अपनी दुःख गाथाएं गाई हैं और उनके अद्‌भुत गुणों का वर्णन किया है। मैं उनके क्या गुण गाऊं, पर वह किस तरह के मनुष्य थे यह मैं बता सकता हूं।

मनुष्य क्या थे वह कमाल के आदमी थे। राजनीतिक नेता की हैसियत से वह अत्यन्त व्यवहार-कुशल तो थे ही। किसी से मैत्री बना लेना यह उनके लिए चन्द मिनिटों का काम था। द्वितीय गोल मेज कांफ्रेन्स में जब वह इगलैण्ड गये थे, उनके कट्टर दुश्मन सेम्युएल हौर से मैत्री हुई तो इतनी कि अन्त तक दोनों मित्र रहे। लिनलिथगो से, जो वायसराय होकर आये थे, उनकी न निभीं पर यह दोष सारा लिनलिथगो का ही था। गांधीजी ने मैत्री 'रखने में कोई कसर न रखी, जिनसे गांधीजी मैत्री रखते, छोटी चीजों में वह उनके गुलाम बन जाते थे, पर जहां सिद्धान्त की बात आती थी वहां डट के लड़ाई होती थी। पर उसमें भी वह कटुता न लाते थे। लन्दन में जितने रोज रहे बिना सेम्युएल होर की आज्ञा के कोई वक्तव्य या व्याख्यान देना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। लिनलियगो से भी कई बातों में ऐसा ही सम्बन्ध था।

निर्णय करने में वह न केवल दक्ष थे, पर साहसी भी थे। चोरीचौरा के काण्ड को लेकर सत्याग्रह का स्थगित करना और हिमगिरि जितनी अपनी बड़ी भूल मान लेना, इसमें काफी साहस की जरूरत थी। सत्याग्रह स्थगित करने पर वह लोगों के रोप के शिकार बनें, गालियां खाई, मित्रों को काफी निराश किया, पर अपना दृढ़ निश्चय उन्होंने नहीं छोड़ा। १९३७ में कांग्रेस ने जब गवर्नमेन्ट बनाना स्वीकार किया, तब गांधीजी के निर्णय से प्रभावित होकर कांग्रेस ने ऐसा किया। गांधीजी ने जहां कदम बढ़ाया, सब पीछे चल पड़े। कांग्रेस नायकों में उस समय झिझक थी, वे शंकाशील थे। १९४२ में जब क्रिप्स आये तब हाल इसके विपरीत था। कांग्रेस के कुछ नेता चाहते

थे कि क्रिप्स की सलाह मानली जाय और क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार किया जाय। पर गांधीजी टस से मस न हुए, वल्कि उन्होंने 'हिन्दुस्तान छोड़ो' की धुन छेड़ी और लड़ पड़े . इस समय भी उन्होंने निर्णय करने में काफी साहस का परिचय दिया।

मुझे याद आता है कि राजनीति में उस समय करीव-करीव सन्नाटा था। लोगों में एक तरह की थकान थी। नेताओं में प्राय: एकमत था कि जनता लड़ने को उत्सुक नहीं है।

विहार से एक नेता आए। गांधीजी ने उनसे पूछा कि जनता में क्या हाल है। क्या जनता लड़ने को तैयार है? विहारी नेता ने कहा कि जनता में कोई तैयारी नहीं कोई उत्साह नहीं है। पीछे तक कर उन्होंने कहा कि मुझे एक कथा स्मरण आती है। एक मर्तवा नारद विष्णु के पास गये। विष्णु ने नारद से पूछा : नारद, ज्योतिष के अनुसार वर्षा का कोई ढंग दिखता है? नारद ने पंचांग देखकर कहा कि वर्षा होने की कोई सम्भावना नहीं है। नारद ने इतना कहा तो सही पर विष्णु के घर से वाहर निकले तो वर्षा से सुरक्षित होने के लिए अपनी कमली ओढ़ ली।

विष्णु ने पूछा : नारद, कम्वल क्यों ओढ़ते हो? नारद ने कहा : मैंने ज्योतिष की वात वताई है, पर आपकी इच्छा क्या है यह तो मैं नहीं जानता। अन्त में जो आप चाहेंगे वही होने वाला है। इतना कह कर विहारी नेता ने कहा : वापू जनता में कोई जान नहीं है, पर आप चाहेंगे तो जान भी आ ही जायगी। यह विहारी नेता थे सत्यनारायण वावू, जो अव संसद में सूचना व प्रसारण मंत्री हैं। जो उन्होंने सोचा था वही हुआ। जनता में लड़ने की कोई उत्सुकता न थी, पर विगुल वजते ही लड़ाई ठनी तो ऐसी कि अत्यन्त भयंकर।

पर यह तो मैंने उनकी नेतागिरी और राज कौशल की वात वताई। इतने महान होते हुए भी किस तरह छोटों की भी उन्हें चिन्ता थी, वह आत्मीयता उनकी देखने लायक थी। यह चीज उनके पास एक ऐसे रूप में थी कि जिसके कारण लोग उनके वेदाम गुलाम वन जाते थे। उनके पास रहने वालों को यह डर रहता था कि वापू किसी भी कारण से अप्रसन्न न हों और यह भय इसलिए नहीं था कि वह महान व्यक्ति थे। पर इसलिए कि मनुष्य में जो सहृदयता और आत्मीयता होनी चाहिए वह उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

बहुत वर्षों की बात है। करीब २२ साल होगये। जाड़े का मौसम था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। गांधीजी दिल्ली आये थे। उनकी गाड़ी सुबह ४ बजे स्टेशन पर पहुंची। मैं उन्हें लेने गया। पता चला कि १ घंटे बाद ही गाड़ी जाने वाली है। गाड़ी से उतरते ही पूछा: एक दिन ठहर कर नहीं जा सकते। उन्होंने कहा: क्यों? मैंने कहा: घर में कोई बीमार है। मृत्यु-शैय्या पर है। आपके दर्शन करना चाहती है। गांधीजी ने कहा: मैं अभी चलूंगा। मैंने कहा: मैं इस जाड़े में लेजाकर आपको कष्ट नहीं दे सकता। उन दिनों मोटर भी खुली होती थी। जाड़ा और ऊपर से जोर की हवा। पर उनके आग्रह के बाद में लाचार हो गया। मैं उन्हें ले गया, दिल्ली से कोई १५ मील की दूरी पर। वहां उन्होंने रोगी से बात कर उसे सान्त्वना दी। दिल्ली छावनी पर अपनी गाड़ी पकड़ी। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा व्यक्ति मेरी जरा सी प्रार्थना पर सुबह के कड़ाके के जाड़े में इतना परिश्रम कर सकता है और कष्ट उठा सकता है। पर यह उनकी आत्मीयता ही थी जो लोगों को पानी पानी कर देती थी। मृत्यु शैय्या पर सोने वाली यह मेरी धर्मपत्नी थी।

❀ ❀ ❀ ❀

परचुरे शास्त्री एक साधारण ब्राह्मण थे। उन्हें कुष्ठ था। उनको गांधीजी ने अपने आश्रम में रखा सो तो रखा, पर रोजमर्रा उनकी तेल की मालिश भी स्वयं अपने हाथों करते थे। लोगों को डर था कि कहीं कुष्ठ गांधीजी को न लग जाय। पर गांधीजी को इसका कोई भय नहीं था। उनको ऐसी चीजों से अत्यन्त सुख मिलता था।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् ४२ के शुरू में वर्धा गया। कुछ दिन बाद उन्होंने मुझ से कहा: तुम्हारा स्वास्थ्य गिरा मालूम देता है इसलिए मेरे पास सेवाग्राम आ जाओ और यहां कुछ दिन रहो। मैं तुम्हारा उपचार करना चाहता हूं। मैंने कहा: वर्धा ठीक है। सेवाग्राम में क्यों आपको कष्ट दूं? मुझे संकोच तो यह था कि सेवाग्राम में पाखाना साफ करने के लिए कोई मेहतर नहीं होता। वहां पर टट्टी की सफाई आश्रम के लोग स्वयं करते। जहां मुझे ठहराना निश्चित किया गया था वहां की टट्टी गांधीजी के सचिव महादेव भाई साफ किया करते थे। मैंने उन्हें अपना संकोच बताया कि क्यों मैं सेवाग्राम नहीं जाना चाहता था। मैं स्वयं अपनी टट्टी साफ नहीं कर सकता और यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि महादेव भाई जैसा विद्वान और तपस्वी ब्राह्मण उसको साफ करे। गांधीजी को मेरा संकोच निरा वहम लगा। पाखाना उठाना क्या कोई नीच काम है? महादेव भाई ने भी मजाक किया, परन्तु मेरे आग्रह पर मेहतर रख लिया गया।

आगा खां महल में जब उनका उपवास चलता था तो मैं गया। बड़े बेचैन थे। बोलने की शक्ति करीब करीब नहीं के बराबर थी। मैंने सोचा कि कुछ राजनीतिक बातें करूंगा पर आश्चर्य हुआ। पहुँचते ही हम सब का कुशल-मंगल, छोटे-छोटे बच्चों के बारे में सवाल और घर गृहस्थी की बातें। इसी में काफी समय लगा दिया। मैं उनको रोकता जाता था कि आपमें शक्ति नहीं है, मत बोलिये, पर उनको इसकी कोई परवाह नहीं थी।

इस तरह की उनकी आत्मीयता थी, जिसने हजारों को उनका दास बनाया। नेता बहुत देखे, संत भी बहुत देखे, मनुष्य भी देखे। पर एक ही मनुष्य में संत, नेता और मनुष्य की ऊंचे दर्जे की आत्मीयता मैंने कहीं और नहीं देखी। मैं गांधीजी का कायल हुआ तो उनकी आत्मीयता का। यह सबक है जो हर मनुष्य के सीखने लायक है। यह एक मिठास है जो कम लोगों में पाई जाती है।

❀ ❀ ❀ ❀

गांधीजी करीब पौने पांच महिने बाद इस मर्तबा हमारे घर में रहे। जैसा कि उनका नियम था, उनके साथ एक बड़ी बरात आती थी। नये-नये लोग आते थे और पुराने जाते थे। भीड़ बनी रहती थी। घर तो उन्हीं के सुपुर्द था। कितने महमान उनके ऐसे भी आते थे जो मुझे पसन्द नहीं थे। प्रार्थना सभा में बम गिरने के बाद बहुतों ने उन्हें बे-रोक-टोक भीड़ में घुस जाने से मना किया। सरदार वल्लभ भाई ने उनके लिए करीब ३० सैनिक पुलिस और १५–२० खुफिया बिड़ला हाउस में तैनात कर रक्खे थे जो भीड़ में इधर-उधर फिरते रहते थे। पर मैं जानता था इस तरह से उनकी रक्षा हो ही नहीं सकती थी। जो लोग आते थे उनकी तलाशी लेने का विचार पुलिस ने किया, मगर गांधीजी ने रोक दिया। हर सवाल का एक ही जवाब उनके पास था—मेरा रक्षक तो राम है।

❀ ❀ ❀ ❀

उपवास के बाद उनका हाजमा बिगड़ा। मैंने कहा कुछ दवा लीजिए। फिर वही उत्तर। मेरा वैद्य राम है। मेरी दवा राम है। कुछ अदरक, नींबू, घृतकुमारी का रस, नमक और हींग साथ मिला कर उनको देना निश्चित किया। पर वह भी कितने दिन। अन्त में तो राम ही उन्हें अपने मंदिर में ले गये।

उनके अंतिम उपवास ने उनके निकटस्थ लोगों में काफी चिन्ता पैदा की। उपवास के समय मैंने काफी बहस की। मैंने कहा: मेरा आपका ३२ वर्ष

का सम्पर्क है । आपके अनेक उपवासों में मैं आपके साथ रहा हूँ । मुझे लगता है कि आपका यह उपवास सही नहीं है । पर गांधीजी अटल थे । यह कहना भी गलत है कि गांधीजी आस-पास के लोगों से प्रभावित नहीं होते थे । बुद्धि द्वार उनका सदा खुला रहता था । वहस करने वाले को प्रोत्साहन देते थे और उसमें जो सार होता था उसे ले लेते थे, चाहे वह कितने ही छोटे व्यक्ति से क्यों न मिलता हो । वार-वार वहस करते मुझे लगा कि उनके उपवास टूटने के लिए काफी सामग्री पैदा हो गई है । मुझे बम्बई जाना था । जरूरी काम था । मैंने कहा: मैं बम्बई जाना चाहता हूँ । मुझे लगता है कि अब आपका उपवास टूटेगा । न टूटनेवाला हो तो मैं न जाऊं । मैंने यह प्रश्न जानबूझ कर उन्हें टटोलने के लिए किया । उन्होंने मजाक शुरू किया । कहा: जब तुम्हें लगता है कि उपवास का अन्त होगा तो फिर जाने में क्या रूकावट है । मैंने कहा: मुझे तो उपवास का अन्त लगता है, पर आपको लगता है या नहीं यह कहिये । उन्होंने मजाक जारी रखा और साफ उत्तर न देकर फंदे में फंसने से इन्कार किया । मैंने कहा: नचिकेता यम के घर पर भूखा रहा तो यम को क्लेश हुआ, क्योंकि ब्राह्मण घर में भूखा रहे तो पाप लगता है । आप यहां उपवास करते हैं तो मुझ पर पाप चढ़ता है, इसलिए इसका अन्त होना चाहिए । गांधीजी ने कहा: मैं ब्राह्मण कहां हूँ । पर सुशीला ने कहा: आप तो महा-ब्राह्मण हैं । इस पर वड़ा मजाक रहा । मैंने कहा- अच्छा आप यह आशीर्वाद दीजिये कि मैं शीघ्र से शीघ्र आपके उपवास टूटने की खबर बम्बई में सुनूं । फिर भी उनका मजाक तो जारी ही रहा । मैंने कहा: अच्छा यह वताइये कि आप जिन्दा रहना चाहते हैं या नहीं । वह वोले: हां यह कह सकता हूँ कि मैं जिन्दा रहना चाहता हूँ, वाकी तो मैं राम के हाथ में हूँ । उपवास तो समाप्त हुआ लेकिन राम ने उन्हें नहीं छोड़ा ।

❀ ❀ ❀ ❀

शुक्र को करीब ५। वजे गांधीजी को गोली लगी और उसी दम उनका देहान्त हो गया । मैं उस समय पिलानी था । करीब ६ वजे कालेज के छात्र दौड़ते हुए आए और उन्होंने रेडियो की खबर वताई कि किस तरह गांधीजी चल वसे । सन्नाटा छा गया ।

मैंने रात को ही वापस आने की ठानी, पर मालूम हुआ कि सुवह वायुयान से जाने से हम जल्दी दिल्ली पहुँच सकेंगे । सोचा, पर रात भर वेचेनी रही । स्वप्न आने लगे. मानों मैं दिल्ली पहुँच गया । पहुँचते ही वापू के कमरे में गया तो देखता हूँ जहां वापू लेटते थे मृतक-अवस्था में लेटे पड़े हैं । पास में

प्यारेलाल और सुशीला बैठे हैं। मैंने जाकर प्रणाम किया। मुझे देखते ही गांधीजी उठ बैठे। कहने लगे: अच्छा हुआ तुम आ गये। यह किसी नादान का काम नहीं है। यह तो गहरा पड्‌यन्त्र था। पर मैं तो प्रसन्नता के मारे अब नाचूंगा। क्योंकि मेरा काम तो अब समाप्त हो गया है। फिर कुछ इधर उधर की बातें करते रहे। फिर घड़ी निकाल कर कहने लगे: अब तो ११ बज गये हैं। अब तो तुम मुझे श्मशानघाट ले जाओगे, इसलिए लेट जाता हूँ। इतना कह कर फिर लेट गये।

बस इसके बाद मैंने बापू को चैतन्य रूप में नहीं देखा न उनकी बोली सुनी! यह तो सपना ही था, पर सपने में भी प्रत्यक्ष का सा अनुभव किया। दिल्ली पहुँचा तो बापू को पड़ा पाया। चेहरे पर उनकी कोई विकृति नहीं थी। वही प्रसन्न मुद्रा, वही क्षमा भाव और मुस्कान। पर अब तो वह देखने में भी नहीं आयेगी।

एक दीपक बुझा, पर हमारे लिये रोशनी छोड़ गया।

किसी भी महान राष्ट्र के लिए अपने बच्चों का दुरुपयोग करना संभव नहीं हो सकता।

७

बापूजी की अमर प्रेरणा

राधाकृष्ण बजाज

सन् १९२३ की बात है। गांधीजी ने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए दिल्ली में मौलाना मोहम्मद अली के मकान पर २१ दिन का उपवास शुरु किया हुआ था। मैं जमनालालजी और विनोबाजी के साथ दिल्ली पहुंचा था। गांधीजी के निजी सचिव कृष्णदास भाई अचानक बीमार पड़ गये और देवदास भाई को उनकी सेवा में लग जाना पड़ा। अतः गांधीजी की निजी सेवा का काम मुझे सौंपा गया। मुझे दिन रात उनकी शैय्या के पास रहना पड़ता था। गांधीजी उपवास के आखिरी दिनों में काफी अशक्त हो गये थे। अपने आप करवट भी नहीं बदल सकते थे। उन्हें सहारा देकर बिठाना पड़ता था। किन्तु ऐसी दशा में भी उन्होंने नित्य चरखा कातने का नियम भंग नहीं होने दिया। मैं उनके पास चरखा रख देता और वह आधा घण्टा बराबर चरखा चलाते। मुझे आश्चर्य होता कि शारीरिक अशक्तता की दशा में भी चरखा चलाने की शक्ति कैसे प्राप्त कर लेते थे। यह उनका संकल्प बल ही था कि वह नियमित चरखा कातने के व्रत का उपवास के दिनों में भी निर्वाह कर सके। उपवास के दिनों में मालवीयजी गांधीजी को श्रीमद्भागवत

ओर पूज्य विनोवाजी गीता सुनाया करते थे। राम नाम का जप तो चलता ही था। गांधीजी के नैतिक जीवन और आध्यात्मिक विचारों का मुझ पर गहरा असर पड़ा। इस प्रथम सम्पर्क के वाद गांधीजी से मेरा सम्वन्ध अधिकाधिक निकट होता गया।

जव गांधीजी वर्धा और सेवाग्राम में आकर रहने लगे, तो उनके निकट रहने और काम करने का अवसर मिला। सन् १९३४ में वर्धा के महिला आश्रम में गांधीजी ने सात दिन का उपवास किया था। हरिजन यात्रा के दौरान जव गांधीजी अजमेर गये थे, तो कुछ लोगों ने वावा लालनाथजी के साथ, जो विरोधी प्रदर्शन करने के लिए पहुंचे थे, मारपीट कर डाली थी। इस घटना के प्रायश्चित स्वरूप गांधीजी ने ७ दिन का उपवास किया था। इस उपवास के समय भी गांधीजी की देखभाल करने का काम मेरे जिम्मे आया। काकाजी जमनालालजी अपने कान के रोग के इलाज के लिए वम्वई चले गये। गांधीजी से मिलने वाले तो आते ही रहते थे। मैं ही उनके लिए समय निश्चित करता और मेरे संकेत पर मुलाकातें समाप्त हो जातीं। गांधीजी ने उन दिनों मेरा नाम जेलर रख छोड़ा था। मेरी राय लिए विना वड़े से वड़े आदमी को भी मिलने का समय नहीं देते थे। गांधीजी ने काकाजी को वचन दिया था कि वह मेरे अनुशासन का पूरा पालन करेंगे। उस वचन का उन्होंने पूरा पूरा पालन किया। गांधीजी ने मुझे यह प्रमाण-पत्र भी दिया कि मैंने अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन किया और जमनालालजी की अनुपस्थिति को महसूस नहीं होने दिया।

❀ ❀ ❀ ❀

जयपुर में प्रजा मण्डल को मान्यता दिलाने के लिए सत्याग्रह चला। काकाजी जमनालालजी उसके संचालक थे। जव वह और प्रजा मण्डल के दूसरे प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए तो मुझे सत्याग्रह का संचालक नियुक्त किया गया और उसका कार्यालय आगरा में स्थापित किया गया। गांधीजी सत्याग्रह में स्वयं दिलचस्पी ले रहे थे। उनकी वायसराय से भी वातचीत चल रही थी और श्री घनश्याम दास विड़ला भी समझौते के लिये मध्यस्थता कर रहे थे। किंतु जव सत्याग्रह स्थगित करने का प्रसंग आया तो गांधीजी ने उसके लिये मुझसे वातचीत की और मेरा पूरा समाधान होने के वाद ही सत्याग्रह वापस लेने की सलाह दी। गांधीजी ने मेरी भावनाओं का जो लिहाज रक्खा, उससे मैं वहुत प्रभावित हुआ। वह इसी तरह कार्यकर्त्ता के दिल को जीत लेते थे।

सन् १९४१ की वात है। काकाजी जमनालालजी जेल से छूट कर आये तो उनका स्वास्थ्य ठीक न था और वापूजी उन्हें दुवारा जेल भेजना नहीं चाहते थे। वापूजी हरिजन सेवा और गौ सेवा के कामों को अत्यधिक महत्व देते थे। उन्होंने सुझाया कि जमनालालजी गौ सेवा का काम करें। उन्होंने कहा कि कृषि, गौरक्षा और वाणिज्य, वैश्य का स्वाभाविक धर्म भी है। जमनालालजी ने गौ सेवा कार्य अपना लिया। उन्होंने यह चाहा कि मैं भी मुख्य रूप से गौ सेवा का काम करूं। मैं उस समय विनोवाजी की देखरेख में ग्राम सेवा मण्डल का काम करता था। वापूजी ने विनोवाजी से मुझे गौ सेवा के लिए मुक्त कर देने की वात की, किंतु वह सहमत नहीं हुए। वापूजी ने भी आग्रह नहीं किया। उनकी यह विशेषता थी कि वह अपना विचार किसी पर नहीं थोपते थे। किंतु ईश्वरीय योजना कुछ अलग ही थी। कुछ ही दिनों वाद काकाजी का देहांत हो गया। इसके वाद गौ सेवा का काम मुझे अंगीकार करना पड़ा और विनोवाजी ने भी इसके लिए अनुमति दे दी। आज सारे भारत में, और विशेषकर राजस्थान में, सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं द्वारा गौ सेवा का जो काम हो रहा है, उसके मूल में पूज्य वापूजी, विनोवा जी और जमनालालजी, इन तीनों महापुरुषों की प्रेरणा काम कर रही है।

❀ ❀ ❀ ❀

वापूजी के वलिदान के करीव एक माह पहले उनसे आखिरी भेंट हुई थी। यह तय हुआ था कि वर्धा के निकट गोपुरी में ४ फरवरी को गौ सेवा सम्मेलन वुलाया जाय। उसमें वह स्वयं भी उपस्थित होने वाले थे। वापूजी का एक विचार यह भी था कि रचनात्मक प्रवृत्तियों को समन्वित करने के लिये सभी रचनात्मक संस्थाओं का सम्मिलित संगठन वनाया जाए। गोपुरी सम्मेलन की सारी तैयारियां पूरी हो गई थीं। किंतु ईश्वर को और ही कुछ मंजूर था। वापूजी ३० जनवरी को हमसे सदा के लिए विछुड़ गए।

८

मेरे जीवन विकास में गांधीजी का योग

मूलचन्द अग्रवाल

मैं मध्य–भारत की सरकारी स्कूल में शिक्षक का काम कर रहा था। इसी अर्से में मैंने हिन्दी 'नव जीवन' पढना प्रारंभ किया। गांधीजी के लेखों को पढने से मेरे मन में सरकारी नौकरी से विरक्ति उत्पन्न हुई और राज–नीतिक क्षेत्र में काम करने की इच्छा जाग्रत हुई। मैं हरिभाऊजी उपाध्याय से मिला। उस समय वह राजस्थान में चरखा संघ का काम करते थे। मेरी इच्छा राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में काम करने की थी। किन्तु इसके लिये उपयुक्त क्षेत्र नजर न आया। हरिभाऊजी ने सुझाया कि मैं खादी का काम करते हुए भी शिक्षा का काम कर सकूंगा। अतः मैं राजकीय नौकरी से त्यागपत्र देकर सन् १६२६ के अन्त में राजस्थान चरखा संघ में चला आया और खादी का काम प्रारंभ कर दिया। जब मैंने अपने इस निश्चय की सूचना बापूजी को पत्र द्वारा दी तो उन्होंने मुझे लिखा कि खादी को अपना केन्द्र बना कर विद्यादान भी उसी के मारफत देने का मेरा निश्चय उन्हें बहुत ही प्रिय है।

कुछ महीने राजस्थान चरखा संघ के अमरसर और गोविन्दगढ उत्पति केन्द्रों पर काम करने के वाद मैंने गांधीजी को लिखा कि राजस्थान में खादी का बड़े पैमाने पर उत्पादन हो सकता है, अगर चरखा संघ पर्याप्त रकम और उत्पादित खादी की बिक्री की व्यवस्था कर सके। गांधीजी ने अपने १८-५-२७ के पत्र द्वारा मुझे इस वात के लिये धन्यवाद दिया कि मैंने खादी का काम प्रारंभ कर दिया है। उस समय गांधीजी बीमार थे और नन्दीदुर्ग (मैसूर) में थे। जमनालालजी उस समय चरखा संघ का काम देखते थे। गांधीजी ने लिखा कि राजस्थान में खादी कार्य की संभावनाओं के बारे में मेरा पत्र वह जमनालालजी को दे देंगे।

मैंने जनवरी सन् १९२८ के शुरू में गांधीजी को एक पत्र लिखा कि राजपूताना में जहां खादी का कार्य चल रहा है, वहां ग्राम संगठन की दृष्टि से शिक्षा प्रसार, सामाजिक कुरीति निवारण, अस्पृश्यता निवारण और ऊंच नीच के भावों को मिटाने का काम भी करना चाहते हैं। मैंने उसी पत्र में गांधीजी से यह भी पूछा था कि यदि इन कामों में राज्य की ओर से रुकावट डाली जाय तो कार्यकर्ताओं को क्या करना चाहिये। गांधीजी ने अपने ७ जनवरी १९२८ के पत्र में मुझे सूचित किया कि चरखा संघ में कार्य करने में उनकी दृष्टि से कोई हानि नहीं है। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की थी कि सामाजिक काम करने में देशी राज्य बाधा नहीं डालेंगे। किन्तु यदि डालें तो उस समय की परिस्थिति में उन सामाजिक कामों को छोड़ना पड़ सकता है।

राजस्थान चरखा संघ की ओर से रींगस में वस्त्र-स्वावलम्वन का केन्द्र स्थापित किया गया और मुझे उस केन्द्र का संचालक नियुक्त किया गया। इस केन्द्र के द्वारा हम लोगों से घर में सूत कात कर अपनी आवश्यकता के लायक कपड़ा बुनवाने को कहते थे। आस-पास के गांवों में पाठशालायें खोल कर उनमें कताई, पिंजाई की भी शिक्षा देते थे। रींगस के आसपास तीन-तीन कोस तक हमारा कार्य क्षेत्र था। एक वात मुझे चुभ रही थी। मैंने गांधीजी को लिखा कि यदि कोई व्यक्ति एक ऐसे व्यक्ति के अधीन काम करने को रख दिया जाय जिससे वह योग्यता, अनुभव, अवस्था और कार्य करने की शक्ति में किसी भी प्रकार कम न हो, तो उसे क्या करना चाहिये। इस वारे में गांधीजी ने मुझे लिखा कि जो दूसरों के अधीन काम करता है वह यदि सचमुच अपने वरिष्ठ अधिकारी से ज्यादा योग्य है, तो वरिष्ठ अधिकारी उसकी योग्यता को पहचान लेगा। गांधीजी ने सलाह दी कि अधीन व्यक्ति में पूर्ण नम्रता और धैर्य होना चाहिये।

❀ ❀ ❀ ❀

मैंने एक बार गांधीजी के सम्मुख अपनी एक दुविधा उपस्थित की और यह जानना चाहा कि शारीरिक श्रम में जबान और कलम के काम का भी समावेश हो सकता है अथवा नहीं। मैं यह मानता था कि लेख लिखने और भाषण देने से अधिक उपयोगी लोकसेवा हो सकती है। इस संबंध में गांधीजी ने मुझे यह उत्तर दिया था:—

"जबान और कलम के काम को शारीरिक श्रम न माना जाय, शारीरिक श्रम से हाथ-पांव की महनत अधिक अभिप्रेत है। लोग काश्तकारी न करें और भूखों मरें, तब दिमाग क्या करेगा? उस समय तो जो थोड़ी सी भी खेती करेगा वही अन्नदाता बनेगा। जब घर जलता है तब व्याख्यान क्या करेगा? उस समय तो पानी खींच कर आग बुझाना होगा। इसका मतलब यह नहीं कि दिमागी काम का उपयोग ही नहीं है। दिमागी काम भी उसी का सिद्ध होगा जो शारीरिक यज्ञ की महिमा जानता और करता है। दोनों साथ-साथ चलना चाहिये। मोटा सिद्धान्त यह है कि आजीविका शरीर-श्रम से पैदा करे और दिमाग केवल सेवा के लिये खर्च करें। आश्रम की स्थापना इसी हेतु से हुई है।"

❀ ❀ ❀ ❀

मैं जब-जब अपनी कठिनाइयां गांधीजी के सामने लिखता रहता था। मैंने उनसे पूछा कि क्रोध को कैसे कम करना चाहिये। इस पर गांधीजी ने मुझे सलाह दी कि क्रोध को मारने के लिये नित्य राम-नाम जपना चाहिये और क्रोध आवे ऐसे स्थान से हट जाना चाहिये।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं जयपुर रियासत के रींगस कस्बे में जब खादी कार्य कर रहा था तब सीकर ठिकाने के खुडी ग्राम में जाटों व राजपूतों में झगड़ा हो गया था। झगड़े का कारण यह था कि राजपूतों ने एक विवाह के अवसर पर एक जाट दूल्हे के घोडे पर सवार होने पर आपत्ति की थी। सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते मैं इस घटना की जांच के लिये घटनास्थल पर गया था। इस पर चिढ़ कर जयपुर रियासत की प्रशासनिक कौन्सिल ने ११-४-३५ को जयपुर राज्य से मुझे कुछ अन्य मित्रों के साथ निर्वासित कर दिया। मैंने इस बारे में पत्र लिखकर गांधीजी से मार्ग-दर्शन चाहा। उस समय गांधीजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन में भाग लेने इन्दौर आये हुए थे। उन्होंने मुझे सलाह दी थी कि फिलहाल निर्वासन आज्ञा को बर्दाश्त करना होगा। हां, रियासत को न्याय करने के लिये लिखने की सलाह भी उन्होंने दी थी। सेठ जमनालालजी बजाज ने भी रियासत के इन्स्पैक्टर जनरल पुलिस मिस्टर यंग से पत्र व्यवहार किया

था और अन्त में फरवरी सन् १९३६ में मेरे विषय में निर्वासन की आज्ञा रद्द करदी गई।

❀ ❀ ❀ ❀

मैंने अपनी कौटुम्बिक समस्या गांधीजी के सामने प्रस्तुत की थी। यह समस्या मुझ में तथा पत्नी के विचारों में साम्य नहीं होने के कारण उठ खड़ी हुयी थी। इस संबंध में गांधीजी ने मुझे लिखा: "तुम्हारा किस्सा करुण है, लेकिन उसीको धर्मवर्द्धक बना सकते हो। करुणा धर्म की पोषक है। धर्म की परीक्षा भी कठिन समय में ही हो सकती है। पत्नी जब पति की अनुगामिनी नहीं रहती है, तब सहधर्मिणी तो कहाँ रह सकती है। विधर्मिणी बनने का उसको अधिकार है, जैसा पति को है। लेकिन जब पत्नी विधर्मिणी बनती है, तब पति के सहयोग अथवा सहवास की आशा नहीं रख सकती। पति की तरफ से पोषण प्राप्त करने का उसे पूर्ण अधिकार है। जो पति अपनी पत्नी के प्रति निर्विकार रह सकता है और अन्य स्त्रियों के प्रति निर्विकार रहा है, और भविष्य में रह सकता है, उसको अपनी पत्नी का सहवास छोड़ने का ऐसे अवसर पर अधिकार है। इसमें रोष का स्थान नहीं है।"

❀ ❀ ❀ ❀

रींगस में हमने वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से एक सम्मेलन आयोजित किया था, उसकी सफलता के लिये गांधीजी ने लखनऊ से एक तार संदेश भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि हाथ-कताई से स्वराज्य मिल सकता है। इसी प्रकार रींगस में भी सन् १९३४ के आखिर में हम लोगों ने एक छोटा सा युवक सम्मेलन किया था। कलकत्ता के एक समाज सुधारक श्री वसन्त लाल मुरारका उस सम्मेलन के अध्यक्ष थे। सम्मेलन में जाति-पांति का कोई भेद-भाव नहीं रखा गया। सवर्ण लोगों ने इस सम्मेलन का बहिष्कार किया। जब गांधीजी का ध्यान इस बारे में मैंने आकर्षित किया तो उन्होंने सलाह दी कि बहिष्कार को मिटाने का एक इलाज है और वह यह कि बहिष्कार से दुःख न माना जाय।

सन् १९४१ में मेरे पुत्र चि: रचनात्कर का विवाह उज्जैन में हुआ। इस विवाह में पर्दा रहने वाला था और मेरी यह प्रतिज्ञा थी कि पर्दा वाले विवाह में सम्मिलित नहीं होऊंगा मेरे सामने धर्म-संकट था कि मैं अपने पुत्र के विवाह में शामिल होऊं या नहीं। अन्त में मैं इस विवाह में शामिल नहीं हुआ। ईश्वर ने मुझे अपनी प्रतिज्ञा पालन करने की शक्ति दी। बापू ने वर-वधू के लिये आशीर्वाद भेजा और मुझे प्रतिज्ञा-पालन के लिये धन्यवाद दिया।

मेरी पुत्री सावित्री का विवाह हुआ। वर-वधू दोनों ख़ादीधारी थे, और विवाह भी पर्दा तोड़ कर किया गया था। बापू ने वर-वधू के लिये अपने आशीर्वाद भेजे और आशा प्रकट की कि वे सेवाभावी रहेंगे।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरा छोटा लड़का प्रहलाद सन् १९४३ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में लेटर बक्स जलाने के अपराध में गिरफ्तार हुआ। उसे एक महीने की सख्त कैद और दो सौ रुपये जुर्माने की सजा हुई। मुकदमा काफ़ी समय तक चलता रहा, इसलिये उसे जमानत पर छुड़ा लिया और स्कूल में भर्ती करा दिया। उसकी पढाई में हर्ज नहीं होने के लिये जुर्माने की राशि अदालत में जमा करा दी गई। मैंने गांधीजी को पत्र लिख कर पूछा कि यदि जुर्माना जमा कराने में मेरी गलती हुई हो तो मुझे क्या प्रायश्चित करना चाहिये। इस पर गांधीजी ने मुझे जुहू (बम्बई) से दि: २३-५-४४ को लिखा कि इस मामले में जो कुछ हुआ उसमें वह कुछ शिकायत का क़ारण नहीं पाते। प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार ही चल सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९२७ में बापूजी गुरुकुल कांगडी के जलसे में गये थे। मैं उन्हीं के केम्प में ठहरा था। प्रात: करीब ५ बजे एक सनातनी साधु उनसे गौ रक्षा के विषय में बात करने के लिये आये। गांधीजी ने अपना दृष्टिकोण समझाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु साधु ने अपनी जिद् न छोड़ी। अन्त में गांधीजी को कहना ही पड़ा: "समझ लो कि मैं मूढ हूं।"

❀ ❀ ❀ ❀

नये मिलने वाले व्यक्ति को गांधीजी एक ही नजर में देख कर भांप लेते थे। जनवरी सन् १९२८ में जब मैं साबरमती आश्रम देखने गया, तब श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने मेरा परिचय करवाया। बापू ने मुझे ऊपर से नीचे तक एक नजर से देखा। मेरी धोती गन्दी थी। उन्होंने तो मुझे एक शब्द भी नहीं कहा परन्तु मैं सहम गया।

दूसरे दिन गांधीजी के साथ घूमने जाने की बात तय हुई। वह प्रार्थना के बाद करीब ५॥ बजे ही घूमने जाया करते थे। परन्तु उस दिन सुबह मेरी नींद नहीं खुली। ६ बजे खुली। साबरमती जेल की तरफ से वह घूम कर आ रहे थे। मैं भी जल्दी से उधर गया। मैंने प्रणाम किया। वह बोले: "मैं तो

तुम्हारी राह ही देखता रहा। भारतवर्ष में जल्दी ब्रह्म-मुहूर्त में उठना चाहिये। यदि जल्दी उठने की आदत नहीं है तो खादी कार्य कैसे करोगे ?" मैं बहुत शरमाया और तुरन्त अहमदाबाद जाकर अलार्म टाइम-पीस ले आया और साल भर तक सुबह जल्दी उठने की साधना करता रहा।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् २६ से अन्त तक मेरा गांधीजी से सम्पर्क रहा। मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ कि मेरे जैसे एक साधारण कार्यकर्ता को गांधीजी ने अपना लिया। मैं जब-तब उनकी व्यस्तता के बावजूद अपने कार्य के सम्बन्ध में तथा शंकाओं के निवारण के लिये उनसे पत्र-व्यवहार करके परेशान करता रहता था। किन्तु वह मेरे प्रायः सभी पत्रों का उत्तर देते थे और जरूरी होने पर मेरे द्वारा उठाये प्रश्नों पर अपने पत्र 'नवजीवन' और 'हरिजन सेवक' में चर्चा भी करते थे। गांधीजी के विचारों का मेरे सारे परिवार पर असर पड़ा। मैं और मेरी पत्नी स्वतन्त्रता आन्दोलन में जेल भी गये। खादी और रचनात्मक व अन्य कार्यों में मेरी रुचि गांधीजी के कारण बराबर बनी रही और उनकी प्रेरणा से मैं अपने जीवन का एक बड़ा भाग सार्वजनिक सेवा में लगा सका। मेरे जीवन विकास में गांधीजी जैसे पुरुष का सबसे बड़ा योग रहा है।

सिद्धांत-रक्षा की खातिर अपने प्रियतमों की भी नाराजगी बरदाश्त करने का साहस हममें होना चाहिए।

मेरे जीवन का ध्रुवतारा —गांधीजी

लादूराम जोशी

जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद देश में गहरा असंतोष पैदा हो गया था और कांग्रेस की बागडोर गांधीजी ने अपने हाथों में सम्हाल ली। उन्होंने देश के सामने कांग्रेस के द्वारा असहयोग का कार्यक्रम पेश किया। इसमें सरकारी शिक्षण संस्थाओं, कौंसिलों, अदालतों, नशीले पदार्थों और विदेशी वस्त्रों के पंच-विध बहिष्कार की बात कही गयी थी। गांधीजी इसी असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में कलकत्ता आये तो उनके सुनने के लिए एक विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा की अध्यक्षता 'स्वतन्त्र' के सम्पादक श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने की थी। मैं उन दिनों कलकत्ता में ही रहता था। मैं उस सभा में शामिल हुआ और पहली बार यहीं गांधीजी के दर्शन किये। गांधीजी के विचारों और विदेशी वस्त्रों के परित्याग और सरकारी शिक्षण संस्थाओं में नहीं पढ़ने का संकल्प लिया। यह सन् १९२० की बात है।

मेरे जीवन पर गांधीजी का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि मेरे जीवन की दिशा ही वदल गई। मैंने विदेशी और मिल-वस्त्रों की होली जलादी और खादी के वस्त्र धारण कर लिए। मैं उस समय विशुद्धानन्द विद्यालय में काव्यतीर्थ परीक्षा की तैयारी कर रहा था। मेरे जीवन में जो परिवर्तन आया, उसे मेरे कई साथियों और अध्यापकों ने मेरा पागलपन वताया, किन्तु मेरे मन पर महात्माजी का इतना गहरा प्रभाव था कि मैंने सव आलोचनाओं को सुना-अनसुना कर दिया। उनका साहित्य और साप्ताहिक हिन्दी 'नव जीवन' नियमित रूप से पढ़ने लगा। उस समय मेरी उम्र पच्चीस वर्ष की रही होगी। मनमें देशभक्ति के जो घुंधले विचार थे, वे परिपक्व हो गये।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे साथ मेरे भाई घासीराम भी थे। हम दोनों भाइयों पर महात्मा जी के विचारों का असर पड़ा था। दोनों ही महात्माजी के आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे। विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देते तथा मजदूरों में प्रचार कार्य करते। दुःसंयोग से मैं वीमार पड़ गया और विवश होकर कलकत्ता से शेखावाटी आजाना पड़ा। मेरे भाई घासीराम को असहयोग आन्दोलन में दो-तीन वार कलकत्ता में जेल-यात्रा करनी पड़ी। उस समय के मेरे एक साथी जगदम्वा प्रसाद हितैषी थे, जो एक अच्छे कवि थे और एक हिन्दी मासिक पत्र के सम्पादक भी थे। उन्हें राजद्रोहात्मक भाषण के सिलसिले में एक वर्ष का कठोर कारावास मिला था।

❀ ❀ ❀ ❀

महात्माजी के प्रभाव से जव सेठ जमनालालजी ने वर्धा का प्रसिद्ध लक्ष्मीनारायण मन्दिर हरिजनों के लिए खोल दिया तो उन्हे कोई उपयुक्त पुजारी नहीं मिला। पुराने पुजारी ने विरादरी और समाज के डर से पूजा छोड़ दी। मेरा सेठजी से परिचय हो गया था। मैं उनके जन्मस्थान काशी-का वास के पड़ोसी गांव में रहता था। मेरे सामाजिक विचारों का उन पर असर पड़ा। मेरे प्रति उनका अत्यधिक स्नेह हो गया था। मैंने विधवा-विवाह किया था। उस समय रूढ़ि-ग्रस्त समाज में यह वड़े साहस का काम था। सेठजी को इससे वड़ी खुशी हुई थी। मुझे सेठजी ने लक्ष्मीनारायण मन्दिर की पूजा के लिए वुलाया था, परन्तु मैं अपना समय राजस्थान के सार्वजनिक कार्यों में लगाने लगा था। मैंने अपने भाई घासीराम को इस कार्य के लिए

वर्धा भेजा, परन्तु सेठजी के आग्रह पर उसे वहां जमाने के लिए एक माह मुझे वर्धा जाकर रहने का अवसर मिला।

इसके बाद सन् १९३४ में पूज्य बापूजी से प्रत्यक्ष परिचय और साक्षात्कार का अवसर आया। सेठ जमनालालजी ने जब बापूजी से मेरा परिचय कराया और मेरी प्रशंसा में कुछ कहा तो मुझे बहुत ही संकोच का अनुभव हुआ। बापूजी ने मुझे समय दिया और मैं सेठजी के बंगले से मगनवाड़ी गया। किन्तु उस दिन उन्होंने श्री बालुंजकर को भी समय दे रखा था और उन्हें किसी जरूरी कार्य से अन्यत्र जाना था, अतः बापूजी ने मेरी सहमति से मेरे लिए अलग दिन का समय नियत कर दिया। उस समय सड़क पर एक मरा हुआ सांप पड़ा था। बापूजी ने बालुंजकरजी को आदेश दिया कि मरे हुए सांप को ले जायें और उसकी चमड़ी उतार कर पकाये तथा शेष का खाद के लिए उपयोग करें। मैंने देखा कि बापू किसी भी वस्तु को बेकार नहीं जाने देते थे दूसरे दिन यथा समय बापू के पास पहुंचा। मगनवाड़ी की छत पर टहलते हुए हम बात करते रहे। बापूजी ने मुझे बताया कि बिना रचनात्मक कार्य के राजनीतिक काम अधूरा है। रचनात्मक कार्य ही राष्ट्र निर्माण की रीढ़ की हड्डी है। बापू का कहना था कि सरकार से सीधी लड़ाई हमेशा नहीं चलती और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को शांति के समय अपनी शक्ति रचनात्मक कार्य में लगानी चाहिए। मैं उस समय चर्खा संघ में काम करने लगा था और गांधी सेवा संघ का सदस्य बन चुका था। गांधीजी की बात मेरे गले में उतरती जाती थी और मैं अपने को बहुत ही संतुष्ट अनुभव कर रहा था। उस दिन बातचीत के समय मीरा बहन बीच में आ खड़ी हुई और कहने लगी कि मेरी घोड़ी को छोटेलालजी जैन की मधु-मक्खियां बहुत तंग करती हैं। छोटेलाल जैन ने क्रांतिकारी हलचल में भाग लिया था, किन्तु गांधीजी के आश्रम में आ गये थे और तेल घानी तथा मधुमक्खी पालन के कार्य में लग गये थे। बापू ने मीरा बहिन को कुछ समय बाद बात करने को कहा, कारण वह उस समय मेरे से बात कर रहे थे।

❀ ❀ ❀ ❀

बापूजी हरिजन आंदोलन के दिनों में अपने देश-व्यापी दौरे के सिलसिले में अजमेर आये। उस समय मैं जिला कांग्रेस कमेटी का मन्त्री था। उस समय स्वामी लालनाथ विरोधी-प्रदर्शन करने के लिए आये थे। उन्हें किसी स्वयंसेवक द्वारा चोट पहुंचाने की घटना से गांधीजी की आत्मा को बड़ी ठेस लगी थी। विरोधी के प्रति बापू के कोमल

और सहानुभूति के भाव देखकर उनकी उदारता और महानता का अनुभव हुआ। अपने अजमेर प्रवास में बापू श्री अर्जुनलाल सेठी से भी मिलने गये। सेठीजी बापू के कट्टर आलोचक थे। बापूजी को देखकर सेठजी का सारा विरोध काफूर हो गया। सेठीजी और बापू की इस भेंट का स्मरण करके आज भी आत्मविभोर हो जाता हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं सन् १९२० से १९४७ तक गांधीजी के नेतृत्व में लड़े देश के स्वतन्त्रता संग्राम में जुटा रहा। उसके दौरान अनेक बार जेल जाना पड़ा और तरह-तरह की मुसीबतें उठानी पड़ी। किन्तु गांधीजी के प्रति आस्था ने मन को कभी विचलित न होने दिया। उन्होंने गरीबों की सेवा का मन्त्र दिया था, वह जीवन का अभिन्न अंग बन गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद में सत्ता की छीना-झपटी का दौर आया, किन्तु बापू की प्रेरणा ने मुझे उससे निर्लिप्त रहने की शक्ति दी और जीवन के शेष क्षण निष्काम सेवा में व्यतीत हो रहें हैं। बापू का जीवन मेरे लिए ध्रुव तारा बन गया है।

मैं यह उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता कि मेरे परिवार के अनेक सदस्य पचास-साठ वर्ष की अवस्था में इस लोक से प्रयाण कर गये, किन्तु मैं सत्तर वर्ष की सीमा रेखा पार कर चुका हूँ और उत्साहपूर्वक सार्वजनिक कार्यों में भाग ले रहा हुँ। बापू से मैंने नियमित जीवन का पाठ पढ़ा और खान-पान, रहन-सहन में संयम रखा, उसी से उझे दीर्घायुष्य प्राप्त हुआ और मैं आज भी समाज की यत्किंचित सेवा कर पा रहा हूँ।

हम शब्दों द्वारा अपनी बात कहें, इससे कहीं अच्छा है कि हमारा आचरण हमारी बात कहे।

१०

मेवाड़ प्रजा मंडल और गांधीजी

भूरेलाल वया

सन् १९३७ के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में पास हुए प्रस्ताव की प्रतिध्वनि मेवाड़ में प्रजामंडल की स्थापना के रूप में सुनाई दी । इससे पूर्व विजोलियां का किसान सत्याग्रह, भोमट का भील आन्दोलन और १९३२ में उदयपुर के नागरिकों द्वारा मेवाड़ राज्य की ओर से लगाए गए नये करों के विरुद्ध होने वाले आन्दोलनों के द्वारा राजाशाही से मुक्ति पाने की भूमिका तैयार हो चुकी थी। किन्तु अंग्रेजी राज्य से संरक्षित राजा लोग अपनी छत्र-छाया में उत्तरदायी शासन की मांग भी सुनने को तैयार नहीं थे । यही कारण है कि जब सन् १९३८ में मेवाड़ के चन्द देशभक्तों ने राजधानी उदयपुर के मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना की विधिवत घोषणा की तो राजतंत्र हिल उठा, और उसने तत्काल प्रजामंडल प्रर रोक लगा दी। जो लोग सर पर कफन बांध कर निकले थे वे इससे कब दबने वाले थे । आपसी मन्त्रणा के उपरान्त निश्चय हुआ कि प्रजामंडल कार्यालय अजमेर ले जाया जाय, और निषेध-आज्ञा को हटाने के लिये आवश्यक हो तो सत्याग्रह भी किया जाय ।

जब वार्ता और समाधान के सभी रास्ते बन्द हो गये तब अजमेर में प्रजामंडल की जनरल कमेटी की बैठक बुलाई गई, जिसमें सर्वानुमति से प्रजामंडल पर लगे हुए प्रतिबंध को तोड़ने के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का निश्चय हुआ। आन्दोलन आरंभ करने से पूर्व गांधीजी का आर्शीवाद प्राप्त करने की जिम्मेदारी मुझ पर डाली गई।

इन्हीं दिनों दिल्ली में अ. भा. कांग्रेस की बैठक हो रही थी। उसके लिए महात्माजी भी दिल्ली पधारे हुए थे। मैं अजमेर से दिल्ली हरिजन वस्ती किंग्स्वे कैम्प पहुंचा जहां बापू ठहरे हुए थे। गांधीजी लेटे हुए थे और पू० कस्तूरबा पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी लगा रही थी। मुझे अपनी बात कहने की आज्ञा हुई। सारी बाते सुनने के बाद बापूजी ने मुस्कराते हुए मेवाड़ प्रजामंडल के प्रस्ताव की सराहना की और आन्दोलन की सफलता के लिए आर्शीवाद प्रदान किया। उस दिन चर्खा द्वादशी अर्थात गांधीजी का देशी तिथि के अनुसार जन्म दिन था और वह बहुत प्रसन्न चित थे। बापू के आर्शीवाद के साथ सत्याग्रह प्रारंभ होने की खबर पहुंचते ही सारी मेवाड़ में उमंग की लहर दौड़ गई।

देखते-देखते सविनय अवज्ञा आन्दोलन सारे मेवाड़ में फैल गया और झुण्ड के झुण्ड महिला और पुरुष सत्याग्रहियों को जेलों और एकान्त किलों में बन्द कर दिया गया। आन्दोलन चलता रहा। किन्तु राज्य प्रतिबंध हटाने की बात सुनने को तैयार नहीं था। मुझे जब बीमारी की हालत में छोड़ा गया तो कुछ स्वास्थ्य लाभ करते ही मैंने चर्खा मंदिर की स्थापना की। इससे शहरी लोगों की चेतना जगी। सरकारी तन्त्र चौंका और निगरानी करने लगा। कुछ समय बाद जब मेवाड़ प्रजामंडल के प्रधान मंत्री और नेता श्री माणिक्य लाल वर्मा छूटे तब भी प्रजामंडल पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था। उन्हें महसूस हुआ कि चरखे आदि की रचनात्मक प्रवृतियों के कारण लोगों का ध्यान राजनीति से हट जावगा। यह प्रश्न जनरल कमेटी के सामने आया। उसमें काफी चर्चा होने के बाद निर्णय हुआ कि इस बारे में गांधीजी का मार्ग-दर्शन प्राप्त किया जाएं। तदनुसार वर्माजी और मैं सेवाग्राम वर्धा पहुंचे, सारी स्थिति बापू के सामने रखी। बापू ने दृढ़ता पूर्वक रचनात्मक कार्य से राजनीति को क्षति पहुंचने के बजाय बल मिलने के पक्ष में फैसला दिया, और विश्वास दिलाया कि वह मेवाड़ के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री राघवाचारी को प्रजामंडल पर लगे हुए प्रतिबन्ध को हटाने के लिए लिखेंगे। हमारे लौट जाने के समय कुछ समय बाद प्रजामंडल से प्रतिबन्ध हटा दिया गया।

सन् १९४१ के प्रारंभ में मेवाड़ प्रजामंडल का प्रथम अधिवेशन उदयपुर में करने का निश्चय हुआ। मैं इस सिलसिले में किसी उपयुक्त नेता को उदयपुर लाने की दृष्टि से सेवाग्राम गया और बापूजी की सहायता मांगी। बापू ने आचार्य कृपलानी को उदयपुर जाने का निर्देश दिया। तद्नुसार वह और उनकी धर्म पत्नी श्रीमती सुचेताजी उदयपुर आए और प्रजामंडल का अधिवेशन उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ।

इसके बाद हम लोग प्रजामंडल के संगठन में लग गये। जब १९४२ में गांधीजी के नेतृत्व में देश ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द किया तो मेवाड़ प्रजामंडल और मेवाड़ की जनता भी पीछे नहीं रहे। इस तरह ऐसे अनेक प्रसंग आये जब समय-समय पर बापू का मार्ग-दर्शन मिलता रहा।

मैं 'नवजीवन' में गांधीजी के विचार पढ़ता रहता था और उनकी मेरे मानस पर अमिट छाप पड़ी। बापू का प्रथम साक्षात्कार मुझे यरवदा जेल में सन् १९३२ में हुआ उनके निर्देश पर जेल से रिहा होने के बाद मैं सन् १९१४ से १९३८ तक वर्धा में रहा। इस अर्से में बापू की हमारे सारे परिवार पर ही कृपा-दृष्टि रही। मेरे बड़े पुत्र चि: महेन्द्र को वह अपना 'पुराना दोस्त' कह कर पुकारते थे। इस परिचय के कारण प्रजामंडल के बारे में मार्ग-दर्शन प्राप्त करने में मुझे बड़ी सहायता मिली।

हम रोज के व्यवहार को शुद्धतम रखें तो सच्चे सेवक बनने की आशा रख सकते हैं।

११

अजमेर के साम्प्रदायिक उपद्रव और गांधीजी

बालकृष्ण कौल

अगस्त १६४७ में देश स्वतन्त्र हुआ, किन्तु उसके साथ ही देश का विभाजन भी हो गया। आशा यह की गई थी कि भारत और पाकिस्तान दोनों स्वतन्त्र राष्ट्रों के भीतर अल्प-संख्यक, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, सुख और शान्तिपूर्वक रह सकेंगे। किन्तु यह आशा पूरी नहीं हुई। पाकिस्तान और भारत दोनों जगह साम्प्रदायिक उपद्रवों की आग भड़क उठी। अल्प-संख्यकों का जानमाल अरक्षित हो गया। एक देश में होने वाली घटनाओं की प्रतिक्रिया दूसरे देश में होने लगी।

अखिल भारतीय कांग्रेस ने अपनी परम्परागत रीति-नीति के अनुसार इस निश्चय को दोहराया कि पाकिस्तान में मजहब और जातीयता के आधार पर कुछ भी क्यों न हो, भारत में मुसलमानों को बराबरी का नागरिक माना जाएगा और उनके साथ किसी प्रकार की ज्यादती नहीं की जाएगी। इसके

बावजूद देश के कुछ भागों में साम्प्रदायिक अशान्ति और उपद्रव होने लगे और इनसे अजमेर-मेरवाड़ा भी अछूता नहीं रहा। मारकाट, लूट-पाट और आगजनी की घटनायें होने लगीं। अल्पसंख्यक अपने को अरक्षित समझने लगे। एक कांग्रेसी के नाते हमारे लिए यह स्थिति कष्टदायक और असह्य हो गई। दुःख की बात यह थी कि कहीं-कहीं भारतीय सेना की निगाहों के नीचे अल्पसंख्यकों को सताया जा रहा था।

गांधीजी की मृत्यु के कुछ ही दिन पहले, जनवरी १६४८ में, मैं और मुकुट बिहारीलाल भार्गव अजमेर से दिल्ली गांधीजी से मिलने आये। हम अगले दिन सवेरे बिड़ला हाउस में गांधीजी से मिले और अजमेर की सारी स्थिति उनके सामने स्पष्ट की। गांधीजी को यह जानकर बड़ी वेदना हुई कि अजमेर-मेरवाड़ा में मुसलमान सताये और उत्पीड़ित किये जा रहे हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता और इन्सानी भाईचारे का उन्होंने जीवन भर उपदेश दिया था और हिंसा तथा जातीय विद्वेष का निषेध किया था। इसलिए उन्हें दुःख होना स्वाभाविक था। गांधीजी ने हमें सरदार पटेल और जवाहरलाल नेहरू से मिलने का परामर्श दिया। दोनों उस समय दिल्ली से बाहर गये हुए थे। ज्योंही वे लौटे, गांधीजी ने उन्हें बुलाकर अजमेर के घटनाक्रम से परिचित किया। हम भी सरदार पटेल और जवाहरलाल जी से मिले। इसके बाद एक बार फिर गांधीजी से मिलना हुआ। गांधीजी ने हमें अजमेर लौट जाने और शान्ति एवं सद्भाव बनाये रखने की कोशिश करते रहने का परामर्श दिया। यह संतोष का विषय है कि अजमेर में शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो गई।

हमने देखा कि गांधीजी कठिन से कठिन प्रसंगों पर भी उत्तेजित नहीं होते थे, बल्कि अपना संतुलन बनाये रखते थे। कर्त्तव्य के प्रति वह निरन्तर जागरूक रहते थे और अपने संगी-साथियों को भी कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा देते रहते थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर उनकी गहरी आस्था थी और उसके लिए उन्होंने अपने जीवन की भी बाजी लगा दी थी। उनका बलिदान हिन्दू-मुस्लिम एकता की वेदी पर ही हुआ और वह मर कर शान्ति और सद्भाव को मूर्त रूप दे गये।

१२

बापू का मेरे जीवन पर असर

कृष्ण गोपाल गर्ग

लगभग ५० वर्ष पूर्व की बात है तब जलियांवाला हत्याकांड के फल-स्वरूप देश में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध असंतोष की आग प्रज्वलित हुई। कांग्रेस की गतिविधियों में नया मोड़ आया और कांग्रेसी नेताओं ने जन-सम्पर्क का श्रीगणेश किया और जन-साधारण तक स्वराज्य का संदेश पहुँचाना शुरू किया। इसी अभियान में पंजाब के प्रसिद्ध नेता पं० नेकीराम शर्मा ने अजमेर के नागरिकों की एक विशाल सभा में जलियांवाला बाग की दर्दनाक कहानी सुनाई और जनता को कांग्रेस में शामिल होने का आह्वान किया। इसी सभा में गांधीजी के नेतृत्व और उनके संदेश की चर्चा भी हुई। पंडितजी के भाषण का और गांधीजी के नेतृत्व का मेरे पर गहरा असर पड़ा और मैं १५ वर्ष की उम्र में ही कांग्रेस का सदस्य बन गया, और उसके काम में दिलचस्पी लेने लगा।

मैंने गांधीजी का साप्ताहिक पत्र 'यंग इन्डिया' नियमित पढ़ना शुरू किया और उनके लेखों से प्रभावित होता गया। सन् १६२१ के असहयोग

आन्दोलन के सिलसिले में अजमेर में शराब की दुकानों पर धरना दिया जाने लगा। मैं भी कभी-कभी पुरानी मंडी और ठठेरों के चौक में स्थित शराब की दुकानों के धरनों में शामिल होने लगा। फलस्वरूप दो-एक बार पिटाई हुई और एक बार पकड़ कर कोतवाली तक ले जाया गया। पर तुरन्त छोड़ दिया गया। इसी वर्ष स्वर्गीय मणिभाई कोठारी की अध्यक्षता में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन के लिये प्रतिनिधि चुन लिया गया। अधिवेशन में शरीक होने के लिये रात्रि को जब घर के सब लोग सो गये तब मैं चुपचाप स्टेशन आकर अहमदाबाद के लिये रवाना हो गया। उन दिनों कांग्रेस और उसके नेताओं, विशेषकर गांधीजी के प्रति जनता में बड़ी श्रद्धा जमने लगी थी। पिताजी ने मुझे आन्दोलन से दूर रखने के लिये राजकीय छात्रावास में भर्ती करवा दिया। पर मैं वहां से गायब होकर सभाओं में शरीक होता रहता। विक्टोरिया अस्पताल के नामकरण के संबंध में अजमेर म्युनिसिपल कमेटी की ओर से तत्कालीन ट्रेवर टाउन हाल (वर्तमान गांधी भवन) में एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई। उस पर श्री चांदकरण शारदा के नेतृत्व में कांग्रेस ने कब्जा कर लिया और राज-भक्त लोग तथा म्युनिसिपल सदस्यगण अपने उद्देश्य में असफल रहे। गवर्नमेन्ट हाई स्कूल के मुख्याध्यापक श्री हैरिस भी उक्त सभा में म्युनिसिपल कमिश्नर होने के नाते आये थे। वह मुझे वहां देखते ही क्रुद्ध होकर छात्रावास में गये और हाजरी ली। सभा की समाप्ति के बाद मेरे वहां पहुँचने पर मेरी खूब पिटाई हुई और रात्रि को ही छात्रावास से निकाल दिया गया। इस पर लड़के लोग तो बहुत बिगड़े, पर मुझे सभाओं में शामिल होने में और भी सुविधा हो गई। उन दिनों खिलाफत आन्दोलन भी जोरों पर था और अजमेर हिन्दू-मुसलिम एकता का गढ़ बन गया था। कांग्रेस की सभाओं में हिन्दू-मुसलमान दूध और पानी की तरह घुल मिल कर हजारों की संख्या में शामिल होते थे।

समाज-सुधार में दिलचस्पी

असहयोग आन्दोलन के साथ ही मेरी स्कूली शिक्षा का सिलसिला समाप्त हो गया। पढ़ने में रुचि न होने के कारण सन् १९२३ में मुझे रेल्वे कारखाने में नौकरी दिला दी गई। 'यंग इन्डिया' एवं 'नवजीवन' में बाल-विवाह, विधवा-विवाह एवं अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी बापू के उपदेशों का भी मेरे युवा हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। पं० जियालाल के नेतृत्व में मैं उन प्रीति-भोजों में उत्साह से भाग लेने लगा जिनमें अछूत कहलाने वाले

वन्धु भी शामिल होते थे। वाल-विवाहों में शरीक होना वन्द कर दिया। विधवा-विवाह का समर्थक वन गया। सन् १९२६ में दिल्ली में आयोजित मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के अधिवेशन के जमनालालजी वजाज, ध्यक्ष चुने गये। उस समय तक महासभा में विधवा-विवाह की चर्चा तक नहीं हो सकती थी। समाज में वाल-विवाहों की दयनीय अवस्था को देख कर मेरे मन में प्रेरणा हुई कि महासभा में वाल-विधवाओं के विवाह को प्रोत्साहन देने के लिये प्रस्ताव रखा जाय। मैंने उक्त प्रस्ताव का मस्विदा वापू के पास उनकी सम्मति एवं आशीर्वाद के लिये भेजा। वापू को प्रस्ताव अच्छा लगा। अतएव मैंने महासभा में वह प्रस्ताव पेश कर दिया। विषय निर्वाचिनी समिति में उसका डट कर विरोध हुआ। यह जानते हुए भी कि प्रस्ताव का जवरदस्त विरोध है, मैंने महासभा के खुले अधिवेशन में उसे पेश करने की जिद् की। पर अन्त में भाईजी के समझाने-बुझाने पर प्रस्ताव वापस ले लिया।

कुछ अर्से वाद दीवान वहादुर हरविलास शारदा द्वारा पेश किया गया वाल-विवाह निषेध कानून केन्द्रीय धारा-सभा ने स्वीकार कर लिया। उस कानून के तहत मुकदमे सरकार नहीं चला सकती थी। अतएव मैंने विजिलेन्स सोसाइटी की स्थापना की, और उसके मंत्री की हैसियत से वाल-विवाह करने वालों के विरुद्ध मुकद्दमे चलाना शुरू किया।

अस्पृश्यता एवं वाल-विवाह विरोधी मेरी गतिविधियों के कारण अग्रवाल समाज ने मेरा जाति-वहिष्कार कर दिया और घरवालों के विरोध के कारण मैं परिवार से अलग रहने लगा। मैंने अपने छोटे भाइयों के विवाह का भी उनकी छोटी उम्र के कारण वहिष्कार किया और मेरे पिताजी को मेरे द्वारा मुकद्दमा चलाये जाने का भय होने के कारण विवाह किशनगढ़ के देशी राज्य में जाकर करना पड़ा। कारण देशी राज्य में शारदा कानून लागू नहीं था।

स्वतंत्रता-आन्दोलन में कूद पड़ा

सन् १९२९ में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। मैं भी प्रतिनिधि होकर उसमें गया था। उन्हीं दिनों सरदार भगतसिंह और उनके दो साथियों को फांसी दी गई थी। मेरा हृदय भी मैदान में कूदने को तड़प रहा था। सन् १९३० में नमक सत्याग्रह शुरू हुआ। मैं अपने

आपको नहीं रोक सका और रेलवे की नौकरी को लात मार कर आन्दोलन में कूद गया। फलस्वरूप मुझे दो वर्ष कठोर कारावास की सजा मिली।

वापू ने हरिजन आन्दोलन चलाया तो उसमें भी मैं पूर्ण उत्साह से भाग लेने लगा और कई वर्ष हरिजन सेवक संघ की अजमेर शाखा का मंत्री रहा। अस्पृश्यता निवारण के कार्यक्रम में यह भी अपेक्षा की गई थी कि सवर्ण अपने घरेलू काम-काज के लिये हरिजनों को नौकर रखें। मैंने भी एक हरिजन भाई को अपने घर रखा। परिणामस्वरूप मेरे पिताजी ने मृत्यु पर्यन्त मेरे घर पर कभी जलपान नहीं किया।

लालनाथ की घटना

सन् १९३७ में वापू हरिजन आन्दोलन के सिलसिले में अजमेर आये। मैं स्वागत मंत्री चुना गया। वापू के इस प्रवास के समय उनके निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला। वापू के भाषण के लिए आनासागर के तट पर वारहदरी के मैदान में सार्वजनिक सभा की व्यवस्था की गई। अस्पृश्यता निवारण के विरुद्ध लालनाथजी भाषण देने वाले थे। वापू नें उन्हें सभा-स्थल पर सुरक्षित पहुँचाने के लिये व्यवस्थापकों को आदेश दिया था। पर रास्ते में उनके साथ मारपीट हो गई। मंच पर पहुँच कर उन्होंने वापू को अपनी चोटें वतलाई तो वापू व्यवस्थापकों से वहुत क्रुद्ध हो गये, सभा में भाषण देनें से ही इन्कार कर दिया और प्रवन्धकों एवं झगड़े से सम्वन्धित लोगों की कड़ी निन्दा की। निवास पर पहुँचने पर हम लोगों को लालनाथजी से क्षमा-याचना के लिए भेजा। वहां हमारा वड़ा अपमान किया गया, पर हम लालनाथजी के सामने गिड़गिड़ा कर क्षमा-याचना करते रहे। विरोधी के प्रति गांधीजी की सहिष्णुता और उदारता का यह अद्वितीय उदाहरण था। वापू इस घटना से इतने दुःखी हुए कि उन्होंने प्रायश्चित स्वरूप ७ दिन का उपवास भी किया।

वापू की अद्भुत स्मरण-शक्ति का नमूना तव देखने को मिला, जव हरिभाऊजी वम्वई में 'जानकी कुटीर' जुहू पर वापू को मेरा परिचय देने लगे। वापू ने तुरन्त मुस्कराते हुए कहा कि तुमने तो मुझे अजमेर में वढ़ियां आम चूसने को दिये थे न। मैं आनन्द-विभोर हो गया और वापू के प्रति मेरी भक्ति और भी वढ़ गई।

राष्ट्रीय झण्डे का मामला

सन् १९४० में अजमेर में खादी प्रदर्शनी हुई। उसकी प्रबन्ध समिति के मैं और भाई बालकृष्ण गर्ग संयुक्त-मंत्री चुने गये थे। खाई की जमीन पर प्रदर्शनी हुई थी और वहां एक बुर्ज पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया था। जिलाधीश ने हम दोनों को झण्डे को उतारने के लिये आदेश दिया। कांग्रेस के बुजुर्ग नेताओं की सलाह से हमने झण्डा उतारने से इन्कार कर दिया। पर पुलिस द्वारा वह जबरदस्ती उतार दिया गया। बापू को टेलीफोन द्वारा श्री महादेव भाई देसाई की मार्फत सूचना दी गई। जिलाधीश ने आज्ञा का उलंघन करने के लिये हम दोनों संयुक्त-मंत्रियों पर मुकद्दमा चलाया। बापू इस घटना से बहुत प्रभावित हुए। मुझे सेवाग्राम बुलाया गया और सारी घटना का पूर्ण विवरण लेख-बद्ध करके देने की आज्ञा दी। उस दिन मुझे बापू जहां भोजन कर रहे थे वहां ले जाया गया। मैं बापू के पास ही भोजन करने बैठा। बापू ने अपनी थाली में से एक आम देते हुए पूछा कि आश्रम की रोटी कैसी लगी। बापू के इस स्नेह से मैं गद्गद् हो गया और हंस दिया। वक्तव्य पढ़ कर बापू ने मुकद्दमे लड़ने की आज्ञा दी और भूलाभाई देसाई के नाम पत्र दिया कि वह हमें मुकद्दमें में मार्ग-दर्शन एवं सहायता दें। बापू इस घटना से इतने विचलित हुए थे कि 'यंग इण्डियां' में दो लेख लिखे और यह घोषणा की कि श्री जयप्रकाश बाबू के साथ घटित और अजमेर की घटनायें इतनी विस्फोटक हैं कि उनके विरोध-स्वरूप सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया जा सकता है। बापू ने जिलाधीश की भी बहुत टीका की और केन्द्रीय सरकार से उक्त अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करने की मांग की। बापू के मार्ग-दर्शन नें मुकदमा लड़ा गया पर हम दोनों को तीन-तीन माह की जेल की कड़ी सजा दी गई। जेल में चक्की पीसने को दा गई और काल कोठरी में रखा गया। एक दिन मैं चक्की पीसते हुए बेहोश हो गया। इसके विरोध में दैनिक समाचार पत्रों में लेख प्रकाशित हुए और केन्द्रीय धारा सभा में दो तीन बार प्रश्न पूछे गये। फलस्वरूप हमें काल कोठरी से निकाल कर उच्च श्रेणी के कैदी की सुवि-धायें दी गईं।

हिन्दू-मुस्लिम दंगे

देश के विभाजन से बापू अत्यन्त दु:खी हुए। वे दंगों के कारण मुस्लिम बन्धुओं की जानमाल की हिफाजत के लिये बहुत चिन्तित थे। मैं भी दिन रात

मुस्लिम बस्तियों में मुसलमानों को साहस दिलाने और उनकी सुरक्षा के लिये चक्कर काटता रहता था। इससे चिढ़ कर कई बार मेरे पर ही नहीं, मेरे बूढ़े माता-पिता पर साम्प्रदायिक लोगों ने हमले किये।

१६४८ में बापू की हत्या कर दी गई। श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री रामनारायण चौधरी और श्री मुकुट बिहारीलाल भार्गव मेरे निवास पर तत्कालीन स्थिति पर विचार विमर्श कर रहे थे कि यकायक टेलीफोन की घंटी बजी और टेलीफोन सुपरवाइजर ने इस हृदय-विदारक घटना की सूचना दी। मैं स्तब्ध हो गया। इसी समय मेरी पत्नी भी वहीं आ गई थी।

जनता की श्रद्धा का प्रदर्शन

यह तय हुआ कि बापू की भस्मी पुष्कर में भी प्रवाहित की जाय। अतएव मैं अपनी पत्नी एवं बाल कृष्ण कौल सहित दिल्ली भस्मी लेने के लिये रवाना हुए। वहां से मेरी पत्नी तो भस्मी स्पेशल में प्रयाग चली गई और मैं, मुकुटजी एवं कौल सहित भस्मी लेकर अजमेर लौट आया। भस्मी का केसरगंज चौक में विशाल जन-समूह ने स्वागत किया और वहां से जुलूस के साथ भस्मी आना सागर बारहदरी पर ले जाई गई।

यहां एक दिन और एक रात दर्शनार्थ रखी गई और सभी धर्मावलंबियों ने वहां अखंड प्रार्थना की। दूसरे दिन भस्मी को पैदल जुलूस के साथ पुष्कर ले जाया गया और गऊ घाट पर उसे प्रवाहित किया गया। जुलूस में अजमेर एवं उसके आस-पास के ही नहीं सारे राजस्थान से आये हुए असंख्य स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया। यह प्रदर्शन बापू के प्रति जनता की श्रद्धा का जीता जागता उदाहरण था।

मेरी ईश्वर या मजहब में खास आस्था नहीं है, पर मैं बापू में ईश्वर का रूप देखता हूँ और इसी भावना से आज भी बापू को याद करता रहता हूँ। मैं अपने को गांधीवादी कहने का भी दावा नहीं करता, पर बापू के उपदेश और विचारों का मेरे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है और आज भी है।

१३

बापू के सान्निध्य में सेवाग्राम की कुछ स्मृतियां

चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय

उन्नीस सौ चालीस के अप्रैल महीने की बात है। एक दिन (अजमेर में) भाई रामनारायण चौधरी ने मुझे बुलाया और कहा कि सेवाग्राम में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के मुख-पत्र 'नई तालीम' के सहायक सम्पादक की जगह खाली हुई है। अगर मेरा इरादा वहां जाने का हो तो वह श्रीमती आशादेवी को लिख सकते हैं। आशादेवी तालीमी संघ की उपमंत्री और 'नयी तालीम' की सम्पादक थीं। उनके पति आर्यनायकम् तालीमी संघ के मंत्री थे।

चौधरीजी के इस आकस्मिक प्रस्ताव पर मेरे मन में तुरन्त यह इच्छा जागृत हुई कि गांधीजी के सान्निध्य में रहने का सुअवसर हाथ से न जाने दूं। इसलिए मैंने बिना कुछ आगा-पीछा सोचे अपनी रजामन्दी जाहिर कर दी। दूसरे दिन चौधरीजी ने मेरे बारे में आवश्यक जानकारी आशादेवी को भेज दी और एक सप्ताह बाद उनकी ओर से स्वीकृति का पत्र भी आ गया।

उस वक्त तो मैंने हां भर ली थी, लेकिन अब मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया, क्योंकि मेरे ऊपर भारी कौटुम्बिक जिम्मेदारियां थीं। पर अन्त में मैंने सारी ऊहा-पोह छोड़कर सेवाग्राम जाने का निश्चय कर लिया। उन दिनों खादी प्रदर्शनी में मेगजीन के ऊपर राष्ट्रीय झण्डा लगाने के 'जुर्म' में कृष्ण-गोपाल गर्ग पर मुकदमा चल रहा था और इस बारे में बातचीत के लिए गांधीजी ने उन्हें सेवाग्राम बुलाया था। सो कृष्णगोपाल, विशम्भरनाथ भार्गव और मैं, हम तीनों १ मई १९४० को सेवाग्राम जा पहुंचे। वहां पहुंचते ही मैं आर्यनायकमजी और श्रीमती आशादेवी से मिला। उनके सौजन्य और सौम्य स्व-भाव का मेरे मन पर इतना गहरा असर पड़ा कि मेरी रही-सही दुविधा दूर हो गई और मैंने उनके साथ कार्य करने का फैसला कर लिया। उधर वे दोनों भी मेरी बातचीत से पूरी तरह संतुष्ट हो गये और उस एक दिन की ही मुलाकात में हमारे बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित हो गये।

❀ ❀ ❀ ❀

अजमेर छोड़ने से पहले घरबार का इन्तजाम करना जरूरी था, इस लिए मैं कुछ महीने की मोहलत लेकर वापिस आगया और फिर १० जुलाई, १९४० को सेवाग्राम पहुंच गया। दूसरे दिन आशादेवी मुझे बापू के पास परिचय के लिए ले गईं और इस प्रकार जीवन में पहली बार मुझे बापू से बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आशादेवी बापू की अत्यन्त स्नेह-भाजन थीं और उनके एक महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम 'बुनियादी तालीम' की योजना का संचालन कर रही थीं। बाद में मुझे पता लगा कि आशादेवी मेरे काम के बारे में बापू को जानकारी देती रहती थीं। हालांकि उम्र में वह मुझ से कुछ छोटी थीं, पर मैं उन्हें 'आशा दीदी' कह कर पुकारता था और वह मुझे 'चन्द्रगुप्त' भाई कहती थीं। उनकी तीन साल की पुत्री मित्तू के लिए मैं 'चन्द्रगुप्त' मामा हो गया था। आर्यनायकम्‌जी को लोग नायकम्‌जी कहते थे।

❀ ❀ ❀ ❀

तालीमी संघ का कार्यालय और कार्यकर्ता निवास आश्रम का अंग होते हुए भी आश्रम से जुदा था। यहां खानपान आदि के बारे में आश्रम जैसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। भोजन म मिर्च मसाले का उपयोग होता था रऔ चाय-काफी भी बनती थी। बापू से मिलने वाले नेताओं को आशा दीदी चाय पीने के लिए अक्सर बुला लिया करती थीं। आचार्य कृपलानी

और श्रीमती सुचेता कृपलानी तो आशादीदी के ही मेहमान होते थे। तालीमी संघ के सदस्य होने के नाते राजाजी भी कभी-कभी हमारे यहां आते रहते थे।

❀ ❀ ❀ ❀

सेवाग्राम में मुझे ८-१० दिन ही हुए थे कि वापू के विनोदी स्वभाव (Sense of Humour) और विभिन्न प्रकृति के लोगों को निरुत्तर करने की उनकी अद्भुत क्षमता का उदाहरण देखने में आया। ईसाइयों के स्काटिश मिशन की प्रवल प्रचारक सम्भ्रान्त महिला लेडी किनियर्ड सेवाग्राम आई और उन्होंने वापू को ईसाई धर्म में दीक्षित करने की हठ पकड़ ली। लेडी किनियर्ड की उम्र ६० वर्ष से ऊपर थी, किन्तु उनमें नौजवानों जैसी फुर्ती थी। वह वड़ी तड़क-मड़क की पोषाक धारण करती थीं और हाथों में सोने की चूड़ियां और अंगुलियों में जड़ांऊ अंगूठियां पहने थीं। वापू ने उन्हें समझाया—मैं तो ईसा मसीह के आदेशों को मानता हूँ और उन पर अमल भी करता हूं, इसलिए मैं ईसाई जैसा ही हूँ (I am as good as a Christian)। पर लेडी किनियर्ड ने कहा : हम आपके साथ एक दीन व ईमान का पवित्र सम्बन्ध (Holy Cmmunion) स्थापित करना चाहते हैं और यह तभी हो सकता है जव आप वप्तिस्मा ले लें। तव वापू हंसकर लेडी किनियर्ड की गोदी में वैठ गए और वोले— 'I adopt you as my mother." लेडी किनियर्ड फिर भी न मानी तो वापू ने कहा:—

"I despair of my mother, but cannot dispense with her."

(मैं अपनी मां से हताश तो हो गया हूँ, पर उसे छोड़ नहीं सकता)।

अन्त में वापू ने लेडी किनियर्ड से पूछा—संसार में करोड़ों लोग ईसाई धर्म के अनुयायी हैं पर उनमें सच्चे ईसाई कितने हैं ? लेडी कैनियर्ड ने जवाव दिया—सच्चे ईसाई तो इनेगिने ही हैं। इस पर वापू ने कहा—अच्छा जिस दिन ये सारे ईसाई सच्चे ईसाई वन जायेंगे उस दिन मैं भी ईसाई धर्म ग्रहण कर लूंगा। लेडी किनियर्ड के पास इसका कोई जवाव नहीं था, और वह निराश होकर चली गई।

❀ ❀ ❀ ❀

वापू का विनोद भी वड़ा अर्थपूर्ण होता था। एक वार अहमदावाद की एक कपड़ा मिल के मालिक का परिवार वापू के दर्शनों के लिए आया और

शाम को बापू जब अपनी दिनचर्या के अनुसार घूमने को निकले तो उनके साथ हो लिया। उन दिनों कुछ ठंड पड़ने लगी थी। सो मिल-मालिक की छोटी पुत्री ने बापू से पूछा—आप कुर्ता क्यों नहीं पहनते ? बापू तो बच्चों से बड़ा प्रेम करते थे और उनके साथ खूब बोलते-खेलते थे। उन्होंने बच्ची से कहा—मेरे पास कुर्ता बनवाने को पैसे नहीं है। बच्ची का बाप तो कपड़े की मिल का मालिक था ही, सो वह बोली—मेरे पिताजी आपके लिए कुर्ते बनवा देंगे। बापू ने उससे कहा—अपने पिताजी से कहना कि मुझे ३० करोड़ कुर्ते चाहिए। इस प्रकार बापू ने व्यंग मे यह जता दिया कि जब तक प्रत्येक भारतवासी के पास पहनने को कुर्ता न हो जाय तब तक वह कुर्ता नहीं पहनेंगे।

❀ ❀ ❀ ❀

गांधीजी के व्यक्तिगत सत्याग्रह के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए २३ अगस्त, १६४० को वर्धा में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई। बापू ने विनोबा को प्रथम सत्याग्रही नामजद किया था, सो उन्हें मिलने के लिए सेवाग्राम बुलाया। वह सेवाग्राम से कुछ दूर पवनार में रहते थे। उन दिनों वह कुरान शरीफ का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने बापू को कुछ आयतें सुनाईं। संयोग से कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद उसी समय बापू से मिलने आए। विनोबा के कुरान पाठ में अरबी शब्दों के शुद्ध उच्चारण को सुनकर मौलाना आजाद भी दंग रह गये।

❀ ❀ ❀ ❀

सितम्बर, १६४० में गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के आंदोलन की घोषणा करदी और उसके अभिप्राय के बारे में वायसराय को पत्र लिखा जिस पर वायसराय ने उन्हें शिमला बुलाया। वहां से वापिस आकर दो अक्टूबर को चर्खा जयन्ती (गांधी जयन्ती) के दिन प्रार्थना संगत में व्यक्तिगत सत्याग्रह की व्याख्या करते हुए बापू ने कहा कि कलियुग में 'अल्प-धर्म' फल देता है, इस लिए यह सांकेतिक सत्याग्रह भी फल देगा। आंदोलन की आलोचना करने वालों को जवाब देते हुए बापू ने व्यंगपूर्ण शब्दों में कहा—यह आंदोलन नहीं तो क्या हजामत है ?

❀ ❀ ❀ ❀

आश्रम की सुबह और शाम की प्रार्थनाओं में बापू के पोते कनु गांधी श्लोक पाठ करते थे, भजन गाते थे और फिर रामधुन होती थी। उन दिनों जापान के एक बौद्ध भिक्षुक भी आश्रम में रहते थे। प्रार्थना के शुरू में वे

बौद्ध भिक्षू इस बौद्ध मन्त्र का उच्चारण करते थे—'ओं नम्यो हो रेंगे क्यो'। तव से यह सूत्र भी वापू की प्रार्थना का अंग वन गया। दिसम्वर १९४१ म जव जापान द्वितीय महायुद्ध में कूद पड़ा तव इन बौद्ध भिक्षु को जापानी होने कारण गिरफ्तार करके नजरवन्द कर दिया गया।

❀ ❀ ❀ ❀

कनु गांधी आशादेवी से मिलने आया करते थे। जव उन्हें मालूम हुआ कि मैं भी कुछ गा लेता हूँ तो उन्होंने सप्ताह में एक दिन की प्रार्थना का भार मुझे सौंपने का प्रस्ताव किया और मैंने इसे स्वीकार कर लिया। सवसे पहले २५ सितम्वर को मैंने प्रार्थना में पाठ किया और भजन गाया। वापू के मस्तिष्क में उन दिनों राष्ट्रीय गीत का विचार चल रहा था। सो उन्होंने आशादीदी से जिक्र किया, क्योंकि वह भी संगीत का अभ्यास करत थीं। तव आशादीदी, श्रीमती सुचेता कृपलानी, कनु गांधी और मैं, हम ने मिलकर ३ अक्टूवर, १९४० की प्रार्थना संगत में 'जनमनगण' गाकर सुनाया और फिर दो–तीन दिन वाद इकवाल की रचना 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' सुनाई।

❀ ❀ ❀ ❀

नवम्वर १९४० के प्रथम सप्ताह में दक्षिण भारत के प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ता रामचन्द्रन् सेवाग्राम आये और तालीमी संघ में ठहरे। उनके साथ सौदामिनी सौन्दरम भी आई। ये दोनों विवाह वंधन में वंधना चाहते थे और वापू की अनुमति लेने आए थे। वापू ने केवल अनुमति ही नहीं दी वल्कि आश्रम में ही उनका विवाह संस्कार कराया और कन्यापक्ष के अभाव में सौन्दरम् के 'पिता' की जगह कन्यादान की रस्म निभाई। उस समय वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की वैठक हो रही थी। सो मौलाना आजाद, राजेन्द्र वावू, सेठ जमनालाल वजाज, आदि भी इस विवाह संस्कार के समय उपस्थित थे। यह ७ नवम्वर, १९४० की घटना है। दूसरे दिन आश्रमवासी पारनेरकर की पुत्री शरत का विवाह प्रोफेसर प्रभाकर माचवे के साथ आश्रम में ही हुआ और वापू ने इस संस्कार में भी भाग लिया।

❀ ❀ ❀ ❀

२० नवम्वर १९४० को मार्शल चांग काई शेक की चीन सरकार के एक प्रतिनिधि डा० कू वापू से मिलने आए और चीन के राजदूत महामहिम ताइ ची ताओ की सेवाग्राम यात्रा के वारे में वात की। २३ नवम्वर को ताइ

ची ताओ सेवाग्राम पधारे। उस दिन के दृश्य को याद करके आज भी हृदय गद्‌गद् हो जाता है।

चीनी राजदूत ताइ ची ताओ बहुत बूढ़े थे और उनकी आयु १०० वर्ष के लगभग बताई गई थी। सफेद दाढ़ीवाले ये वयोवृद्ध, लम्बा सफेद चोगा पहने हुए थे और उनके गले में माला पड़ी हुई थी। जब वह बापूजी की कुटिया के द्वार पर पहुंचे तो प्रवेश करने से पहले देहली पर माथा टेककर नमस्कार किया। बातचीत के बाद जब बापू के साथ बाहर निकले तो घूमकर कुटिया की ओर मुंह कर लिया और उल्टे पांव चलने लगे, जिस प्रकार लोग किसी मन्दिर में दर्शन करके लौटते हैं। उल्टा चलने में वृद्धावस्था के कारण उनके पांव लड़खड़ाने लगे, तो बापू ने उन्हें तुरन्त अपनी बाहों में भरकर सम्भाल लिया।

बाद में राजदूत के साथ के चीनी दुभाषिये ने हमें बताया कि गांधीजी से मिलकर वे ऐसा अनुभव कर रहे हैं मानों उन्होंने बुद्ध भगवान के अवतार के साक्षात दर्शन किए हों। इसीलिए बापूजी की कुटिया को उन्होंने मन्दिर मान लिया था।

बातचीत के दौरान बापू ने चीनी राजदूत से कहा था:—

You are fighting to retain your freedom,
We are fighting to regain our freedom.

(आप अपनी आजादी बनाए रखने के लिए लड़ रहे हैं। हम अपनी आज़ादी दुबारा हासिल करने के लिए लड़ रहे हैं)।

बापू के वाक्य में retain शब्द के साथ regain शब्द का अनुप्रास कितना चमत्कारी है, इसे भाषाविद अच्छी तरह समझ सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

दिसम्बर, १९४० के मध्य की बात है। नायकम्‌जी और आशादीदी दौरे पर गए हुए थे और बापू भी सेवाग्राम में नहीं थे। उस समय महादेव भाई ने अंग्रेजी का एक लेख अनुवाद के लिए मेरे पास भेजा। इसमें प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही विनोबा का वक्तव्य था। जब मैं अनुवाद लेकर उनके पास गया तो उन्होंने 'नई तालीम' में प्रकाशित करने को कहा। उसी दिन वर्धा के जिला मजिस्ट्रेट का एक आदेश जारी हुआ था जिसमें विनोबा के किसी भी वक्तव्य को छापने की मनाही कर दी गई थी। इसलिए 'नई तालीम' में

इसे छापना इस आज्ञा का उलंघन होता। चूंकि वापू की हिदायत थी कि उनकी अनुमति के विना कोई भी कानून नहीं तोड़ा जाय, इसलिए मैंने महादेव भाई से कह दिया कि मैं इसे 'नई तालीम' में छापने की जिम्मेदारी नहीं ले सकता। इस पर महादेव भाई कुछ अप्रसन्न हुए और वह लेख अपने पास ही उन्होंने रख लिया। मुझसे तो उन्होंने कुछ भी नहीं कहा पर वापू के वापस आने पर उनसे मेरे रुख के वारे में शिकायत की। वापू ने भी मुझसे कुछ नहीं कहा। पर वाद में आशादीदी को वताया कि मैंने महादेव भाई को जो जवाव दिया वह विल्कुल ठीक था।

❀ ❀ ❀ ❀

नायकम्जी ईसाई धर्मावलम्वी थे। दिसम्वर १९४० के दौरे पर जाने से पहले वह मुझसे कह गए थे कि २५ दिसम्वर को वड़े दिन के उपलक्ष में तालीमी संघ की वुनियादी पाठशाला के वच्चों को उनकी ओर से क्रिसमस-भोज दिया जाय। इस पाठशाला में सेगांव के वच्चे पढ़ते थे। सेवाग्राम का मूल नाम सेगांव था। हमने २४ दिसम्वर को वच्चों को इस भोज का निमन्त्रण दे दिया। शाम को वच्चों के माता-पिता सेगांव से हमारे पास आए और कहने लगे कि आश्रम में छूत-छात का भेदभाव नहीं है, इसलिए अगर आश्रमवासियों ने भोजन वनाया तो वे अपने वच्चों को नहीं भेजेंगे। वाद-विवाद के वाद इस वात पर समझौता हुआ कि भोजन की सामग्री तो हम देंगे, लेकिन उसके पकाने की व्यवस्था खुद ग्रामवासी आश्रम के वाहर एक खेत में करेंगे। ऐसा ही किया गया और आश्रम की हद के वाहर वच्चों को भोज दिया गया।

कुछ दिन वाद, जनवरी १९४१ में, जव आचार्य कृपलानी कांग्रेस कार्य-समिति की वैठक के सिलसिले में सेवाग्राम आए तो आशादीदी ने इस घटना का जिक्र किया (आचार्य कृपालानी तव कांग्रेस महासमिति के महामंत्री थे)। आचार्य कृपालानी ने वातचीत के अपने निराले और मजाकिया लहजे में हंस कर कहा: यह वूढ़ा यहां इतने दिनों से शिवजी की वारात लेकर वैठा है लेकिन गांव के लोगों से छूआछूत की भावना नहीं मिटी। मैं अपने किसी कार्यकर्त्ता को सेगांव में रख दूं तो वह छः महीने में सव ठीक करदे।

❀ ❀ ❀ ❀

जून, १९४० में वापू को यह खवर लगी कि आश्रमवासी एक परिवार की कन्या का आश्रम के एक नवयुवक से अनुचित सम्वन्ध हो गया है। वापू ने उस कन्या को वुलाकर पूछा तो उसने साफ इन्कार कर दिया। पर वाद में वापू को मालूम हुआ कि यह घटना सही थी। इस पर उस कन्या के झूठ

वोलने के प्रायश्चित स्वरूप वापू ने तीन दिन का उपवास किया। वह नवयुवक तो इस खवर के फैलते ही आश्रम से खिसक गया था। फिर उस परिवार को भी आश्रम छोड़ना पड़ा।

❀ ❀ ❀ ❀

यह तो सभी जानते हैं कि वक्त की पावन्दी का वापू कितना ध्यान रखते थे। आश्रम में उनसे मिलने के लिए आनेवालों का तांता लगा रहता था। जिनको मिलने का समय पहले से दिया होता था वे नियत समय पर आ जाते थे। वाकी के लोगों से मुलाकात तभी हो सकती थी जव समय वच जाय। अगर कोई व्यक्ति नियत समय पर नहीं पहुंचता तो या तो उसे मुलाकात से वंचित रहना पड़ता, या सवके वाद वारी आने के लिए ठहरना पड़ता, या वापू का उलाहना सहना पड़ता। वातचीत में जरूरत से ज्यादा समय लगानेवालों को चेतावनी देने के लिए वापू ने अपनी वैठक के पीछे दीवार पर तख्ती लटका दी जिस पर लिखा था :—

Please

Be Brief, Be Quick, and Be-Gone.

(कृपया संक्षेप में वात कीजिए, जल्दी कीजिए, और रास्ता लीजिए)

❀ ❀ ❀ ❀

फरवरी, १९४१ में अपनी वहिन की शादी के लिए मैं अजमेर आया। इसी वीच मेरे छोटे भाई इन्द्रगुप्त को क्षय का दूसरा दौरा हो गया और मार्च में उसकी मृत्यु हो गयी। अव सारी गृहस्थी का भार मुझ पर आ पड़ा और सेवाग्राम में वापू के सान्निध्य में रहने का मेरा सपना चकनाचूर हो गया। व्यथित होकर मैंने वापू को अपनी मजवूरी का पत्र लिखा। उसके जवाव में वापू का हाथ से लिखा हुआ यह पत्र मुझे मिला:—

सेवाग्राम २९—३—४१

भाई चन्द्रगुप्त,

तुम्हारा पो. का. मिला। भाई के स्वर्गवास से तुमारी मुश्केली मैं समज सकता हूँ। आशा देवी को तुमारी गैर हाजरी चुभने वाली है। तुमारे काम से उनको काफी मदद मिलती थी।

वापु के आशीर्वाद

❀ ❀ ❀ ❀

इसके बाद मैं कुछ दिनों के लिए फिर सेवाग्राम गया और जुलाई १९४० में नायकम्‌जी व आशादेवी से विदा लेकर अजमेर आ गया। फिर भी उन्होंने सितम्बर तक अजमेर में ही रहते हुए तालीमी संघ का काम करते रहने को कहा, और यह भी कह दिया कि अगर मैं वापस आना चाहूँ तो तालीमी संघ का दरवाजा मेरे लिए खुला है।

❀ ❀ ❀ ❀

सेवाग्राम में मेरे निवास के दौरान अजमेर से सम्बन्धित तीन मामले बापू के सामने आये जिनके बारे में उन्होंने मुझसे पूछ-ताछ की थी।

पहला मामला अजमेर म्युनिसिपल कमेटी का था जिसमें कांग्रेस पार्टी के नौ सदस्य थे। कमेटी में मुस्लिम लीग के अगुआ मिर्जा अब्दुल कादिर बेग ने बापू को भेजे गये अपने पत्र में कांग्रेस पार्टी पर हिन्दू साम्प्रदायिकता का आरोप लगाया था। मिर्जा अब्दुल कादिर बेग ने १९२१ के खिलाफत आन्दोलन में भाग लिया था, इसलिए बापू उन्हें अच्छी तरह जानते थे। बापू के पूछने पर मैंने सारी स्थिति से अवगत करा दिया क्योंकि मैं भी कमेटी का सदस्य था। बापू को मेरी बातों पर संतोष हो गया और उन्होंने मिर्जा को समुचित जवाब भेज दिया।

दूसरा मामला कृष्ण गोपाल गर्ग का था। खादी प्रदर्शनी में मेगजान के ऊपर राष्ट्रीय झंडा लगाने के आरोप में कृष्णगोपाल को सजा हो गई थी और उन्होंने सेशन कोर्ट में अपील की थी। वह अपील को वापिस लेना चाहते थे, लेकिन चूंकि मुकदमा बापू की अनुमति से लड़ा गया था, इसलिए अपील वापिस लेने के बारे में कृष्णगोपाल ने बापू की अनुमति मांगी थी। बापू ने मुझे बुलाकर सारा किस्सा सुना और कृष्णगोपाल को यह सूचित करने को कहा कि अपील वापिस न लें। फिर सजा होने पर जेल में कृष्णगोपाल के साथ दुर्व्यवहार की शिकायत बापू को की गई तो बापू ने मुझ से कहा कि जांच के बाद उचित कार्रवाई करेंगे।

तीसरा मामला श्रीमती गोमतीदेवी भार्गव का था। उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने की बापू से इजाजत मांगी थी। बापू ने मुझे बताया था कि उन्होंने इजाजत नहीं दी है।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे अजमेर चले जाने के वाद किसी ने फर्जी नाम से वापू के पास पत्र भेजा जिसमें शिकायत की गई थी कि मेरा खुफिया पुलिस से सम्वन्ध है। वापू ने यह मूल पत्र ही मेरे पास भेजा जिस पर उनका नोट लगा हुआ था—भाई चन्द्रगुप्त, यह क्या वात है और पत्र लिखने वाला व्यक्ति कौन है ? मैंने वापू को जवाव दे दिया कि इस नाम के किसी व्यक्ति को मैं नहीं जानता और खुफिया पुलिस से मेरे सम्वन्ध में वह चाहें तो तहकीकात कर सकते हैं। इस पर वापू का यह पत्र मुझे मिला:—

सेवाग्राम, १२-१०-४१

भाई चन्द्रगुप्त,

जिस शख्स ने अपना पता नहीं दिया है जिनको तुम पहचानते नहीं हो, उसके कथन में सत्य नहीं हैं, इतना ही कहना पर्याप्त है। इसकी तहकीकात क्या करना ? मैंने तो खत भेजा ऐसी समझ से कि वह शख्स कोई परिचित आदमी है।

वापु के आशीर्वाद।

मनुष्य मात्र का विश्वास रखना हमारा कर्त्तव्य है। हम भी तो दूसरे के विश्वास की आशा रखते हैं।

१४

राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा

बाल कृष्ण गर्ग

सन् ४० की वात है। राजस्थान् चर्खा संघ की ओर से अजमेर के खाई-लैन्ड में ७ दिन के लिए एक खादी प्रदर्शनी लगाई गई थी। प्रदर्शनी के साथ साथ जन-जागृति की दृष्टि से प्रमुख नेताओं के भाषण कराने की भी दैनिक व्यवस्था थी। इस कार्यक्रम में हजारों की तादाद में लोग रोजाना आने लगे थे। प्रदर्शनी देखने वालों की संख्या भी दो लाख से ऊपर पहुंच गई थी। रोजाना लोगों की इतनी भीड़ रहती थी कि दर्शकों पर नियंत्रण करना मुश्किल हो जाता था और अक्सर नियंत्रण वनाये रखने के लिए बुकिंग आफिस समय से पहले वन्द कर देना होता था।

इस कार्यक्रम द्वारा जनता में जो जन-जागृति हुई उसे यहां के सरकारी अधिकारी सहन नहीं कर सके और कोई ऐसा रास्ता ढूंढने लगे जिससे यह कार्यक्रम आगे न चल सके। और कोई रास्ता उन्हें नहीं मिला तो एक दिन अचानक कमिश्नर की ओर से व्यवस्थापक समिति के मंत्रियों को यह आदेश जारी किया गया कि प्रदर्शनी के समीप बुर्ज पर जो राष्ट्रीय ध्वज लगाया है उसे एक घण्टे के अन्दर अन्दर उतार लें। यह ध्वज खाईलैन्ड से लगी

पुरानी दीवार की बुर्ज पर ७५ फुट ऊंचा लहराया गया था। सरकार ने कारण यह दिया कि इतनी ऊंचाई पर और किले की बुर्ज पर इस ध्वज को लहराते देखकर मुसलमानों के दिल में नाराजगी बढ़ रही है। व्यवस्थापक समिति के मंत्री—मैं स्वयं और भाई कृष्णगोपाल गर्ग थे। उस दिन सार्वजनिक भाषण के लिए आगरे से भाई कृष्णदत्तजी पालीवाल भी प्रदर्शनी समिति के निमंत्रण पर यहां आए हुए थे। झण्डा उतारने के आदेश के साथ उन्होंने श्री पालीवाल के भाषण पर भी रोक लगा दी थी। सलाह-मशविरा के बाद हमने यही निर्णय लिया कि सरकारी आदेशानुसार राष्ट्रीय ध्वज न उतारा जाय। इसकी सूचना भी हमने कमिश्नर को दे दी कि आपका यह आदेश पालन करना हम राष्ट्रीय स्वाभिमान के विरुद्ध समझते हैं। झण्डा तो सरकारी तौर पर पुलिस के द्वारा उतरवा ही लिया गया और उनकी आज्ञा न मानने के कारण हम दोनों मंत्रियों पर मुकदमा भी चलाया गया। चूंकि खादी का मामला था, और वह भी चरखा संघ से सम्बन्धित, इसलिए हमने फोन द्वारा झण्डा उतारे जाने की जानकारी पू० बापूजी को देते हुए आगे के लिए उनसे मार्ग-दर्शन चाहा। उन्होंने अदालत में सफाई पेश करने को सलाह दी और यह भी आदेश दिया कि इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य हमारी ओर से अदालत में पेश किया जाय उसे अन्तिम रूप देने से पूर्व बापू स्वयं देखना चाहेंगे। बापू की इस सहानुभूति से हमारा उत्साह तो स्वाभाविक ही कई गुना बढ़ना था और बढ़ा।

बापू के स्वभाव में यह बात तो थी कि जिस काम को वह हाथ में लेते थे उसमें आखिर तक बराबर दिलचस्पी लेते थे। इस मामले में भी उन्होंने हमें केवल सलाह ही नहीं दी बल्कि 'हरिजन सेवक' में इस घटना पर एक से अधिक बार लिखा जिसमें कमिश्नर को ताड़ना देते हुए यह जाहिर किया कि उनका यह आदेश राष्ट्रीय ध्वज का अपमान समझते हैं। साथ ही उन्होंने इस मामले की पैरवी के लिए श्री भूलाभाई देसाई को भी लिखा था कि वह हम लोगों की कानूनी सहायता करें। अंत में तीन-तीन मास की सजा हम दोनों को हुई।

१५

अलवर प्रजा मण्डल

(मास्टर) भोलानाथ

मेरी यह मान्यता रही है कि पू० महात्मा गांधी से बड़ा कोई ऐसा नेता नहीं हुआ है जिसने भारत में उनके जितने कार्यकर्ता पैदा किये हों। स्वर्गीय लोकनायक श्री जयनारायण व्यास के सम्बन्ध में लेख लिखते हुए भी मुझे यही ध्यान आया था कि राजस्थान में व्यासजी और भारत में महात्मा गांधी ने अदना से अदना कार्यकर्त्ता को सम्मान दिया और उन्हें धूल से उठाकर महलों तक पहुंचा दिया। इस मेरी मान्यता का उदाहरण मैं स्वयं हूँ।

विद्यार्थी जीवन से हमने पू० महात्माजी का नाम सुना था। बचपन में यह बड़ी प्रबल इच्छा थी कि महात्माजी के दर्शन करूं। अलवर, जहां मैं पढ़ता था, वहां के महाराजा जयसिंह उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने राज्य में पनपने देना नहीं चाहते थे। गांधी टोपी का प्रचार न हो, इसलिए उन्होंने स्कूलों में पगड़ी सिर पर पहनना अनिवार्य कर दिया था। उन्होंने सन् १९३० में इन्टर कालेज इसलिए खोला कि अलवर के कुछ लड़के, जो बनारस युनिवर्सिटी में पढ़ते थे, सत्याग्रह में भाग लेते थे, और कांग्रेस गैर-कानूनी घोषित हो गई थी। चूंकि यह कालेज बहुत जल्दी में जुलाई, या

अगस्त ३० में खोला गया और युनिवर्सिटी से सम्वन्ध कायम कराने में राज्य को भी सफलता मिली, इसलिए महाराजा जयसिंह को वड़ी वधाइयां दी गईं।

समय का फेर है कि स्वयं महाराजा जयसिंह अलवर राज्य की आर्थिक स्थिति खराव हो जाने और राष्ट्रीय प्रवृत्ति में भाग लेने के कारण पोलिटिकल विभाग के कोपभाजन वन गये। उन्होंने इलाहाबाद में पं० मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुई एकता कान्फ्रेन्स में भाषण दिया और इस दौरे से जव वनारस होकर लौटे तो राम नाम का दुपट्टा ओढ़ कर स्टेशन से शहर तक गरमी की मौसम में पैदल आये। इससे अलवर की प्रजा में महाराजा के प्रति विशेष आकर्षण पैदा हुआ और लोगों का ध्यान भी राष्ट्रीय आन्दोलन की तरफ विशेष रूप से गया।

महाराजा जयसिंह को मई सन् १९३३ में अलवर से पहले तीन साल के लिए और वाद में सदा के लिए निर्वासित कर दिया गया। लोगों में यह प्रचार वड़े जोरों से हुआ कि महाराजा को कांग्रेस में शामिल हो जाने के कारण अंग्रेज सरकार ने अलवर से निकाल दिया है इसलिए महाराजा के समर्थन में वड़ी-वड़ी सभाएं हुईं।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं उस समय मैट्रिक का इम्तिहान देकर आया था। स्थानीय जगन्नाथ जी के मन्दिर की सीढ़ियों से मैंने सर्व प्रथम आम सभा में भाषण दिया। लोगों को एक विद्यार्थी के नाते मेरा यह भाषण वहुत पसन्द आया और लोग मुझे भी एक छोटा-सा नेता मानने लगे। यहीं से मेरा सार्वजनिक जीवन शुरू हुआ। अलवर में जो उन दिनों महाराजा जयसिंह की वात करते थे, सव कांग्रेस के समर्थक समझे जाते थे। इस प्रकार के आन्दोलन और चर्चा को खत्म करने के लिए राजपूताना के ए०जी०जी० ने अलवर में एक वड़ा दरवार किया और ऐलान किया कि महाराज जयसिंह के वापस आने की जो व्यक्ति चर्चा करेंगे उन्हें राजद्रोही समझा जायगा और सख्त सजा दी जायगी। इस दरवार से जो भी व्यक्ति लौटे वे वड़े दुःखी मालूम पड़ते थे। इस सख्त आदेश के कारण अव कांग्रेस की चर्चा लुक-छिप के होने लगी।

परन्तु देश का वातावरण दिनों दिन गरम होता जा रहा था। महात्माजी ने हरिजनों के सवाल को लेकर उपवास किया और अलवर के

लोगों ने भी हरिजन मोहल्लों में जाना प्रारम्भ किया। वहां पर सभायें तथा हवन करके ठंडाई पीने आदि के कार्यक्रम बनाये। इस प्रकार स्वतः लोग महात्मा जी की ओर झुकने लगे।

फिर भी महात्माजी और कांग्रेस अलवर के लिए बहुत दूर थे। हम लोग लुक-छिप कर दिल्ली में कांग्रेस की हलचल देख आया करते थे। 'वन्दे मातरम्' व 'गांधी तू हिन्द की एक शान बन गया' गीत जंगलों व पहाड़ों में लुक-छिप कर गाया करते थे।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९३४ में बिहार में भूकम्प आया। भूकम्प पीड़ितों में राहत का काम करने के बाद देशरत्न राजेन्द्र बाबू दिल्ली आये और उनका सार्वजनिक स्वागत दिल्ली के कम्पनी बाग में किया गया। उस समय महात्मा गांधी भी हरिजन कॉलोनी में किंग्स्वे पर ठहरे हुए थे। मैं भी उस सभा में सम्मिलित हुआ और सर्व प्रथम मैंने महात्माजी के दर्शन किये। फिर राजेन्द्र बाबू और राजगोपालाचार्य को भी सर्व प्रथम मैंने इस सभा में देखा।

राजगोपालाचार्य ने श्री राजेन्द्र बाबू के सम्बन्ध में जो शब्द उस समय कहे, वे आज भी मुझे याद हैं। उन्होंने अंग्रेजी में संक्षिप्त भाषण देते हुए कहा कि आज हम देश के महान व्यक्ति का स्वागत कर रहे हैं, लेकिन आप कहेंगे कि जब तीन-चार मील पर महात्मा गांधी ठहरे हुए हैं, तब उनकी मौजूदगी में मैं इन्हें महान व्यक्ति कैसे बता रहा हूं, तो मैं आपसे कहता हुं कि महात्माजी महात्मा हैं और राजेन्द्र बाबू एक व्यक्ति हैं, इसलिए वह महान व्यक्ति हैं। इतना कहकर वह बैठ गये। मेरे दिमाग पर इस भाषण का बड़ा असर पड़ा और मैं महात्माजी के दर्शन करने गया। इस प्रकार मेरा कांग्रेस की तरफ दिनों-दिन झुकाव होता गया। लोगों में राष्ट्रीय भावनायें काम करने लगी और उस समय का इन्तज़ार करने लगे, जब वे अपने उद्‌गारों को खुले तौर से प्रकट कर सकेंगे। अखिल भारतीय कांग्रेस के विधान के अनुसार अलवर राज्य का क्षेत्र पुराने राजपूताना प्रान्त में होते हुए भी वह दिल्ली प्रदेश कांग्रेस का एक जिला था। इसलिए कांग्रेस के नेता, लाला शंकरलाल, प्रो० इन्द्र, नायरजी, सत्यवतीजी, पार्वतीदेवी डीडवाणियां, सेठ केदारनाथ गोयनका और मौलाना इमदाद साबरी कांग्रेस के काम में बहुधा अलवर आते रहते थे। सन् १९३७ में इन्होंने अलवर शहर में कांग्रेस की बाकायदा स्थापना करके तिरंगा झण्डा एक कमरे पर लगा दिया। इस पर सरकार बड़ी चौंकी।

लाला शंकरलाल की अध्यक्षता में एक सभा पुरजन विहार बाग में हुई उसमें शामिल होने वाले प्रमुख व्यक्तियों को, जिनमें अधिकांश महाराजा जयसिंह के समर्थक भी समझे जाते थे, दूसरे दिन पकड़ लिया गया और पैरों में डन्डादार बेड़ी डालकर जेल में बन्द कर दिया गया। उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। हालांकि उस समय महाराजा जयसिंह का स्वर्गवास पेरिस में निर्वासित अवस्था में ही हो गया था और नये महाराजा तेजसिंहजी, जो आज भी विद्यमान हैं, अलवर की गद्दी पर बैठ गये थे।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९३७ में कांग्रेस ने प्रान्तों में पद-ग्रहण किया। इससे जेल में बन्द बन्दियों में बड़ा उत्साह पैदा हुआ। उन्हें लम्बी सजायें दी गई थीं। कार्यकर्त्ताओं ने डन्डादार बेड़ी पहन कर सजा काटी। महात्माजी को इस दमनचक्र की सूचना दी गई तो वह बड़े दुःखी हुए।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९३८ में हरिपुरा कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास किया गया कि देशी राज्यों में कांग्रेस कमेटियों की बजाय स्थानीय प्रजा मण्डल संगठित किये जायं। अलवर में श्री रामनारायण चौधरी के प्रयत्न से अलवर राज्य प्रजा मण्डल की स्थापना हुई। प्रजा मण्डल की स्थापना से सरकार और भी चौंकी। प्रजा मण्डल के उद्देश्यों को प्रकट करने के लिए पांच-सात सभायें हुई थीं कि पुनः कार्यकर्त्ताओं को उसी पुराने राजद्रोह के कानून में पकड़ कर और और डन्डादार बेड़ी डालकर जेल में बन्द कर दिया गया, हालांकि अभी तक सन् १९३७ के कुछ बन्दी जेल से नहीं छूटे थे।

सर्वश्री जयनारायण व्यास, हरिभाऊ उपाध्याय, जमनालाल बजाज, और रामनारायण चौधरी ने इस दमनचक्र से महात्माजी को निरन्तर परिचित रखा। श्री जयनारायण व्यास प्रजा मण्डल के बन्दियों की जांच करने अलवर आये तो उन्हें निर्वासित्त कर दिया गया। परन्तु श्री रामनारायण चौधरी अलवर में आ पाये। श्री हरिभाऊ प्रकाशित रूप से अलवर आये। सन् १९३८ में ही जयपुर राज्य प्रजा मण्डल ने सेठ जमनालालजी बजाज की अध्यक्षता में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सत्याग्रह किया। जयपुर की पड़ोसी रियासत होने के कारण जयपुर के आन्दोलन का असर अलवर पर भी हुआ। सेठ जमनालालजी को जयपुर के अधिकारी

अलवर की सरहद में छोड़ गये। इस पर अलवर के विद्यार्थियों ने हड़ताल की और राष्ट्रीय आन्दोलन को अन्तः—राज्यीय गति मिली।

❀　❀　❀　❀

लुधियाना में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् का अधिवेशन पं० जवाहिरलालजी की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन से देशी राज्यों के आन्दोलन को बड़ी गति मिली। परन्तु प्रजा मण्डलों को अधिकतर राज्यों में मान्यता नहीं दी गई। जयपुर में सेठ जमनालालजी जैसे प्रभावशाली नेतृत्व होते हुए प्रजा मण्डल को मान्यता नहीं दी गई। जयपुर की भांति अन्य राज्यों में प्रजाकीय संगठन मान्यता प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। उन्हीं दिनों सभी रियासतों में संस्थाओं की रजिस्ट्री करने सम्बन्धी कानून बने और उनकी रजिस्ट्री कराना राज्य सरकारों ने अनिवार्य कर दिया। सभी प्रजा मण्डलों ने अपने संगठनों को रजिस्टर्ड करवाने की दरख्वास्तें सम्बन्धित राज्य सरकारों को दीं।

परन्तु राज्य सरकारों ने रजिस्टरी के लिए नई-नई शर्तें लगाई। कई राज्यों ने तो प्रजा मंडल नाम पर ही ऐतराज किया गया। कई ने उतरदायी शासन का उद्देश्य मानने से इन्कार किया। झंडों तथा बाहर के राज्यों से संबंध न रखने की शर्त पर सबसे ज्यादा जोर दिया गया।

हम लोगों ने भी फरवरी १९३९ में अलवर राज्य प्रजा मंडल की रजिस्टरी की दरख्वास्त उस समय के चीफ मिनिस्टर को दी। परन्तु अलवर राज्य प्रजा मंडल की रजिस्टरी डेढ़ साल की लिखा पढ़ी के बाद सन् १९४० के अगस्त मास में हुई। इस बीच जयपुर, भरतपुर, जोधपुर, आदि रियासतों में प्रजाकीय संगठन रजिस्टर्ड हुए।

अलवर सरकार ने जब प्रजा मंडल की रजिस्टरी नहीं की तब मैंने श्री हरिभाऊ उपाध्याय के द्वारा महात्माजी को लिखा था। महात्माजी का पत्र राजकोट से ता: ९ अप्रेल ३९ का आया। उसमें लिखा था:—

आपका ता. २३ मई ३९ पत्र मिला। इस बारे में सब बातें हरिभाऊ उपाध्याय से हो गई हैं। कृपया करके उनसे पूछ लीजिये।

आपका
मो० क० गांधी

प्रत्यक्ष परिचय न होने के कारण ही बापू ने मेरे प्रति पत्र में आदर सूचक शब्दों का प्रयोग किया है। मैं इसे उनकी महानता ही मानता हूँ।

हमारा पत्र-व्यवहार चीफ मिनिस्टर से चलता रहा, लेकिन उन्होंने प्रजा मंडल की रजिस्टरी नहीं की और शर्त लगाई कि प्रजा मंडल का उद्देश्य 'उत्तरदायी शासन' के बजाय 'जनता का शासन में प्रगतिशील सहयोग' रखा जाय। इस पर मैंने पुनः महात्माजी को पू० बापूजी संबोधित करके पत्र लिखा। जिसका बम्बई से ता: ५ जून ३९ को यह उत्तर प्राप्त हुआ :—

प्रिय भाई भोला नाथ,

तुम्हारा पत्र मिला। उद्देश्य में परिवर्तन अब न किया जाय। जय-पुर में क्या होता है देखा जाय। बापू के आशीर्वाद।

स्मरण रहे कि उस समय जयपुर राज्य प्रजा मंडल का जयपुर सरकार से संस्था को रजिस्टर्ड कराने का झगड़ा चल रहा था। उस पर कई तरह की पाबंदियां लगाई जा रही थीं। जैसे, बाहर की संस्था से प्रजा मंडल का कोई सम्बन्ध न हो, जयपुर से बाहर का रहने वाला उसका पदाधिकारी न हो, प्रजा मंडल का कोई झंडा न हो, आदि। सेठ जमनालालजी बजाज इन शर्तों को स्वीकार नहीं कर रहे थे। इसलिये पू० बापूजी ने लिखा कि जयपुर में क्या होता है यह देख लिया जाय।

इसके पश्चात ता: १९ जुलाई १९३९ को चीफ मिनिस्टर का पत्र आया। उन्होंने लिखा कि अलवर राज्य प्रजा मंडल जैसी राजनीतिक संस्थाओं की रजिस्टरी के लिए सरकार कुछ शर्तें और लगायेगी, जिनकी शीघ्र ही घोषणा की जायगी। अतः उनके २०मई १९३९ के पत्र को रद्द समझा जाय।

इस पत्र के आने के बाद लगभग एक साल तक प्रजा मंडल की रजि-स्टरी का मामला खटाई में पड़ा रहा। जयपुर में उस समय राजा ज्ञाननाथ चीफ मिनिस्टर थे। उनके साथ सेठ जमनालालजी बजाज का बडा ज्ञान संघर्ष रहा। महात्मा जी हमें लिख चुके थे कि जयपुर में क्या होता है यह देख लिया जाय। इसलिए हम भी जयपुर का इन्तजार करते रहे।

आखिर १७ अप्रेल १९४० को जयपुर रियासत के असाधारण गजट में यह सूचना प्रकाशित हुई कि सेठ जमनालालजी बजाज के साथ लम्बी चर्चाओं के बाद जयपुर सरकार ने प्रजा मंडल की रजिस्टरी स्वीकार करने

का फैसला किया है किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि सेठ जमना लाल वजाज की विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए उनके मामले में पदाधिकारियों के संबंध में विशेष अपवाद किया है। किन्तु इसे भविष्य के लिये उदाहरण नहीं माना जायगा।

यह सूचना प्रकाशित होने पर मैंने महात्माजी को लिखा कि जयपुर राज्य प्रजा मंडल की रजिस्टरी कुछ शर्तों के साथ हो गई है, परन्तु अलवर के अधिकारी अलवर राज्य प्रजा मण्डल की रजिस्टरी नहीं कर रहे हैं, बल्कि जिन शर्तों के साथ जयपुर राज्य प्रजा मण्ड़ल की रजिस्टरी की है उससे भी सख्त शर्त लगा रहे हैं, यानि वे कह रहे हैं कि अलवर राज्य प्रजा मण्डल का उद्देश्य 'उत्तरदायी शासन' न होकर 'जनता का शासन में प्रगतिशील सहयोग' होना चाहिए। इस पर महात्माजी ने ता: ३० मई सन् १९४० के सेवाग्राम से भेजे हुए पत्र में लिखा.—

भाई भोला नाथ,

मेरा ऐसे खयाल है कि तुम्हारे ता: २६ अप्रेल १९४० के खत का उत्तर मैंने भेजा था। आज सब खत देख रहा हूँ। इसमें यह भी मिला। अब क्या हाल है बताइये।

बापू के आशीर्वाद।

महात्माजी के इस पत्र के उत्तर मे मैंने फिर लिखा कि अलवर राज्य सरकार प्रजा मण्डल की रजिस्टरी के लिए निम्नलिखित शर्तें लगा रही है :—

(१) इस संस्था का भविष्य में भारतीय देशी राज्य कांग्रेस जैसी किसी राजनीतिक संस्था से सम्बन्ध नहीं होगा। दूसरे शब्दों में प्रजा मण्डल का राज्य से बाहर की किसी राजनीतिक संस्था के साथ सम्बन्ध नहीं होगा।

(२) प्रजा मण्डल का कोई पदाधिकारी बाहर की किसी राजनीतिक संस्था का पदाधिकारी नहीं होगा।

(३) प्रजा मंडल किसी राजनीतिक झण्डे का प्रयोग नहीं करेगा।

(४) अलवर रियासत के निवासी के अलावा और कोई प्रजा मंडल का सदस्य नहीं हो सकेगा।

(५) प्रजा मंडल का उद्देश्य शान्तिमय और कानूनी साधनों द्वारा राज्य के शासन के साथ लोगों का प्रगतिशील सहयोग हासिल करना होगा।

इस पर महात्मा जी ने मुझे ता० ९ जून, १९४० में सेवाग्राम से लिखाः—

भाई भोलानाथ,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं पाता हूं कि दीवान की इच्छा ही प्रजा मण्डल को टालने की है। कहीं तो हमें दृढ़ रहना ही है। झण्डे का आग्रह छोड़ना हो तो छोड़ो। रिसपान्सिवल गवर्नमेन्ट का गोल कबूल करें। अखिल भारत कांग्रेस के साथ सम्बन्ध के बारे में क्या नीति अख्तयार करनी है, यह निर्णय जवाहिरलालजी से करवा लो। मैं कुछ दुविधा में हूं।

बापू के आशीर्वाद।

इस बीच भरतपुर प्रजा मण्डल की रजिस्टरी भी उपरोक्त शर्तें कबूल करने पर हो गई और कुछ दिनों बाद जोधपुर लोक परिषद की रजिस्टरी भी हुई। परन्तु इन दोनों राज्यों के अधिकारियों ने प्रजा मण्डल नाम क स्वीकार नहीं किया। इसलिए कार्यकर्ताओं ने प्रजा परिषद और लोक परिषद नाम रखे।

हम लोग उत्तरदायी शासन का उद्देश्य कबूल कराने के लिये बराबर जोर देते रहें। इस पर अलवर राज्य के चीफ मिनिस्टर मिस्टर हार्वे का ता० २ जुलाई, १९४० का आबू से इस आशय का पत्र मिला कि प्रजा मण्डल ने, 'शासन के साथ लोगों का प्रगतिशील सहयोग', उद्देश्य स्वीकार नहीं किया है, इसलिए रियासत की सरकार उसकी रजिस्टरी नहीं करेगी। मेजर हार्वे चीफ मिनिस्टर के उपरोक्त पत्र की सूचना मैंने महात्माजी को दी तो उन्होंने कुछ खिन्न मन से सेवाग्राम से ता० १३-७-४० को लिखा :—

भाई भोलानाथ,

तुम्हारा पत्र मैं कल पढ़ सका। मैंने लिखने का निश्चय तो किया ही था। कैसे रह गया, मैं नहीं कह सकता, लेकिन हुआ सो ठीक ही हुआ। तुम्हारे कामों में दखल न देना ही काफी समझा जाय।

बापू के आशीर्वाद,

इस पत्र के आने पर गतिरोध हो गया। हमारी इस लिखा-पढ़ी से लोकनायक जयनारायणजी व्यास, हरिभाऊजी उपाध्याय और रामनारायणजी चौधरी भी बराबर सूचित रहते थे।

यहां प्रसंगवश में श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्री रामनारायण चौधरी के पत्रों का हवाला भी देना चाहता हूं।

ता० १६ जून, १६४० को अजमेर से हरिभाऊजी ने लिखा:—

जब सरकार प्रजा मण्डल की रजिस्टरी आपकी शर्तों पर नहीं कर रही है तो आपके सामने तीन मार्ग हैं।

(१) प्रजा मण्डल को बन्द रख कर रचनात्मक काम में लग जाना। विरोध स्वरूप प्रजा मण्डल को बन्द रखना।

(२) सत्याग्रह करना। बिना रजिस्टरी कराये प्रजा मण्डल को चलाना।

(३) सरकार की शर्तों पर रजिस्टरी करा लेना।

मुझे पहला मार्ग ही ठीक जचता है। दूसरे मार्ग पर चलने की शक्ति एवं संगठन आपके पास हो तो बात दूसरी है। तीसरी को अंगीकार करना हो तो पू० महात्माजी की सलाह ले लेनी चाहिए। मेरा मतलब भरतपुर और सिरोही जैसा समझौता कर लेना हो तो।

ता० १७ जून, १६४० को इसी सिलसिले में श्री रामनारायण चौधरी का पत्र भी इस प्रकार आया:—

भाई भोलानाथजी,

महात्माजी के पत्र का अर्थ आपने ठीक ही किया। मेरी उनसे बात करने की वैसे तो जरूरत नहीं मालूम पड़ती। आप सीधा ही काम चलालें तो अच्छा है। फिर भी आप लोगों का आग्रह हो तो मैं बापूजी से बातें कर लूंगा। यह भी लिखें कि मुझे किन प्रश्नों पर महात्मा जी से उत्तर लेना है।

ता० २८ जून, १६४० को दिल्ली से श्री रामनारायण चौधरी का फिर पत्र आया। उसमें उन्होंने लिखा:—

पू० महात्मा जी से अलवर के बारे में बातें हुई। आपको सीधा उत्तर तो वह देंगे ही। आप लोगों की मौजूदा स्थिति तथा देश विदेश की स्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने राय दी है कि अगर इससे आपको

कार्य में और प्रजा मण्डल को बल संचय करने में सुविधा हो तो 'शासन के साथ लोगों के प्रगतिशील सहयोग' का ध्येय रख कर फिलहाल प्रजा मण्डल की रजिस्टरी करवा ली जाय।

इसके पश्चात ता० ६ जुलाई, १६४० को श्री रामनारायण चौधरी ने एक दूसरा पत्र लिखा और उसमें चीफ मिनिस्टर को लिखा जाने वाला पत्र का मस्विदा भी साथ भेज दिया। पत्र इस प्रकार था :—

पत्र मिला। प्रधान मन्त्री के लिये जवाब का मस्विदा भेजता हूं। आवश्यक सुधार कर लें। आबू के समाचारों के बारे में मुझे कोई विशेष समाचार नहीं मिले हैं।

स्मरण रहे, ता० ३ सितम्बर, १६३६ को दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था और ८ नवम्बर को प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों द्वारा पद-त्याग कर दिया गया था और व्यक्तिगत सत्याग्रह की तैयारियां महात्माजी की ओर से प्रारम्भ किये जाने की चर्चा शुरू हो गई थी।

श्री रामनारायण चौधरी की सलाह से राज्य की शर्तों पर ही प्रजा मण्डल की रजिस्टरी कराने का अन्तिम पत्र ता० ३१ जुलाई, १६४० को लिखा गया और ता० १ अगस्त, १६४० को अलवर राज्य प्रजा मण्डल को रजिस्टर्ड कर दिया गया।

अलवर राज्य प्रजा मण्डल की रजिस्टरी हो जाने के बाद मैंने महात्मा जी से प्रजा मण्डल के लिए आशीर्वाद मांगा। इस पर महात्माजी का निम्न पत्र ता० २० अगस्त, १६४० को सेवाग्राम से मिला। जिसमें लिखा था :—

भाई भोलानाथ,

मेरा ख्याल है मैंने तुमको आशीर्वाद भेजे हैं लेकिन तुम्हारा पत्र मेरे सामने है, इसलिए यह लिखता हूं। तुम्हारे कार्य में सफलता मिले।

बापू के आशीर्वाद।

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरे महायुद्ध का जोर बढ़ता जा रहा था। प्रजा मण्डल की रजिस्ट्री के बाद प्रजा मण्डल देहातों में काम करने लगा। उसी समय सभी सरकारें युद्ध के लिए चन्दा वसूल करती थीं। इस चन्दे की वसूली के लिए तहसीलों के

अधिकारी मारपीट करते थे। अलवर देहातों से बड़ी शिकायतें आई। सारे भारत में ये शिकायतें थी। महात्माजी वायसराय से मिलने गये तो उन्होंने युद्ध का चन्दा जबरन वसूल करने की शिकायत की। उसी समय मैंने एक पत्र महात्माजी को लिखा उसके उत्तर में जो महत्वपूर्ण पत्र मेरे पास आया वह इस प्रकार है:—

सेवाग्राम

ता० ३-११-४०

भाई भोलानाथ,

आपका पत्र मिला। वहां की तकलीफ मैं जानता हूँ। मैं नहीं जानता क्या हो सकता है। तजवीज तो कर रहा हूँ लेकिन फल की कम आशा है। लोगों में विरोध करने की शक्ति है तो विरोध अवश्य करें। ऐसा न समझा जाय कि मैं ऐसी ज्यादतियों को बरदाश्त करने की सलाह दे सकता हूँ। लोग भले ही टूट जाएं। परन्तु बलात्कार के वश कभी न हों।

बापू के आशीर्वाद

कितना बड़ा गुरुमन्त्र था विरोध का और हमारा शक्ति की आजमाइश का!

अलवर की खादी प्रदर्शनी

प्रजा मण्डल की रजिस्ट्री के बाद महात्माजी से अलवर में खादी प्रदर्शनी के वृहत आयोजन के सम्बन्ध में मेरा पत्र-व्यवहार हुआ। अलवर शहर में इतना बड़ा आयोजन प्रथम बार बड़ी धूम धाम से हुआ। अलवर राज्य में राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का इससे बड़ा प्रदर्शन कभी नहीं हुआ था।

यह प्रदर्शनी ता० १ अक्टूबर से ५ अक्टूबर १९४१ तक हुई। अखिल भारतीय चर्खा संघ की राजस्थान शाखा के सहयोग से इसका आयोजन किया गया था। इसका उद्घाटन करने पू० महात्माजी ने अपने सचिव श्री महादेव भाई को भेजा था, जिससे समस्त राजस्थान में इस प्रदर्शनी का महत्व बढ़ गया था। प्रदर्शनी के अतिरिक्त ग्राम सभाओं में नेताओं के भाषण हुए और महिला सम्मेलन, कवि सम्मेलन, के आयोजन भी किए गए। वनस्थली विद्यापीठ की छात्राएं श्री हीरालाल शास्त्री के साथ प्रथम बार अलवर आईं। इन लड़कियों का व्यायाम का सार्वजनिक प्रदर्शन अलवर के लिए अद्भुत चीज थीं।

महादेव भाई के उद्घाटन भाषण ने तो अलवर में क्रान्ति की लहर ही फूंक दी। उनका एक विशाल जुलूस एक देशी रथ में निकाला गया जो यहां पर आम तौर से दशहरे के अवसर पर रामचन्द्रजी की सवारी निकालने के लिए काम में आता था। महादेव भाई को इस रथ में बैठाया गया तो उन्होंने बड़ा संकोच प्रकट किया, जिसका जिक्र उन्होंने अपने आम सभा के भाषण में भी किया। महादेव भाई ने गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की निम्न पंक्तियां पढ़ीं, जिन्हें सुनकर जनता विह्वल हो गई।

रथ भावे आमी देव, पथ भावी आमी
मूर्त्ति भावे आमी देव, हांसे अन्तरयामी।

उन पंक्तियों को बोलते हुए महादेव भाई का भव्य व्यक्तित्व प्रकाशित हो रहा था। उन्होंने कहा कि एक देवता के रथ में मेरा जो जुलूस निकाला गया है, वह मेरे जैसे छोटे व्यक्ति का जुलूस नहीं है, यह उस महान आत्मा की करामात है जो सेवाग्राम में बैठे हैं और जिसका सन्देश लेकर मैं अलवर आया हूं।

परन्तु महादेव भाई ने इस आम सभा में इस बात पर खेद प्रकट किया कि इस विशाल प्रदर्शन में राष्ट्रीय झण्डा नहीं था। उन्होंने जोश में यहां तक कह दिया कि यदि मुझे जुलूस प्रारम्भ होने से पहले पता लग जाता कि इस प्रदर्शन में राष्ट्रीय झंडा नहीं होगा तो मैं जुलूस में ही शामिल नहीं होता।

यहां यह स्मरण रहे कि इस प्रदर्शनी का आयोजन चर्खा संघ के सहयोग से अलवर राज्य प्रजा मण्डल ने अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने के लिए किया था और प्रजा मण्डल पर उसके रजिस्ट्री के समय ता० १ अगस्त १९४० को ही यह पाबन्दी लगा दी गई थी कि वह अपना कोई झंडा काम में नहीं लेगा। उसके १३ महीने बाद ही इस प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। अलवर म्युनिसिपल बोर्ड ही राजस्थान में पहला बोर्ड था जिसमें प्रजा मण्डल का बहुमत था, इसलिए उसने ५०० रु० की सहायता इस प्रदर्शनी को दी जो तब तक ऐसी प्रदर्शनी को किसी राज्य में नहीं मिली थी। महाराजा तेजसिंह ने भी अपनी शुभ कामनाएं भेजी थीं।

इस प्रदर्शनी का मैं ही संयोजक था और अलवर राज्य प्रजा मण्डल का मंत्री भी। प्रजा मण्डल के मंत्री की हैसियत में इन्हीं मेजर हार्वे के कार्य-

काल में दो वार भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत जेल भी गया था। परन्तु उस उदार-चेता अंग्रेज ने प्रजा मण्डल की रजिस्ट्री हो जाने के बाद अपना रुख बदल लिया और प्रदर्शनी के कार्य में पूरा सहयोग दिया। प्रदर्शनी के सम्बन्ध में मेरा राजस्थान और देश के अनेक नेताओं से पत्र-व्यवहार हुआ। राजेन्द्र बाबू, सेठ जमनालालजी बजाज ने स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण आने में असमर्थता प्रकट की। श्री किशोरलाल भाई ने महात्माजी की ओर से सूचित किया कि महादेव भाई बीमारी से उठे हैं अतः उन पर ज्यादा बोझ न डाला जाय और उनके स्वास्थ्य का खयाल रखा जाय। दिल्ली के अनेक नेता इस अवसर पर अलवर आये और आम सभाओं में उनके प्रभावशाली भाषण हुए। महात्माजी की हम पर यह बड़ी कृपा हुई कि उन्होंने महादेव भाई को अलवर भेजा। उनकी दिलचस्पी इसलिए भी रही कि खादी का काम उन्हें बहुत प्रिय था। अलवर के लोग महात्माजी की दिलचस्पी की बात को आज भी स्मरण करते हैं।

उत्तरार्द्ध

इस प्रकार अलवर के सार्वजनिक जीवन को सक्रिय बनाने में पू० महात्माजी ने हमें सहयोग व आशीर्वाद दिया। सन् १९४२ के अगस्त में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। अलवर में भी इस क्रांति में भाग लेने के लिए कार्यकर्त्ता तैयार हो गये। कई वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी। हड़ताल और गिरफ्तारियों का तांता बंधा रहा। फरवरी सन् १९४३ में पू० महात्माजी ने आगाखां महल में अनशन किया तो अलवर में भी उनकी सहानुभूति में श्री शोभाराम ने १३ दिन का उपवास किया था।

सन् १९४४ में महात्माजी जेल से छूट कर आये। उन्होंने कांग्रेस को सक्रिय रखने के लिए नया नारा दिया। सेवाग्राम में एक समग्र ग्राम सेवा शिविर एक मास के लिए चलाया गया। इस शिविर में सम्मिलित होने मैं भी अलवर से सेवाग्राम गया और एक मास तक वहां रहा। एक मास तक वहां बराबर रहने के कारण नित्य पू० महात्माजी के भाषण सुनने का अवसर मिला। उस समय वह मौन-व्रत धारण किये हुए थे। केवल प्रार्थना सभा में बोलते थे।

मैंने एक वार २ फरवरी १९४५ को महात्माजी से अलवर के लिए रवानगी से पहले एक मुलाकात की। अपने प्रश्न उन्हें पहले लिख कर दिए जिनके उत्तर भी उन्होंने मुझे लिखकर दिए, जो आज भी मेरे पास एक

थाती के रूप में सुरक्षित हैं। ये प्रश्नोत्तर उस समय की हमारे संगठन की स्थिति पर बखूबी प्रकाश डालते हैं।

प्रथम प्रश्न में मैंने उनसे पूछा था कि हम जागीरदारों के विरुद्ध सत्याग्रह करना चाहते हैं। आपकी क्या आज्ञा है। उन्होंने उत्तर दिया:—

"सब कुछ कर सकते हो पर मेरे कहने से कुछ नहीं। मेरी सलाह है कि वहां की परिस्थिति को देखकर तुम्हीं विचार करो।"

दूसरे प्रश्न में पूछा था कि सत्याग्रह शुरू करने से पहले एक बड़ा सम्मेलन करना चाहते हैं उसमें आप श्रीमती सरोजनी देवी के भेजने का कष्ट करें। उन्होंने उत्तर दिया:—

"सरोजनी देवी बीमार पड़ गई है। दूसरे किसी को ले लें।"

तीसरे प्रश्न का उत्तर: "सत्याग्रह करने वाले हैं तो जागीरदारों से सत्याग्रह शुरू करें। अगर तैयारी नहीं तो जो हज्म हो सके वह करें।"

चौथे प्रश्न में मैंने महात्मा जी से अलवर आने की प्रार्थना की इसके उत्तर में उन्होंने लिखा: "अगर मैं दिल्ली जा सका तो अलवर-वासियों से अवश्य मिलूंगा।"

पांचवे प्रश्न में मैंने लिखा था कि हम तो अधिकारियों से मिल कर समस्याओं का हल निकालना चाहते हैं। इस पर उन्होंने उत्तर दिया: "शासकों से मिलने में तनिक भी बाधा नहीं। अगर वे इसमें साहाय्य करें।"

अन्त में इसी पत्र में मुझे सलाह दी: "उसमें कुछ भी मेरे नाम से प्रकट करने के लिए नहीं है सिर्फ तुम्हारी समझ के लिये है।"

कितना अगाध प्रेम हमारे संगठन और मेरे प्रति इस प्रश्नोत्तर में है।

मुझे दुःख है कि पू० महात्माजी का अलवर आने का वादा पूरा नहीं हुआ। परन्तु अलवर की समस्या उनके सामने अन्तिम समय तक रही।

सन् १९४६ में अन्तरिम सरकार बनी। सन् १९४७ में देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। अलवर भी इन दंगों का प्रमुख केन्द्र रहा। महात्माजी को इससे बड़ा दुःख हुआ। यहां के हजारों मेव रियासत छोड़ कर भागने लगे।

उसमें भी उन्होंने एक स्पेशल मिलिट्री गाड़ी में यहां हालात जानने के लिए श्री जयनारायण व्यास, श्री वृष भान (पंजाव) तथा दक्षिण के कार्यकर्ता श्री चारी को अलवर भेजा ।

अलवर में बड़े भयंकर दंगे हुए । यहां पर सन् १९४७ में १५ अगस्त को प्रथम स्वतन्त्रता दिवस अच्छे समारोह के साथ नहीं मनाया जा सका । अलवर में उस समय मुख्य-मंत्री डा० एन. बी. खरे महात्माजी के प्रवल विरोधी थे । उन्होंने यहां पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सवसे वड़ी रैली कराई । हिन्दू सभा के नेता अलवर को अपनी गतिविधियों का खास केन्द्र मानने लगे । साम्प्रदायिक भावनायें खून-खराबी की हद तक पहुँच गई थीं ।

स्वयं महात्माजी अलवर की सीमा पर घासेड़ा गांव में आये और मेवों को समझाया कि वे अपने अपने घरों को वापस लौट जायं ।

२८ जनवरी १९४८ को मैं श्री जयनारायण व्यास, देशपाण्डेजी और श्री हरिभाऊ उपाध्याय अलवर के पूरे समाचार महात्माजी को देने के लिए विड़ला हाउस गये । प्रार्थना सभा के वाद हमारी उनसे मुलाकात हुई। उन्होंने हमारी बातें वड़े ध्यान से सुनी और अलवर एवं भरतपुर के साम्प्र-दायिक दंगों पर वड़ा खेद प्रकट किया । उनको इस वात से वड़ा दुःख हुआ कि रियासत के अधिकारी दंगों का दमन करने के वजाय उनको प्रोत्साहन दे रहे हैं ।

कौन जनता था कि २ दिन वाद ही यही दंगे उनकी हत्या के कारण वनेंगे । क्योंकि ३० जनवरी ४८ को ही उन्हें गोली मार दी गई ।

सारे भारत में यह वात विजली की तरह फैल गई कि उस काण्ड में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का हाथ है । अलवर में उसकी रैली हो चुकी थी । इसलिए अलवर के अधिकारियों पर भी यह शुवहा किया गया कि हत्या में कहीं उनका भी हाथ न हो ।

हत्या के तुरन्त वाद ही महाराज अलवर तथा उनके समय के मुख्य मन्त्री डा० एन. बी. खरे को दिल्ली वुला लिया गया और उन्हें वहीं रोक

लिया गया। अलवर आने पर उन दोनों पर पाबन्दी लगा दी गई। अलवर का शासन भारत सरकार ने संभाल लिया। अलवर का मंत्रिमंडल बरखास्त कर दिया गया। श्री के. बी. लाल को प्रशासक बना कर हवाई जहाज से भेजा गया। साथ में भारत सरकार ने बड़ी तादाद में टैंक भी भेजे। रेडियो से ऐलान कराया कि अलवर रियासत का शासन भारत सरकार की स्टेट मिनिस्टरी ने संभाल लिया है। अलवर में कर्फ्यू लगा दिया गया। प्रशासक ने भी अलवर में कांग्रेस के नेताओं तथा अन्य संभ्रान्त नागरिकों को बुला कर ऐलान किया कि भारत सरकार ने रियासत के शासन-भार को संभाल लिया है। इस कार्यवाही से रियासत में खुशी की लहर दौड़ गई, क्योंकि लोग हिन्दू-मुस्लिम दंगों से तंग आ गये थे और किसी की भी जान-माल सुरक्षित नहीं थी।

हम लोगों का एक शिष्ट-मण्डल सरदार पटेल से मिला और अलवर के हालात से उन्हें अवगत किया। स्वयं सरदार पटेल ने अलवर आने का वादा किया। ता: २३ फरवरी १९४८ को सरदार पटेल हवाई जहाज से अलवर पधारे और एक विशाल सार्वजनिक सभा में ऐतिहासिक भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि राजाओं की तलवार को अब भंगी के झाडू से ज्यादा नहीं समझना चाहिये। अब श्रम की महिमा होगी। इस चेतावनी से देशी राज्यों में तहलका मच गया।

परिणाम स्वरूप राजस्थान में अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली राज्यों का देशी राज्यों का पहला संघ, मत्स्य यूनियन, बना। इसकी राजधानी अलवर रखी गई ' मुझे भी इसके मंत्रिमंडल में एक मंत्री बनने का सुअवसर मिला। भरतपुर में भी हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए थे। इसलिए अलवर के बाद भरतपुर रियासत पर इसी प्रकार प्रशासक ने टैंकों के साथ जाकर अधिकार कर लिया।

देशी राज्यों के सभी कार्यकर्त्ता यह मानते हैं कि महात्माजी की हत्या और अलवर के महाराज की दिल्ली में नजरबन्दी ने देशी राज्यों के शासकों को भयभीत कर दिया और उन्होंने अपनी रियासतों के स्वतन्त्र अस्तित्व को खतम करके यूनियन बनाने की स्वीकृतियां दे दीं।

यद्यपि महात्माजी अपने वादे के मुताबिक अलवर नहीं आये परन्तु उनकी आत्मा हमारे साथ सदा रही और रहेगी। उत्तरदायी शासन, जिसकी प्राप्ति के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उन्हें हम अलवर बुलाना चाहते थे वह हमें ही नहीं समस्त देशी रियासतों को प्राप्त हुआ। महात्माजी स्वयं रियासती प्रजा थे। उन्होंने ब्रिटिश भारत के साथ रियासती प्रजा को भी प्रेरित किया और अन्त में अपने प्राणों की आहुति देकर देशी राज्य के लोगों को भी आजाद कर गये। सारा भारत उन्हें अपने मुक्ति दाता के रूप में हमेशा-हमेशा याद करेगा।

तमाम सच्चे और ठोस काम कर्त्ता को अमर बना देते हैं, क्योंकि वे उसकी मौत के बाद भी जिंदा रहते हैं।

१६

गांधीजी के साथ मेरा सम्पर्क

हरिभाई किंकर

गांधीजी देश के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए अखण्ड प्रेरणा-स्रोत थे। मेरा सारा जीवन ही सार्वजनिक सेवा क्षेत्र में बीता है। इस सिलसिले में मुझे अनेक बार गांधीजी के दर्शन करने और उनसे साक्षात्कार करने के सुअवसर प्राप्त हुए और मैं हर बार सेवा की नई प्रेरणा और नया उत्साह लेकर लौटा।

अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन का अष्टम अधिवेशन सन् १९१८ में इन्दौर में हुआ था। गांधीजी सम्मेलन के अध्यक्ष बन कर आये थे। मैं उन दिनों चितौड़ के गांवों में पाठशालाएं चलाता था। उनके खर्चे के लिए मुट्ठी फण्ड इकट्ठा किया जाता था। चितौड़ के कुछ मित्रों के साथ प्रतिनिधि के रूप में सम्मेलन के अधिवेशन में शामिल हुआ। तभी गांधीजी के पहली बार दर्शन हुए। चितौड़ की विद्या प्रचारिणी सभा ने हमको प्रतिनिधि चुन कर भेजा था। मैंने देखा कि गांधीजी हिन्दी के प्रबल हिमायती थे और सारे देश

में उसका प्रचार और प्रसार करना चाहते थे ताकि वह हमारी राष्ट्र भाषा बन सके ।

इन्दौर सम्मेलन के अवसर पर महात्माजी के दक्षिणी अफ्रीका के साथी पं० भवानी दयालजी से परिचय हुआ । वह चितौड़ की विद्या प्रचारिणी सभा के वार्षिकोत्सव की अध्यक्षता करने आये । मैंने उस समय एक गीत बनाया था, जिसका शीर्षक था—'मेवाड़ी भाईयों जागो जागो, आलस त्यागो रैं, नवो युग आयो रैं, आंख्या खोल दो ।' पं० भवानी दयालजी मेरे इस गीत पर मुग्ध हो गये । सन् १९१९ में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था । स्वामी श्रद्धानन्दजी इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे । पं० भवानी दयालजी ने मुझे उनके नाम एक परिचय पत्र दिया । मैं इन्दौर की स्वयं सेवक पार्टी के साथ अमृतसर पहुँचा । मैं स्वामी श्रद्धानन्दजी के पास ही ठहरा । लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी एक ही जगह ठहरे हुये थे । मुझे उसी जगह सेवा के लिए नियुक्त किया गया । गांधीजी से जो लोग मिलने आते थे, उनके मिलने की व्यवस्था करता था । पं० भवानी दयालजी मिलने आये । उनका कार्ड हिन्दी में था । उसे देख कर गांधीजी बोले—"हिन्दी की टांग खूब तोड़ते हो ।" भवानी दयालजी ने तुरन्त उत्तर दिया—"नहीं साहब जोड़ता हूँ ।" इस पर गांधीजी खूब खिलखिला कर हंसे । दक्षिणी अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी का एक मिला-जुला पत्र निकालने के बारे में चर्चा हुई । मैंने अमृतसर में ही सत्याग्रहियों में अपना नाम लिखाया और कांग्रेस का बाकायदा चवन्नी सदस्य बना ।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं सन् १९२० में कलकत्ता की विशेष कांग्रेस और सन् १९२१ में अहमदाबाद कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल हुआ । उनमें गांधीजी असहयोग आन्दोलन के सूत्रधार के रूप में सामने आये । उनके भाषणों में ठंडी आग के दर्शन हुए । उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया था । जनता में एक अजीब जोश और उफान उठ खड़ा हुआ । ब्रिटिश सरकार गांधीजी के तेज को सहन न कर सकी और सन् १९२२ में उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाकर उन्हें छह वर्ष के लिए जेल के सींखचों के पीछे बन्द कर दिया ।

किन्तु जेल में गांधीजी का स्वास्थ्य खराब हो गया और ब्रिटिश सरकार ने उन्हें अवधि समाप्त होने से पहले ही रिहा कर दिया । गांधीजी का अपें-डिसाइटिस का आपरेशन हुआ था । वह स्वास्थ्य-सुधार के लिए बम्बई के उप-

नगर जुहू में समुद्र के किनारे एक बंगले में ठहरे हुए थे। उस समय मैं राज-स्थान सेवा संघ में काम कर रहा था और उसका आजीवन सदस्य बन चुका था। संघ ने राजस्थान में बेगार प्रथा की जांच का काम उठा रखा था और दीनबन्धु एण्डरूज को राजस्थान के दौरे के लिए आमंत्रित किया था। एण्डरूज उस समय गांधीजी के पास जुहू में ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिलने गया तो गांधीजी के भी दर्शन हुए और थोड़ी बातचीत भी हुई। गांधीजी के आशीर्वाद प्राप्त करके मन प्रसन्नता से भर गया।

दीनबन्धु एण्डरूज दोहद भील कांफ्रेन्स की अध्यक्षता करने के लिए जाने वाले थे। मित्रवर पं० बनारसी दास चतुर्वेदी के सुझाव पर मैं आवश्यक प्रबन्ध करने के लिए दोहद आया। दीनबन्धु का पत्र पढ़कर बापा के नाम ले गया था, वह उन्हें दिया। बापा उस समय दोहद में भीलों के लिए एक बड़ा छात्रावास चला रहे थे। दीनबन्धु के ठहरने की योग्य व्यवस्था की। दूसरे दिन दीनबन्धु दोहद पहुँचे तो वह भीलों से बड़े प्रेम पूर्वक भारतीय ढंग से गले लग कर मिले। रात्रि को रोमन में लिखा अपना भाषण मुझे सुनाया। अगले दिन दीनबन्धु भीलों के घर देखने गये। बापा भी साथ थे। भीलों की गरीबी हृदय-द्रावक थी। किसी घर में दो दिन तो किसी में चार दिन से अधिक खाने लायक अनाज मौजूद नहीं था। दीनबन्धु की सादगी, आत्मीयता और दरिद्रनारायण की चिन्ता को देख कर मैं बहुत प्रभावित हुआ।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९३२ में कांग्रेस के आन्दोलन के सिलसिले में मैं और मेरी धर्मपत्नी महिमा देवी दोनों जेल गये। जेल से छूटने के बाद कुछ समय हरिजन सेवा का काम किया। इसके बाद हम पति-पत्नी ट्रेनिंग लेने के लिए सत्याग्रह आश्रम साबरमती चले गये। वहां अढ़ाई वर्ष रहने का कार्यक्रम था, किन्तु गांधीजी ने बीच में ही आश्रम को तोड़ दिया और हम वापस राजस्थान में चले आये। इस अर्से में एक बार अहमदाबाद में और एक बार बम्बई में मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। गांधीजी कार्यकर्ताओं की समस्याओं को बड़े ध्यान से सुनते और उनका बराबर मार्ग दर्शन करते थे।

❀ ❀ ❀ ❀

महात्माजी हरिजन आन्दोलन के सिलसिले में प्रवास पर निकले थे। वह अहमदाबाद से मारवाड़ जंकशन होते हुए अजमेर पहुँचे थे। अजमेर का कार्यक्रम निबटा कर ब्यावर आये, यहां सार्वजनिक सभा का आयोजन था। ब्यावर से मारवाड़ जंकशन जाते हुए करांची के लिए प्रस्थान किया। माबाड़र

जंकशन पर आते समय और जाते समय गांधीजी और उनकी पार्टी के लिए भोजन की व्यवस्था मेरे जिम्मे थी। गांधीजी नमक-मिर्च का सेवन नहीं करते थे। उनके लिए लौकी की उबली हुई सब्जी और बकरी के दूध का प्रबन्ध किया और ब्यावर में एडवर्ड मील के मालिक राय साहब चम्पालालजी के बंगले पर गांधीजी और उनकी पार्टी को ठहराया गया था। वहां भोजन की व्यवस्था दूसरों के जिम्मे थी, किन्तु ऐन वक्त पर मुझ से सब कुछ करने को कहा गया। मैंने तुरत-फुरत कई बहिनों की मदद से सारा इन्तजाम किया। उस समय मारवाड़ जंकशन से जोधपुर स्टेट की रेलवे चलती थी। तीसरे दर्जे का एक पूरा डिब्बा गांधीजी और उनकी पार्टी के लिए रिजर्व-सा कर दिया गया था। लौटते समय उसी डिब्बे में सबको भोजन कराया। यद्यपि मैंने कचरे की बाल्टी डिब्बे में रख दी थी, किन्तु कुछ लोगों ने पत्तल दोने पीछे की लाइन पर फेंक दिये। गांधीजी सफाई की तरफ बड़ा खयाल रखते थे। उनकी निगाह इस गन्दगी की ओर गई और उन्होंने मुझे टोका। मैंने उसी समय कचरा बाल्टी में उठाया और यथास्थान डाला। मैंने अनुभव किया कि हमारे देश में पढ़े-लिखे लोग भी सार्वजनिक स्वच्छता का कितना कम खयाल रखते हैं। किन्तु गांधीजी को सार्वजनिक गन्दगी तनिक भी सह्य नहीं थी।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९३५ में गांधीजी एक बार फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की अध्यक्षता करने इन्दौर पधारे। मैं भी उसी समय इन्दौर पहुंच गया था। मैंने इस सम्मेलन के अवसर पर भीलों का एक शहनाई बैण्ड बुलाया। जब भी महात्माजी आते, उनके स्वागत में यह बैण्ड बजता। यह सस्ता देशी वाद्य था और उसकी धुन बड़ी मोहक थी। गांधीजी ने इस बैण्ड को बहुत पसन्द किया।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं पिछले कई वर्षों से समाज-सुधार के सिलसिले में घूमता था। हैदराबाद का भ्रमण करते हुए मध्य प्रदेश में पहुंचा। उसी समय सेठ जमनालालजी बजाज के भतीजे राधाकृष्णजी बजाज का वर्धा में अन्तर्जातीय विवाह हुआ। एक और विधवा-विवाह भी हुआ था। इस विवाह में गांधीजी के आखिरी बार दर्शन किए। सरदार पटेल और राजेन्द्र बाबू भी उसमें मौजूद थे। विवाह बड़ी सादगी से हुआ। मुझे खुशी है कि सामाजिक क्रान्ति के इस अनुष्ठान में मैं शामिल हो पाया।

सार्वजनिक जीवन में अनेक मैंने उतार-चढाव देखे हैं। जेल के कष्टों के अलावा आर्थिक कठिनाइयों का भी सामना किया है। यह शरीर अब थक गया है किन्तु लोक-संग्रह और लोक-सेवा की निष्ठा ज्यों की त्यों बनी है। गांधीजी ने सार्वजनिक सेवकों को स्वैच्छिक गरीबी और अनासक्ति का पाठ पढ़ाया जो विपरीत परिस्थितियों में भी बड़ा सहारा देता है। जब गांधीजी का हंसमुख चेहरा, उनका प्रेमालु स्वभाव, स्मृति पटल पर उभरता है तो बड़ी शान्ति और संतोष मिलता है। गांधीजी के दर्शनों और साक्षात्कार की मधुर स्मृतियां हृदय पटल पर सदा सर्वदा अंकित रहेंगी। उनसे जो सीखने को मिला, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। अब तो यही इच्छा है कि समाज की सेवा करते करते यह जीवन खप जाए। ❀

❀ हरिभाई की यह अन्तिम इच्छा पूरी हुई और वह इस लेख के छपने से पहले ही संसार से विदा हो गये। —संपादक

घृणा सदा घातक होती है, प्रेम अमर होता है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि घृणा को मिटाये और प्रेम को बढ़ाये।

१७

जीवन परिवर्तन

चन्द्रभानु शर्मा

सन् १९२० के अन्त की और १९२१ के आरम्भ की बात है। नागपुर के ऐतिहासिक कांग्रेस के अधिवेशन के बाद गांधीजी बम्बई आये। अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव नागपुर अधिवेशन में स्वीकृत हुआ था। स्कूलों, कालेजों, कोर्ट-कचहरियों, कौंसिलों, आदि के बहिष्कार का मुख्य कार्यक्रम बना था। बम्बई में कालेजों के विद्यार्थियों की सभायें हो रही थीं। मारवाड़ी विद्यालय के मैदान की एक सभा में उत्सुकतावश मैं भी गया। वहां गांधीजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी के व्याख्यान सुनने का अवसर मिला। गांधीजी को नज़दीक से देखने, सुनने और थोड़ी बात करने का मेरा वह पहिला अवसर था। स्वामी श्रद्धानन्दजी का प्रभाव मुझ पर गांधीजी से कहीं अधिक पड़ा। व्याख्यानों के बाद विद्यार्थी अपने-अपने स्कूलों व कालेजों को छोड़ने की घोषणा करने लगे। उसी बीच गांधीजी ने चाहे उससे बात करने की घोषणा की। मैंने बिना किसी खास उद्देश्य के अवसर का लाभ लेना चाहा और गांधीजी के सामने पेश हुआ। मुझे याद है कि मैंने गांधीजी से इतना कहा कि कामर्शियल कालेज का मैं विद्यार्थी हूं और कामर्स

के द्वारा भी, व्यवसाय-उद्योग के द्वारा देश की सेवा की जा सकती है । फिर कालेज क्यों छोड़ा जाय ? गांधीजी ने कहा कि मुझे देश-सेवकों की जरूरत है और जो सेवा देश को इस समय चाहिये वह कालेज छोड़े बिना नहीं हो सकती । बस, इतनी बात के बाद मैंने अपना नाम दिया और उस समय के रिवाज के अनुसार जोर की तालियां बजीं और मेरा नाम कालेज छोड़ने वालों में लिखा गया । खूब इच्छा होते हुए भी स्वामी श्रद्धानन्दजी से बात करने का अवसर नहीं मिला । जहां तक मुझे याद है श्री शंकरलाल बैंकर, विठ्ठल-भाई पटेल और जमनादास मेहता तथा श्री गंगाधर राव देशपांडे भी उस रोज उपस्थित थे और कुछ अन्य विद्यार्थियों के साथ मुझे भी गांधीजी ने यह आदेश दिया कि मैं खास तौर से श्री शंकरलाल बैंकर और श्री गंगाधरराव से सम्पर्क रखूं । कालेज छोड़ने वाले विद्यार्थियों की व्यवस्था ठाकुर-द्वारा बम्बई में एक धर्मशाला में हुई थी । वहां रहने, खाने-पीने तथा चर्खा सीखने की भी व्यवस्था की । कुछ ही दिनों बाद अंधेरी-कुर्ला रोड पर सेठ सीताराम पोद्दार के मकान और जमीन पर एक आश्रम की स्थापना हुई । आरंभ में इसका नाम 'स्वराज्य आश्रम' तथा बादमें 'साधक आश्रम' पड़ा । कुल मिला कर करीब ८० विद्यार्थी इस आश्रम के लिए चुने गये और उनमें से मैं भी एक था । इस आश्रम के आचार्य श्री केशव देशपाण्डे बड़ौदावाले नियुक्त हुए और व्यवस्थापक श्री पुण्डलीक काठघरे थे । आरम्भ में कुछ दिन काकासाहब कालेलकर, श्री गंगाधरराव देशपाण्डे भी इस आश्रम में रहे । बाद में श्री गुलजारीलाल नन्दा, प्रोफेसर स्वामी नारायण, लाला जुगलकिशोर तथा प्रोफेसर भंसाले भी आश्रम में आकर रहे ।

आश्रम की स्थापना के लगभग दो महीने बाद गांधीजी अपने उस समय के तूफानी दौरे के सिलसिले में बम्बई भी आये और एक दिन और एक रात आश्रम में रहे । गांधीजी ने सामूहिक प्रवचन व व्याख्यान के सिवाय आश्रमवासियों से अलग-अलग भी बातें की और उनकी उपस्थिति में ही आश्रम का नाम 'स्वराज्य आश्रम' के बदले 'साधक आश्रम' रखने का निर्णय लिया गया । यह निर्णय लेते समय जो व्याख्यान गांधीजी ने दिया वह इस प्रकार था :—

आश्रमवासियों को मैं अपनी रिजर्व फोर्स मानता हूं । स्वतंत्रता लेने और अंग्रेजों से लड़ने के लिये मैं उनका उपयोग नहीं करना चाहता । स्वतंत्रता तो मैं जनता के बल पर ही ले लूंगा । आश्रमवासियों की जरूरत तो स्वतंत्रता के बाद पड़ेगी । स्वतंत्रता लेना मुझे इतना कठिन नहीं दिखाई दिया जितना स्वराज्य को चलाने का काम होगा और उसके लिये अत्यधिक

मजे-तपे और साधन-सम्पन्न लोगों की जरूरत होगी। मैं चाहता हूं कि आश्रम वासी उसी साधना में लगें और इसलिये मैं इस आश्रम का नाम साधक आश्रम रखना अधिक पसन्द करता हुं और यहां के संचालकों और आचार्य श्रीं देशपांडे सब से विचार विनियम करने के वाद मैंने इस आश्रम का नाम साधक आश्रम रखने का निश्चय किया है। यहां के आश्रमवासियों को मैं इस चलने वाले राजनैतिक कार्यक्रमों से दूर रखना चाहता हूं। उन्हें तो एक लम्वी साधना तथा रचनात्मक कार्यक्रमों में से गुजरना होगा।"

मुझे याद है कि गांवीजी के इस वक्तव्य का असर आश्रमवासियों पर अनुकूल के वजाय प्रति कूल पड़ा। जो लोग कालेज छोड़कर आये थे और एक वर्ष के भीतर ही स्वराज्य लेने और उसी के कार्यक्रम में भाग लेने की कल्पना थी, वह खूव निराश हुए और हममें से कई लोग गांधीजी के जाने के वाद वापस या तो घर चले गये या वापस कालेजों में। जो लोग आश्रम में वच रहे उनमें से मैं भी एक था। गांवीजी जव जव वम्वई अपने दौरे के सिलसिले में आते थे तव वह आश्रमवासियों को अपने निवास स्थान मणि-भवन में वुलाया करते थे और हम सव मिलकर वहां जाते थे। उस समय अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम में से भीं गांवीजी हम लोगों के लिए वातचीत के लिए कम से कम एक घन्टा निकालकर रख लेते थें और जो चाहे वह अलग भी वात कर सकता था। हमारे में से ९–१० आश्रमवासियों को उन्होंने वम्वई में उस समय के कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेने के लिए चुना और उनके रहने आदि की व्यवस्था भी शंकरलाल वैंकर कें निवास स्थान पर की गई। उस समय के कार्यक्रमों में तिलक स्वराज्य फण्ड एकत्र करना, चर्खे सिखाने के क्लास चलाना, कांग्रेस के सदस्य वनाना और खादी वेचना मुख्य थे। खादी वम्वई में अप्राप्तप्राय थी। इन ही दिनों जव गांवीजी को यह पता लगा कि मैं जयपुर का रहने वाला हूं तो उन्होंने मुझे जयपुर जाकर खादी का काम करने का आदेश दिया और शंकरलाल भाई से कहा कि उस काम के लिए आर्थिक व्यवस्था करें। मुझे एक रोज एक हजार का एक नोट देकर यह आदेश दिया कि जयपुर जाकर जो शुद्ध खादी गांवों में मिले वह खरीद करूं और आगे शुद्ध खादी अधिक प्रमाण में वने इसकी व्यवस्था भी करूं। इस प्रकार मैं १९२१ में ही राजस्थान के खादी के काम में प्रवृत हुआ। उस समय मनोहरपुरा, अमरसर, चौमू, सामोद, आदि गांवों में से तथा आस-पास के देहात में सही अर्थ में शुद्ध खादी वहुत थोड़ी मात्रा में उपलव्ध थी। अधिकतर खादी के ताने में एक सूत मिल का होता था और इस प्रकार की खादी के लिये गांधीजी ने तथा श्री शंकरलाल भाई ने सख्त मनाही करदी थी। इसलिये मेरा काम वहुत ही धीमी

गति से और अल्प परिमाण में चला । एक हजार रूपयों की खादी एकत्र करने में भी तीन चार महीने का समय लग गया । इस प्रकार खादी का एक लम्बा इतिहास और कार्यक्रम चला । उन्हीं दिनों वारडोली सत्याग्रह का कार्य-क्रम वना और वहुत अनुनय-विनय करने के वाद गांधीजी ने मेरा नाम उस सत्याग्रह में भाग लेने वालों की सूची में लिख लिया । चौरीचौरा काण्ड के वाद वह सत्याग्रह स्थगित रहा और निराशापूर्ण एक नई हवा देश में चली । गांधीजी थोड़े ही दिन वाद गिरफ्तार हुए और सभी काम और कार्यकर्ता अस्तव्यस्त हो गये ।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९२४ में गांधीजी उनके पेट के एपेन्डीसाइटिस के आपरेशन के वाद जुहू आकर ठहरे । देश की राजनीति ने खूब रंग वदला था । कांग्रेस में दो दल, अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी, वन गये थे । उसमें अपरिवर्तन-वादियों के उस समय के नेता श्री राजगोपालाचार्य थे । परिवर्तनवादियों में श्री चितरंजनदास वावू, पंडित मोतीलाल, लाला लाजपतराय, विठ्ठल-भाई पटेल, मालवीयजी और अन्य वड़े-वड़े नामी नेता थे । गांधीजी की अनुपस्थिति में ही यह सव हुआ था । उनके वाहर आ जाने पर अपरिवर्तन-वादी लोगों और जनता ने यह सोचा था कि अव हमारा वल वढ़ेगा और कांग्रेस में हमारा वहुमत होगा । परन्तु गांधीजी ने दूसरा ही निर्णय किया । उन्होंने कांग्रेस सम्पूर्णतः परिवर्तनवादियों के हाथ में दे दी और इस प्रकार स्वराज्य पार्टी की स्थापना हुई । इन्हीं दिनों गांधीजी ने जुहू में ही अपने सव मुख्य साथियों एवम् अनुयाइयों को एकत्र किया और चर्खा संघ की स्थापना की । अन्धेरी वाले आश्रम के लोगों को भी उन्होंने वुलाया । इस वीच मेरा आश्रम से सम्वन्ध तो अवश्य रहा परन्तु मैं आश्रमवासी नहीं रहा था । खादी का काम वड़े परिमाण में और व्यावसायिक रूप में चल निकला था । उसे छोड़कर मैंने रुई का धन्धा और मारवाड़ी वाजार में दलाली का व्यवसाय शुरू कर दिया था । गांधीजी ने चूंकि सभी पुराने आश्रमवासियों को वुलाया था इसलिए मैं भी मिलने गया । सभी से अलग-अलग जीवनचर्या पूछी गई और मैंने भी आद्योपान्त अपनी आत्मवीती सुनादी । खूव धैर्य और शांति के साथ उन्होंने पूरी वात सुनी । मुझे आज भी याद है कि वह गुजराती में इस प्रकार वोले–"तमे तो व्यभिचारी थई गयो ।" मैं जव अशान्तचित्त होकर उनकी ओर देखने लगा तो वह आगे वोले–"जे एक नारी मुकी वीजी नारी पासे जाये तो व्यभिचारी । एटले तमे एक प्रवृत्ति मूकी वीजी प्रवृति मां पड्या एटले व्यभिचारी थया ने ?" मैंने कहा–"वापू मैं क्या करूं ।" जवाव मिला–

"तुमको राजस्थान में खादी का काम सौंपा गया था तुम वही करो।" इस प्रकार १९२५ के आरम्भ में अचानक सारा कारोबार बन्द करके मैं जमकर खादी का काम करने के लिए जयपुर आ गया। इस बार आने के पूर्व गांधीजी के कहे अनुसार काका विट्ठलदासजी जेराजानी से दीक्षा लेकर, यानि किस प्रकार कैसा काम किया जाय इसकी विगतवार चर्चा करके राजस्थान आया। १९३० तक बराबर खादी के काम के साथ हरिजन सेवा और अप्रत्यक्ष रियासती राजनीति का काम करता रहा। उन्होंने ही एक बार बम्बई में मुझे जमनालालजी से मिला दिया और उनकी सीधी देखरेख और मार्ग-दर्शन और सहायता से राजस्थान में काम करता रहा।

❀ ❀ ❀ ❀

१९२९ की अखिल भारतीय कलकत्ता कांग्रेस में शामिल हुआ और जहां गांधीजी ठहरे थे वहीं ठहरा। राजस्थानी राजनीति और रचनात्मक कार्यों की उस समय जो विषम स्थिति थी उस पर लम्बी चर्चा करने का मौका मिला। गांधीजी की निश्चित मान्यता थी कि जो लोग रचनात्मक कामों में पड़े हैं, मुख्यतः देशी रियासतों में, उन्हें राजनीति से मनसा वाचा कर्मणा दूर रहना चाहिए। यह बात मुझे बहुत जंची नहीं और इसलिए चर्खा संघ के माध्यम से काम न करते हुए स्वतंत्र रूप से ही काम करने का निश्चय किया। १९३० में नमक सत्याग्रह का निश्चय हुआ और बापू ने डांडी कूच आरम्भ कर दिया। मैं उनसे भड़ौच के पड़ाव में जाकर मिला और आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने की स्वीकृति चाही। उन्होंने जयपुर या वहां के आस-पास कुछ नहीं करने की आज्ञा दी। कूच में साथ ले लेने की बात भी उन्होंने स्वीकार नहीं की। अत्यधिक आग्रह देखकर अजमेर जाकर काम करने की स्वीकृति उन्होंने दे दी। उस समय के खादी व रचनात्मक कार्यकर्ताओं में मैं अकेला ही था जो सबको छोड़कर अजमेर जाकर आन्दोलन में शरीक हुआ। अजमेर से ब्यावर तक की पद यात्रा कुछ अन्य साथियों के साथ हुई और ब्यावर पहुंचने के बाद नमक सत्याग्रह और राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के फलस्वरूप गिरफ्तारी और दो वर्ष की जेल हुई। वहां से फिर खादी काम से सीधा सम्बन्ध नहीं रहा।

जेल में श्री हरिभाऊ उपाध्याय, रामनारायण चौधरी, पथिकजी, अर्जुनलाल सेठी व अन्य नये-पुराने नेताओं के निकट सम्पर्क में आने और रहने का अवसर मिला। जेल में से बाहर निकलने के बाद गांधी आश्रम, हटूंडी (अजमेर) के व्यवस्थापक का भार मुझे सौंपा गया और दूसरा

१९३१-३२ का आन्दोलन शुरू होने के समय वही काम करता रहा और गांधी सेवा संघ का आजीवन सदस्य बना लिया गया। उन दिनों गांधीजी के निकट सम्पर्क में आने का कई वार अवसर मिला। दूसरे आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लेने पर ६ महिने की सजा हुई। अजमेर जेल से एपेन्डीसाइटिस की बीमारी लेकर बाहर निकला और हरिभाऊजी और मैं दोनों ही बम्बई के के०ई०एम० अस्पताल में भरती हुए। मेरा आपरेशन हुआ और उनका भी एक लम्बा उपचार होता रहा। इसी बीच हरिजन आन्दोलन की रूपरेखा बनी और हरिजन संघ की स्थापना हुई। मैं यरवड़ा में ही जाकर उनसे मिला। श्री रामनारायण चौधरी को ठक्कर बापा ने राजस्थान का हरिजन सेवक संघ का काम सौंपा। बापू ने मुझे भी उन्हीं के साथ हरिजन कार्य करने की आज्ञा दी। उन दिनों का हरिजन आन्दोलन और राजस्थान में जो अद्भुत काम हुआ उसकी सभी दूर प्रशंसा हुई और गांधीजी पर भी उसकी अच्छी छाप पडी।

इन्हीं दिनों राजस्थान सेवक मंडल की स्थापना हुई और रामनारायणजी चौधरी, शोभालालजी गुप्त, माणिक्यलालजी वर्मा इत्यदि राजस्थान के मंजे-तपे कार्यकर्ताओं के साथ मैं भी उसमें था और सन् १९३५ तक इसी में रहा। गांधीजी के वर्धा व सेवाग्राम में चले जाने के बाद और राजनीतिक वातावरण में कई प्रकार के उतार-चढाव आने से मैंने अपना कार्य-क्षेत्र राजस्थान के बजाय बम्बई बना लिय। इन दिनों श्री जयनारायण व्यास भी बम्बई आ गये और हम लोगों ने मिलकर 'अखण्ड भारत' नाम का एक हिन्दी दैनिक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया। भाईजी जमनालालजी ने मेरी यह नई प्रवृति ठीक नहीं समझी और आग्रह-पूर्वक कई वार सलाह दी कि मुझे राजस्थान में ही बैठकर गांधीजी का बताया हुआ काम करना चाहिये। बाबा नरसिंहदासजी, पथिकजी और जयनरायणजी के साथ जो नजदीक का गठ-बन्धन रहा उसने गांधी विचार-धारा के लोगों से मुझे काफी दूर कर दिया। फिर राजस्थान की सक्रिय कांग्रेस की राजनीति में पड़ा और १९३७ की त्रिपुरी कांग्रेस में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य के नाते उसमें भाग लिया। गांधीजी इस अधिवेशन में नहीं आये थे। श्री वल्लभभाई से बम्बई में खूब निकट का सम्बन्ध बन गया था परन्तु त्रिपुरी में उनके आग्रह करने पर श्री गोविन्द वल्लभ पन्त वाले प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करना स्वीकार नहीं करने पर उनका कोप-भाजन बना। इसके बाद तो मैं कांग्रेस और गांधी विचारधारा से थोड़ा दूर चला गया।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् १९४५–४६ में हरिजन वस्ती में जब गांधीजी से जाकर मिला और सारा पुराना इतिहास उनको वताया तो उन्होंने इतना ही कहा कि इस बीच तो तुम ही क्या जिन पर मेरा वहुत अधिक विश्वास, प्रेम और आत्मयीता रही, वे भी भटक गये। अब हमें फिर से गिनती गिननी होगी। उस समय पथिकजी भी गांधीजी से मिलने आये थे और मेरे समक्ष ही गांधीजी ने उनसे कहा कि आप लोगों ने जिस निष्ठा और त्याग के साथ विजोलियां में काम किया उसी प्रकार काम करने का युग फिर से आया है। "मैं निष्ठावान कार्यकर्ताओं/की खोज में हूं परन्तु जो स्थिति पैदा हुई है उसमें अन्धकार और निराशा का अनुभव कर रहा हूं। नये कार्यक्रम में पता नहीं कौन साथ देवे।" मुझे याद है कि पथिकजी पर गांधीजी के इस कथन का वहुत वडा असर हुआ और उन्होंने कहा—"मैं सदा विरोधी रहा हूं। आपके कार्यक्रमों और रीति-नीतियों से मेरा कभी मेल नहीं वैठा। परन्तु आप मुझे अपने आगे के साथियों में पूरी तरह मानकर चल सकते हैं।" गांधीजी और पथिकजी की वार्तालाप का मेरे दिल और दिमाग पर भी क्रांतिकारी असर पड़ा। पथिकजी के प्रति आरम्भ से ही मेरी आस्था थी और घनिष्टता भी। उन्होंने इस वार मनसा वाचा कर्मणा अपने आप को गांधीजी के सुपुर्द किया और मुझ से भी यही चाहा। विधि को कुछ और ही मंजूर था। गांधीजी चले गये और थोड़े दिन वाद पथिकजी भी।

भूल, भारी भूल भी, करना मानवीय है; लेकिन तभी जब कि उसे सुधारने, फिर से न करने, का निश्चय हो।

१८

साबरमती आश्रम मे

बाबा लक्ष्मणदास

पू० बाबू हुक्मीचन्दजी सुराना की कृपा से सन् १९१९ में २१ वर्ष की आयु में सत्याग्रहाश्रम साबरमती पहुंच पाया था। उस समय मेरे जीवन का प्रारम्भ था।

मैंने एक पत्र बापूजी को लिखा था उसका उत्तर यरवड़ा जेल में मुझे मिला था। उत्तर मेरे ब्रह्मचर्य सम्बन्धी खानपान के केवल स्थूल प्रयोगों के विषय में था। बापूजी ने लिखा था :

चि: लक्ष्मनदास,

खान-पान के प्रयोगों से ही ब्रह्मचर्य की सफलता की आशा नहीं रखनी चाहिए। खान-पान के प्रयोग तो हो ही। उन प्रयोगों के साथ मन का सहयोग भी चाहिए और राम नाम का जागरूक स्मरण भी।

कब्ज के लिए कभी-कभी एनिमा का उपयोग करो, उपवास के साथ। तीन उपवास के बाद पत्तीदार केवल उबाला हुआ साग दिन में एक बार, सवेरे

और शाम को २० तोला धारोष्ण दूध गाय का बिना शक्कर का, इस प्रकार पांच दिन के बाद धीरे धीरे अन्नाहार लो।

बापू का आशीर्वाद

उस समय बापू आश्रम के छोटे-छोटे कामों में भी हाथ बंटाने का खूब आग्रह रखते थे। एक बार वह सबके साथ रसोड़े में शाक काट रहे थे। सम्पर्क साधने की इच्छा से मैं भी रसोड़े में जाकर उनके साथ कुम्हड़े के शाक के लम्बे-लम्बे टुकड़े करने लगा। उन लम्बे टुकड़ों का बापू ने छोटे-छोटे टुकड़े करते हुए पूछा—तमे क्यां थी आव्या छो ? मैंने हिन्दी में जवाब दिया—राजपूताना से। उन्होंने आगे कहा—राजपूताना मां किया गांम थी ? मैंने कहा—बांसवाड़ा से। बापू—बांसवाड़ा मां खादीनी प्रवृत्ति चाले छे के ? मैंने कहा—अभी नहीं। हम यहां से सीख कर जायेंगे तब शुरू करेंगे। तमारूं नाम शुं छे ? बाबा लक्ष्मनदास। ठीक, त्यारे लक्ष्मनदासजी खादीनी साथे साथे आश्रम जीवननी साधना पण करता रहेजो। मगनलाल, तमे आ भाइने तमारा सम्पर्क मां राखजो। पुनः मुझे कहने लगे—अमारूं गुजराती समझी शको छो के ? हां बापू, समझ तो लेता हूँ। हमारी बोली भी गुजराती की अपभ्रंश ही है। मुझे शुद्ध गुजराती अच्छी लगती है। उसे मैं शीघ्र ही सीख लेने की कोशिश कर रहा हूं। उसके बाद सन् १९२१ में दा सा. हरिभाऊजी के साथ 'हिन्दी नव-जीवन' विभाग में काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी देख-रेख में गुजराती का हिन्दी अनुवाद भी करके देता था। इस प्रकार गुजराती सीखने का मौका मिल गया।

❀ ❀ ❀ ❀

एक बार आश्रमवासियों में से किसी के दो बच्चों को बुखार आ गया। उनको अन्नाहार छुड़वा मौसम्बी के रस पर रखा गया। इन दिनों असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी बापू को खूब काम रहता था फिर भी स्वयं समय निकाल कर उन बच्चों को देखने जाते, मीठी-मीठी बातों से उन्हें हंसाते और अपने हाथों से मौसंबी का रस निकाल कर उन्हें पिलाते थे। मैंने पूछा—बापू आपको बड़े-बड़े आदमियों को मिलने का समय मुश्किल से मिलता है, ऐसी हालत में बच्चों के लिये समय कैसे मिल जाता है। बापू ने कहा—बच्चे तो मेरे परम मित्र हैं। उन बच्चों की ओर अभिमुख होकर कहा—केम, खरी बात छे ने ? एक बच्चे ने हंसकर कहा—हाँ खरी बात छे बापू। बापू और दोनों उस बच्चे के साथ हंस पड़े। किन्तु एक बच्चा आयु में कुछ छोटा था, तुरन्त रो पड़ा। बापू ने उसे ढाढस दिया और छाती से लगाया। उसको चूम कर राजी किया और वापस लौट गये।

मैं आश्रम में ६ महिने ही रहा हूँ। 'नव जीवन' कार्यालय में १४ महिने। शेप बापू के विचार पढ़े हैं। उन पर मनन भी किया है और आचरण तो बहुत कम कर पाया हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरी ४५ वर्षीया पुत्री चि: वसंती सत्याग्रहाश्रम विसर्जन के पहले आश्रम में ही थी। बापू यरवड़ा जेल से छूट कर आये ही थे। एक दिन सायंकाल को बालकों के साथ घूमने निकले। साथ ही बच्चियों में से दो बच्चियों के कंधों पर हाथ रख कर चल रहे थे। पीछे-पीछे चि: वसंती रोती हुई सिसक रही थी। सिसकने की आवाज सुनकर बापू ने पूछा—आ कोण रोई रह्यूं छे। उस समय के मंत्री श्री नारायणदास भाई गांधी ने कहा—आ छोकरी। बापू ने पूछा—केम। नारायणदास भाई गांधी ने कहा—आपे ऐना कांधा ऊपर हाथ नहीं मूक्यो ते थी। बापू ने तुरन्त अपने हाथ से उसे पीछे से आगे खेंच ली और कहा—हवे तो राजी थई गई ने। वसंती ने हंस दिया। साथ ही दूसरी बालिकाओं ने भी हंस दिया। कुछ देर तक हंसने का ही वातावरण रहा। बापू ने पुनः कहा—आज नो दिवस बाल हास्य दिवस छे।

मानव-सेवा के काम में, राजनैतिक मतभेदों और संघर्षों के बावजूद, सबको एक होना चाहिए।

१६

असहयोग आन्दोलन की याद

नृसिंह देव सरस्वती

सन् १६१५ में हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर मुझे विश्व-वंद्य वापू (उस समय मिस्टर गांधी) को हाथी पर सवार करा के भारामल के बाग में स्थित महाविद्यालय ज्वालापुर के केम्प में लाने का पुनीत अवसर मिला। उन दिनों मैं ज्वालापुर महाविद्यालय और आर्य विद्वत् सभा का सदस्य था। रौलट कानून के विरोध में जब आंदोलन शुरू हुआ तो खुले रूप से राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। अगस्त सन् १६२ में नासिक कुम्भ से बापूजी, जमनालालजी और सेठीजी के साथ लोकमान्य तिलक की शव यात्रा में शामिल हुआ। मैंने २२ सितम्बर १६२० को चतुर्थ आश्रम ग्रहण किया। उसके बाद कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में और नागपुर कांग्रेस में शामिल हुआ। गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार से असहयोग का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। जिसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। सन् १६२१ में मौलाना शौकत अली और अन्य खिलाफत वालों के साथ असहयोग आन्दोलन के सिल-

सिले में दक्षिण भारत की यात्रा की । किन्तु बापू की आज्ञा से अजमेर लौट आया और प्रान्तीय कांग्रेस के मंत्री और जिला कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर रह कर कार्य करने लगा । सन् १९२२ में मैंने लोगों को खादी पहनने की प्रेरणा देने के लिए ४५ दिन का उपवास किया । इसके फलस्वरूप बापू स्वयं अजमेर आए और उन्होंने अपनी आंखों से ४० हजार खादी-धारी व्यक्तियों को एक वृहदायोजन में देखा और उस समय मेरा उपवास भी खुलवाया । असहयोग आंदोलन के सिलसिले में काफी घूमना पड़ा और परिश्रम करना पड़ा । मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया था । अतः स्वास्थ्य-लाभार्थ जयपुर रहने का निश्चय किया । यहां पहले से चल रहे देवर्षि आश्रम के द्वारा संस्कृत प्रचार का काम करने लगा । असहयोग आंदोलन में बापूजी की तेजस्विता के जो दर्शन हुए उसने मुझे काफी प्रभावित किया और मैं देश के स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ा । उन दिनों की मधुर स्मृतियां अब भी मेरे हृदय में सुरक्षित हैं । उन दिनों राष्ट्र-प्रेम और देशभक्ति का जो उफान आया था वह हृदय को आज भी उद्वेलित कर देता है ।

गलत बात कहने या बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने से एक अच्छा मामला भी बिगड़ जाता है ।

२०

बापू ने मेरे मार्ग को नया मोड़ दिया

ज्वालाप्रसाद शर्मा

वह भी क्या जमाना था। नौजवान देश के लिये हथेली पर जान रख कर वलि-पथ के पथिक वन रहे थे। हर समय एक ही वात की वुन थी और वह यह कि क्रान्ति होनी चाहिये। किसी अंग्रेज अफसर को मार डाला जाय, किसी खजाने को लूट लिया जाय या कहीं फिरंगी की नींद हराम कर दी जाय। सिर्फ इसलिये कि अंग्रेजों को यह अहसास रहे कि यह एक जिन्दा देश है और उन्हें यहां अव वर्दाश्त नहीं किया जायगा। एक से दो जवान जहां भी एकत्र होते तो वातों का एक ही सिलसिला शुरू होता और क्रान्ति की कोई योजना वन जाती। हमारी पीढ़ी पूरी दीवानगी के साथ आजादी की लडाई लड़ रही थी।

दूसरी अ र हमारी कुछ वरिष्ठ पीढ़ी महात्माजी के नेतृत्व में युद्धरत थी। लक्ष उसका भी यही था जो हमारा था, लेकिन तरीका हमसे

विल्कुल भिन्न था। वह आतंक और हिंसा के रास्ते को अच्छा भी नहीं समझते थे। महात्माजी जितने जोर-शोर से आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे उससे भी कहीं ज्यादा दम-खम के साथ वह अहिंसा का प्रचार कर, रहे थे। 'यंग इन्डिया' के ११-८-१९२० के अंक में उन्होंने लिखा था:-

"यदि भारत तलवार की नीति अपनाये तो वह क्षणिक-स्थायी विजय पा सकता है। लेकिन तव भारत मेरे गर्व का विषय नहीं रहेगा। मैं भारत की भक्ति करता हूं क्योंकि मेर पास जो कुछ भी है वह सव उसी का दिया हुआ हैं। मेरा पूरा विश्वास है कि उसके पास सारी दुनिया के लिए एक सन्देश हैं। भारत के द्वारा तलवार का स्वीकार मेरी कसौटी की घड़ी होगी। मैं आशा करता हूं कि उस कसौटी मैं खरा उतरूंगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं में मर्यादित नहीं है। उसमें मेरा जीवन्त विश्वास हैं। और मेरा जीवन अहिंसा धर्म के पालन द्वारा भारत की सेवा के लिये समर्पित है।"

हमारे खून की गरमी तथा आजादी के लिये मर मिटने की आकांक्षा महात्माजी के अमूल्य उपदेशों का हमारी पीढ़ी पर कोई असर नहीं होने देती थी। हम अपनी राह पर थे और वह अपने मार्ग पर। इसी दौरान गांधीजी के कई पत्र मुझे मिले। उनके प्रति एक खिचाव सा अनुभव हुआ। यह वात है लगभग सन् १९३५-३६ की है। मैं दिल्ली की जेल में था। महात्माजी से भेंट हुई। महात्माजी ने वड़ी आत्मीयता से कहा: "हिंसा का वह मार्ग त्याग दो"। मुझे वहुत बुरा लगा। मेरे मुंह से वरवस ही निकल पड़ा: "महात्माजी आपके रूप में आज मुझे औरंगजेव दिखाई दे रहा हैं।" मुझे आश्चर्य हुआ कि महात्माजी पर मेरे कटु-शब्दों का कोई उल्लेख-नीय प्रभाव नहीं हुआ। उनके शान्त एवं सौम्य चेहरे की रेखाओं में कोई परिवर्तन नहीं आया। वल्कि ऐसे भाव मुझे स्पष्ट दिखलाई दिये जो शायद मुझ से कह रहे हों—ध्येय के प्रति कट्टर आस्था के साथ सही मार्ग भी तो जरूरी है। इसके वाद 'हरिजन' में २ जनवरी १९३७ को महात्माजी द्वारा व्यक्त

यह विचार मेरे मानस को मथते रहे : "स्वराज्य की मेरी कल्पना के विषय में किसी को कोई गलत-फहमी नहीं होनी चाहिये। उसका अर्थ विदेशी नियन्त्रण से पूरी मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता है।"

विचार-मंथन के लम्बे दौर ने मस्तिष्क की दिशा ही बदल डाली दूसरी बार गांधीजी से मेरी मुलाकात दिल्ली में ही अस्पताल में हुई। उन्होंने कांग्रेस में आ जाने का परामर्श दिया और मैंने उसे आदेश समझ कर शिरोधार्य कर लिया और तब से कांग्रेस ही मेरा तन, मन, धन और सर्वस्व हो गई।

नाम की महिमा सिर्फ तुलसीदास ने ही गाई है, ऐसा नहीं है। बाइबिल में भी मैं वही पाता हूँ।

२१

बापू की सीख और मेरी प्रेरणा

श्रीमती गीता बजाज

करोड़ों लोगों ने गांधीजी का नाम सुना है, बहुतों ने उनका साहित्य पढ़ा है, उनके दर्शन कर उनकी वाणी का रसास्वादन किया है, किन्तु कुछ ने उनके निकट सम्पर्क में रह कर आशीर्वाद प्राप्त किया है। जीवन में मुझे भी ऐसा अवसर प्राप्त हुआ है और इसके लिये मैं अपने को परम सौभाग्यशाली मानती हूं। मैं अनुभव करती हूं कि आज भी वह मानो मेरा पथ प्रकाशित कर रहे है।

सन् १९३६ में सीकर के निकट काशी-का-वास गांव में मेरे पति श्री गिरधारी लाल बजाज की अचानक और अकाल मृत्यु हो गई थी। काकाजी जमनालालजी बजाज ने इस दुर्घटना की सूचना बापू को दी। बापू ने इस पर सेगांव, वर्धा से २८-६-३६ को मेरे नाम यह पत्र भेजा:—

चि: गीता,

जैसा तुम्हारा नाम है, ऐसा ही तुम्हें रहना है। विधवापन और सधवापन मनमानी चीज है। मरना जीना किसी के हाथ में नहीं है। इसलिए शान्त रहो और अपने को सेवार्पण करो। मैंने तो अभी जमनालालजी से सुना है। मुझे लिखो।

बापू के आशीर्वाद

इस पत्र से उस समय बड़ी सान्त्वना मिली और आज भी जब में परेशान होती हूँ तो उनकी वे पंक्तियां मुझे बड़ा बल देती है। "जैसा तुम्हारा नाम है ऐसा ही तुम्हें रहना है", मैं यह पंक्तियां रटती हुई अपनी परेशानियों से जूझने लगती हूं।

डाट और प्यार

पूज्य बापू की स्मृति आते ही अनेक घटनायें आखों के सामने तैरने लगती है। साबरमती आश्रम की बात आज भी ताजा है। उस समय मैं केवल १२ वर्ष की बालिका थी। आश्रम के लोगों और उनकी भाषा दोनों से अपरिचित। नियम इतने कठिन कि भाग जाने को जी करता था। प्रार्थना में अकारण तीन दिन तीन मिनिट की देरी से पहुंचने पर आश्रम से विदाई मिल जाती थी। कड़क सर्दी में भी प्रेमावहन कंटक ४ बजे प्रात: व्यायाम करवाती थी। इतना ही नहीं आश्रम के प्रत्येक निवासी को सप्ताह में एक बार टट्टी-सफाई अवश्य करनी होती थी। एक बाल्टी में टट्टी दूसरी बालटी में पेशाब तथा पानी होता था। दोनों पर ढक्कन होता था। उन्हें साफ करके हम साबरमती में नहाते थे। इन सब कठिनाइयों से बचने के लिये मैंने पेट-दर्द और बुखार का बहाना बना लिया। बापू तो पक्के डाक्टर थे। वह मेरी मक्कारी को समझ गये और थोडा सा नीम पिसवा कर, छनवा कर, एकघूट मुझे पिलवा दिया और कहा अब तबियत बिल्कुल ठीक हो जायगी। कडुवे नीम की घूंट कौन बार-बार पी सकता था। मेरी मक्कारी की आदत कम होगई। तब बापू ने समझाया कि पाखाना साफ करने वाले हरिजन और हममें कोई अन्तर नहीं है। टट्टी हमारे पेट में भी है। ठीक ढंग से पाखाना साफ करने से यह कार्य सरल हो जाता है। आज जब मैं अपने जीवन में उस कार्य के महत्व को पूर्णतया समझ चुकी हूँ मैंने एक नियम बना लिया है कि किसी भी भंगी या हरिजन-वर्ग से टटी

साफ नहीं कराऊंगी। जरुरत पड़ने पर अपने हाथ पाखाना की सफाई करूंगी।

आश्रम में पहुँच जाने पर प्रत्येक व्यक्ति वापू से ममता और अपनापन पाता था। वापू आश्रम के नियमों का कड़ाई से पालन करवाते हुए भी व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं आदतों का पूरा ध्यान रखते थे। इस अपनेपन की भावना से शायद दुश्मन भी उनके आकर्षण-पाश में वंध जाता होगा। मुझे याद है, सन् १९४१ में वापू के साथ विताये हुये वे महिने। मैं सेवाग्राम आश्रम में वापूजी की महमान थी। मुझे याद नहीं है कौनसी ट्रेन से मैं वर्धा पहुंची। किन्तु इतना याद है कि जैसे ही मिलने गई, वापू ने एक क्षण में मेरे ठहरने, पढने आदि की सव व्यवस्था पूछ डाली और यह मालूम होने पर कि मैं अंग्रेजी में कमजोर हूं, भंशाली भाई को मुझे अंग्रेजी पढाने का भार सौंप दिया। यही नहीं, सावरमती आश्रम के प्रसंग में विनोद कर वैठे· "अव तुम्हारी दवा तुम को खुद तैयार करनी होगी।" सावरमती आश्रम में खाना सात्विक होता था किन्तु उस समय नीम की चटनी अनिवार्य रूप में नहीं मिलती थी और अव सेवाग्राम में नीम की चटनी अनिवार्य रूप में सव आश्रमवासियों को खानी होती थी।

आश्रम में आने वालों को, चाहे वह एक दिन का ही महमान क्यों न हो, आश्रम के किसी न किसी कार्य में हाथ वंटाना होता था। मुझे वापू ने अपनी इच्छा से नीम की चटनी पीसने व परोसने का काम दिया। आज वह कड़वी घूंट मेरे लिये अमृत है। आश्रम में खाने के लिये कितनी ही वार पूछ वैठते थे: "खाना अच्छा लगता है या नहीं, दूव लेती हो या नहीं"। उनकी मान्यता थी कि भोजन सात्विक हो किन्तु साथ ही पौष्टिक भी अवश्य होना चाहिए। इसलिये कम से कम एक पाव शुद्ध दूव और २॥ तोला शुद्ध ताजा घी, जिसकी खुशवू मैं आज भी नहीं भूल पाती हूँ, हर एक को लेना होता था। एक समय इसकी वड़ी चर्चा थी, मजाक वनता था कि जिसे स्वास्थ्य वनाना हो वापू के आश्रम में रहे। वास्तव में मेरा १५ दिन में २॥ पौंड वजन वढ़ा था।

क्या-क्या वात स्मरण करें उनकी। रोमांच हो आता है। यह कभी हो सकता था कि कोई वापू की विना आज्ञा अथवा जानकारी के आश्रम से वाहर चला जाय। मुझमें वचपन वहुत था, सवेरे-सवेरे भागती हुई पहुंच

गई। वापू किसी से साधारण चर्चा में लगे हुए थे। एक वार तो कुछ गरम निगाह से मेरी ओर देखा और मेरा फूल सा खिला चहरा जैसे कुम्हला गया। मैं नहीं जानती उन्हें क्या हुआ कि दूसरे ही क्षण मुस्कराते हुए पूछ वैठे :"आज वड़ी प्रसन्न हो, ससुराल वालों का निमन्त्रण मिला है क्या ?" उस दिन वजाजवाड़ी में जमनालालजी (काकाजी) के यहां कुछ आयोजन था। "नहीं, वापू," मैंने उत्तर दिया, "हम पवनार नदी में नहाने जाना चाहती हैं"। "और कौन कौन हैं?" "अंजना काकी"। जाने-आने का समय पूछ लेने के वाद विनोदी–स्वभाव वोल ही उठा, "अच्छा, एक डुवकी मेरे लिये भी लगाती आना"। इस वातचीत के दौरान उनका ध्यान मेरे कानों के झूमकों पर पड़ गया और झट से वोल ही उठे : "वडी मालदार मालूम होती हो। ये झूमके तो मुझे दे दो।" मैं कितनी अभागिन थी, उसे मजाक ही समझ वैठी और वे झूमके उन्हें नहीं दिये। मुझे क्या मालूम था तव कि ये दरिद्र–नारायण का पुजारी तो इसी प्रकार दरिद्रों की सेवा करता है। इस भूल का पश्चाताप तव तक होता रहा जव तक मैंने वे झूमके विनोवाजी को नहीं दे डाले।

जीवन का सवसे वड़ा अफसोस मुझे सन् १९४७ में हुआ। १९४१ में वापू ने मुझे आश्वासन दिया था कि चाहे श्री जमनालालजी पढाई के लिये कम इच्छुक हों, किन्तु तुम्हारी इच्छा है तो तुम जितना चाहो पढ़लो। फिर तुम मेरे पास आ जाना और अपनी रुचि के किसी काम में लग जाना। पर मैं अध्ययन समाप्त करके वापू की सेवा में न जा सकी और उसके कुछ समय वाद ही वापू हमसे हमेशा के लिये विछुड़ गये। उसके वाद मुझे संतोष है कि मैंने अपना जीवन वालक–वालिकाओं की सेवा में लगाया जो वापू को वहुत प्रिय था। मैं अनुभव करती हुं कि वापू आज भी मेरे संवल हैं।

२२

बापू को एक पत्र

भीलवाड़ा के श्री भगतराम तोशनीवाल ने तारीख ३ अगस्त १९३७ को पूज्य बापू की सेवार्थ लाहौर का कतलखाना वनने से रोकने के लिये निम्न पत्र भेजा था:—

पू० महात्मा जी की सेवा में,

लाहौर छावनी में जो सरकारी कतल-खाना वन रहा है उसका ठेका ११ लाख रुपया का है। यह कतल-खाना, सुनते हैं, दुनियां भर में दूसरे नम्बर का है और हिन्दुस्थान में तो पहला ही है। मशीन के द्वारा इस कतल-खाने में अनुमानतः दो हजार पशुओं का हमेशा वध होगा, और वध होने वाले पशुओं में भी गाय का स्थान मुख्य रहेगा। अगर ऐसा है तो यह कतल-खाना राष्ट्र के लिये वड़ा घातक साबित होगा। और गरीब जनता को जो दूध व घी अभी मिल रहा है, वह भी मिलना मुश्किल हो जायेगा। गाय हिन्दुस्तान के लिये धार्मिक व उपयोगिता की दृष्टि से अति उपयोगी है। अतिरिक्त इसके यहां मांस भी डिव्वों में वन्द करके भेजा जायेगा। इस तरह इसका वड़े पैमाने में व्यापार भी होगा।